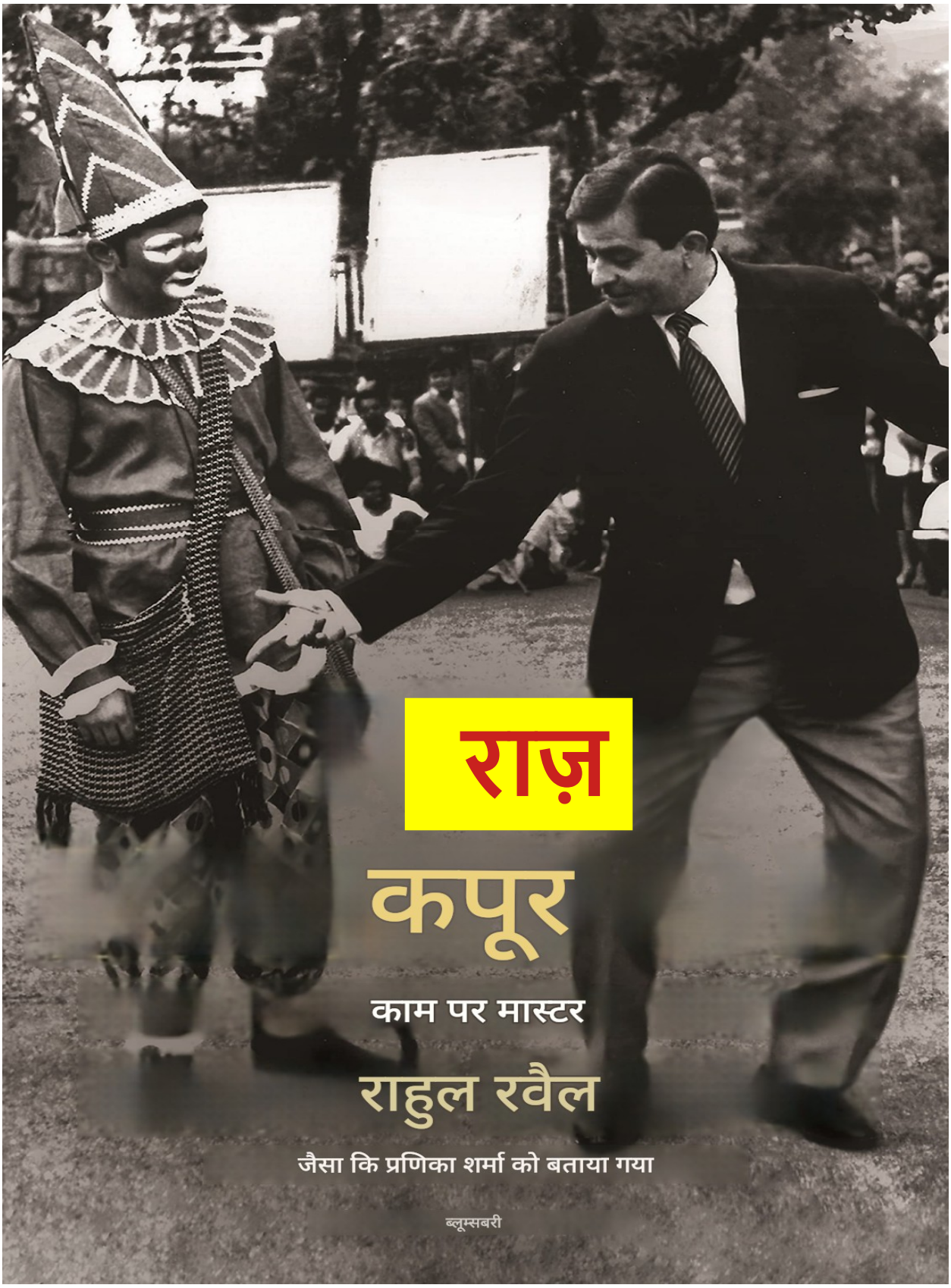

राज़ कपूर

काम पर मास्टर

राहुल रवैल

जैसा कि प्रणिका शर्मा को बताया गया

ब्लूम्सबरी

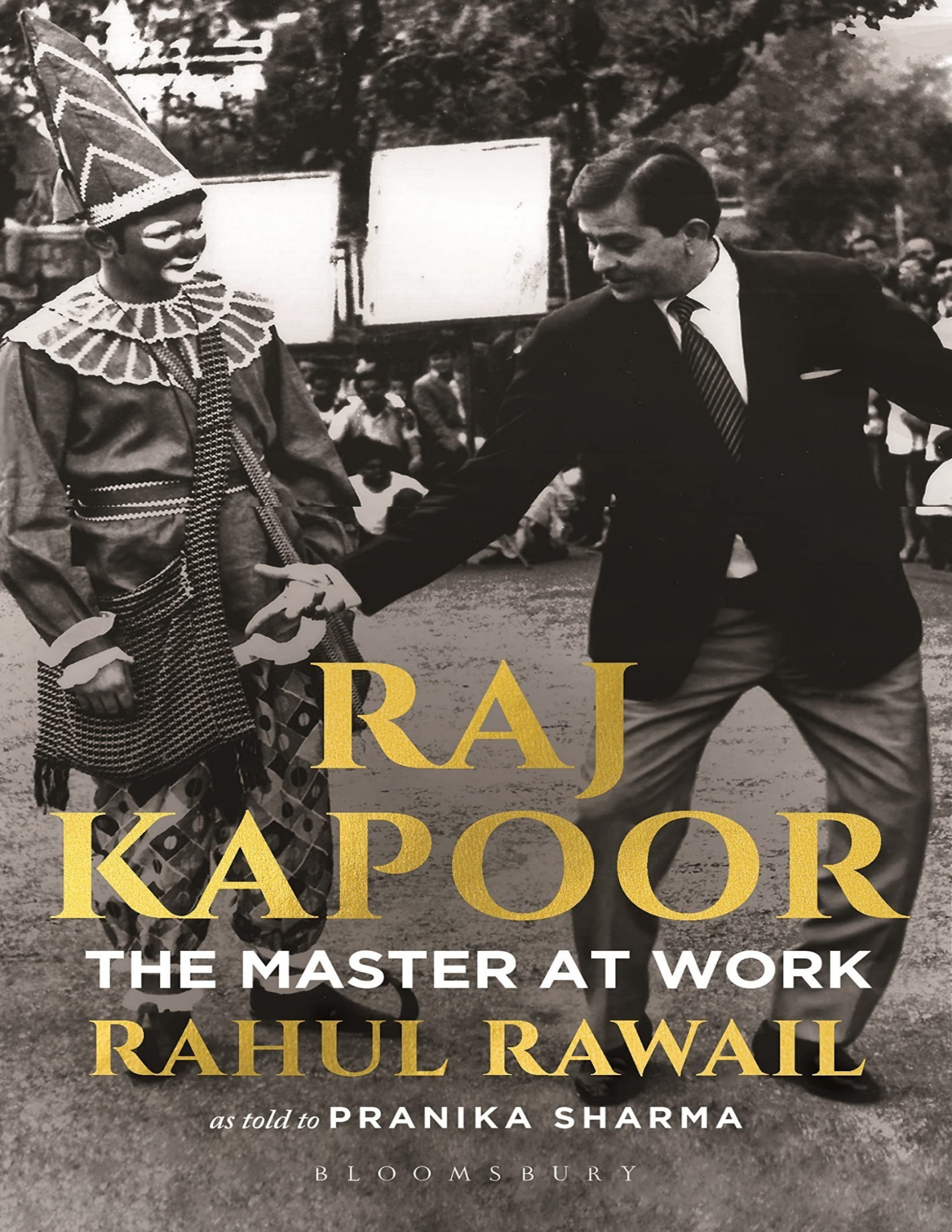

RAJ KAPOOR

THE MASTER AT WORK

RAHUL RAWAIL

as told to PRANIKA SHARMA

BLOOMSBURY

Table of Contents

आधा शीर्षक
शीर्षक पेज
कॉपीराइट
अंतर्वस्तु
प्रस्तावना
लेखक का नोट
प्रस्तावना: स्वप्न
बाहर शुरू
जब राज अंकल राज साहब बने
आरके स्टूडियोज: रचनात्मकता की नींव
टराइन
दंबरा नाइट्स
प्रतिभाशाली व्यक्ति के जुनून और विलक्षणताएँ
गुरु के अधीन कार्य करना
पाठ 1: अवधारणाएँ और प्रेरणा

पाठ 2: शूटिंग की तैयारी
पाठ 3: गोलीबारी
पाठ 4: अभिनेता और उनके प्रदर्शन
पाठ 5: राज कपूर का संगीत
पाठ 6: संपादक का चयन
फीनिक्स: राख से पुनरुत्थान
बॉबी: एपिसोड 1
बॉबी: एपिसोड
बॉबी: एपिसोड 3
बॉबी: एपिसोड 4
बॉबी: एपिसोड 5
बॉबी: द फिनाले
आगे बढ़ते हुए 186
प्रेम कहानी
Betaab
अर्जुन
डकैत
अमरता
डालना
स्वीकृतियाँ

राज
कपूर

राज
कपूर

मास्टर अपने काम में लगे हुए हैं

RAHUL RAWAIL

प्राणिका शर्मा को बताई गई कहानी के अनुसार

B L O O M S B U R Y

NEW DELHI • LONDON • OXFORD • NEW YORK • SYDNEY

ब्लूम्सबरी इंडिया
ब्लूम्सबरी पब्लिशिंग इंडिया प्राइवेट लिमिटेड
दूसरी मंजिल, एलएससी बिल्डिंग नंबर 4, डीडीए कॉम्प्लेक्स, पॉकेट सी – 6 और 7,
Vasant Kunj, New Delhi, 110070

ब्लूम्सबरी, ब्लूम्सबरी इंडिया और डायना लोगो
ये Bloomsbury Publishing Plc के ट्रेडमार्क हैं।

भारत में प्रथम प्रकाशन 2021
यह संस्करण 2021 में प्रकाशित हुआ।

Copyright © Rahul Rawail, 2021

राहुल रावेल ने भारतीय कॉपीराइट अधिनियम के तहत इस कृति के लेखक के रूप में पहचाने जाने के अपने अधिकार का दावा किया है।
सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी भाग प्रकाशकों की पूर्व लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम से, इलेक्ट्रॉनिक या यांत्रिक रूप से, जिसमें फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग या कोई भी सूचना भंडारण या पुनर्प्राप्ति प्रणाली शामिल है, पुनरुत्पादित या प्रसारित नहीं किया जा सकता है।

इस पुस्तक की पूर्ण जिम्मेदारी लेखक की है और प्रकाशक की सामग्री के निर्माण में कोई भूमिका नहीं है तथा वह किसी भी मानहानिकारक, अपमानजनक या आपत्तिजनक सामग्री के लिए उत्तरदायी नहीं है।
ब्लूम्सबरी पब्लिशिंग पीएलसी का इस पुस्तक में उल्लिखित या संदर्भित किसी भी तृतीय-पक्ष वेबसाइट पर कोई नियंत्रण या दायित्व नहीं है। इस पुस्तक में दिए गए सभी इंटरनेट पते प्रकाशन के समय सही थे। यदि पते बदल गए हों या वेबसाइटें अब मौजूद न हों, तो लेखक

और प्रकाशक को हुई किसी भी असुविधा के लिए खेद है, लेकिन वे ऐसे किसी भी परिवर्तन के लिए कोई दायित्व स्वीकार नहीं करते हैं।

ISBN: पेपरबैक: 978-93-88630-16-0; ईबुक: 978-93-88630-18-4

मणिपाल टेक्नोलॉजीज लिमिटेड द्वारा निर्मित

हमारे लेखकों और पुस्तकों के बारे में अधिक जानने के लिए www.bloomsbury.com पर जाएं और हमारे न्यूज़लेटर के लिए साइन अप करें।

यह किताब मेरे सच्चे दोस्त, मेरे सहारा, मेरे भाई चिंटू को समर्पित है। तुमने न सिर्फ मुझे इस किताब को लिखने के लिए प्रेरित किया, बल्कि जब भी मैं लिखने में आलस करता, तो मुझे खूब खरी-खोटी भी सुनाई। चिंटू, तुम बचपन से ही मेरे सच्चे समर्थक रहे हो—कक्षा से लेकर फिल्म सेट तक और इस किताब के पूरा होने तक। मुझे इस बात का अफसोस है कि तुम इसे

पढ़ नहीं पाए, लेकिन मुझे पता है कि तुम जहां भी हो, मेरा हौसला बढ़ा रहे होगे। मैं तुम्हें बहुत याद करता हूँ और परलोक में तुमसे मिलने की उम्मीद रखता हूँ!

अंतर्वस्तु

प्रस्तावना

लेखक का नोट

प्रस्तावना: स्वप्न

बाहर शुरू

जब राज अंकल राज साहब बने

आरके स्टूडियोज: रचनात्मकता की नींव

टराइन

दंबरा नाइट्स

प्रतिभाशाली व्यक्ति के जुनून और विलक्षणताएँ

गुरु के अधीन कार्य करना

पाठ 1: अवधारणाएँ और प्रेरणा

पाठ 2: शूटिंग की तैयारी

पाठ 3: गोलीबारी

पाठ 4: अभिनेता और उनके प्रदर्शन

पाठ 5: राज कपूर का संगीत

पाठ 6: संपादक का चयन

फीनिक्स: राख से पुनरुत्थान

बॉबी: एपिसोड 1

बॉबी: एपिसोड

बॉबी: एपिसोड 3

बॉबी: एपिसोड 4

बॉबी: एपिसोड 5

बॉबी: द फिनाले

आगे जा रहा है

प्रेम कहानी

Betaab

अर्जुन

डकैत

अमरता

डालना

स्वीकृतियाँ

प्रस्तावना

मैं खुद को बहुत भाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का अवसर मिला है, जो मेरे पिता राज कपूर और फिल्मों के साथ उनके गहरे संबंध के बारे में है। यह एक

ऐसा विषय है जिसे पहले कभी दर्ज नहीं किया गया है, और अगर कोई मेरे पिता के फिल्म निर्माता के रूप में विभिन्न पहलुओं को बेहतर ढंग से बता सकता है, तो वह उनके पूर्व सहायक निर्देशक राहुल रवैल ही हैं।

देखिए, फिल्म बनाना कोई विज्ञान नहीं है, यह सहज ज्ञान पर आधारित है; यह एक रचनात्मक कला है जो भीतर से आती है। बेशक, इसमें कुछ विज्ञान शामिल है, लेकिन जब तक यह दिल से न निकले, तब तक अच्छी फिल्म नहीं बन सकती। तकनीकी रूप से, कोई भी फिल्म की कहानी लिख सकता है, लेकिन ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जिनमें इन कहानियों को पर्दे पर उतारने का सही जुनून और उत्साह होता है। यही पहला सबक था जो मेरे पिता ने मुझे सिखाया था।

मुझे आज भी वो दिन याद है जब उन्होंने मुझे प्रेम रोग की कहानी सुनाई थी। उन्होंने मुझसे कहा था कि यह एक मार्मिक प्रेम कहानी होगी, लेकिन जो कहानी उन्होंने सुनाई वो एक युवा विधवा और उसके ससुराल के मुखिया, उसके ससुर के बड़े भाई के बीच के रिश्ते की थी। इस कहानी में नायक की कोई भूमिका नहीं थी, तो फिर प्रेम कहानी कहाँ थी? मैंने पूछा। वे हँसे और बोले, 'नायक के बिना प्रेम कहानी कैसे हो सकती है? वो तो आ जाएगा, फिल्म तो बनने दो।' हुआ यूँ कि नायक आ गया और फिल्म एक यादगार प्रेम कहानी बन गई। वे इसी तरह अपनी फिल्में बनाते थे। सब कुछ उनके दिमाग में पहले से तय होता था और यही उनका काम करने का तरीका था।

राज कपूर की फिल्म निर्माण शैली बिल्कुल अनूठी थी। वे जिस फिल्म पर काम कर रहे होते थे, उसके बारे में उनके विचार सीधे पर्दे पर उतरते थे। वे हर फिल्म पर पूरी लगन से काम करते थे और फिल्म की सफलता या असफलता का श्रेय पूरी तरह उन्हीं को जाता था। वे हर तरह की प्रतिक्रिया को बड़ी शालीनता से स्वीकार करते थे और फिल्म के फ्लॉप होने पर कभी पछतावा नहीं करते थे। उनका कहना था, 'मैं फिल्म की सफलता या असफलता की जिम्मेदारी स्वीकार करता हूं। फिल्म निर्देशक की गलतियों के कारण असफल होती है।'

उनके विचार हमेशा अपने समय से आगे थे और उनकी फिल्मों में यह बात झलकती थी। 'मेरा नाम जोकर' इसका एक उदाहरण है—रिलीज के समय यह फिल्म बुरी तरह फ्लॉप हुई थी, लेकिन समय बीतने और लोगों को फिल्म का सार समझ आने के बाद, अब इसे राज कपूर

की सबसे प्रशंसित फिल्मों में से एक माना जाता है और यह मेरे संगठन के लिए एक बड़ा लाभ का स्रोत है।

मेरा दुर्भाग्य यह था कि मुझे निर्देशक राज कपूर को केवल देखने का ही अवसर मिला, उनके साथ काम करने का कभी नहीं। वहीं राहुल न केवल उनके साथ काम करने के लिए भाग्यशाली थे, बल्कि उनके प्रिय सहायक भी बन गए। वे अपने काम को बहुत गंभीरता से लेते थे और राज कपूर के निर्देशों का अक्षरशः पालन करते थे। उन्होंने मेरे पिता की कार्यशैली को आत्मसात कर लिया था और उसे अपनी फिल्मों में अपने अनोखे अंदाज में उतारा। मुझे बहुत खुशी है कि यह पुस्तक राज कपूर की रचनात्मकता, विलक्षणताओं, जुनून और तकनीकों को उजागर करती है और लोगों को यह जानने में मदद करेगी कि मेरे पिता सिनेमा के लिए जीने वाले व्यक्ति थे और अपने सपनों को साकार करने के लिए अथक परिश्रम करते थे।

Randhir Kapoor

मुंबई, अक्टूबर *2021*

लेखक का नोट

प्रारंभ में मैं निम्नलिखित को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ:
राज कपूर परिवार की मुखिया, कृष्णा आंटी; उनकी बेटी, रितु कपूर नंदा; और उनके सबसे छोटे बेटे, राजीव (चिम्पू) कपूर।

मेरे दिवंगत मित्र चिंटू, जिन्हें यह पुस्तक समर्पित की गई है, और रणधीर कपूर (दबू साहब), रीमा कपूर जैन के साथ-साथ इन तीनों ने ही मुझे मेरे गुरु श्री राज कपूर को सम्मान देने के लिए यह कदम उठाने के लिए प्रेरित किया।

जब मेरे मन में इस किताब को लिखने का विचार आया, तो मैंने सबसे पहले कपूर परिवार से बात की और उन्हें अपनी लेखन शैली के बारे में बताया। वे सभी बहुत उत्साहित थे और कृष्णा आंटी ने मुझसे कहा, 'तुम्हें यह किताब जरूर लिखनी चाहिए! तुम इकलौती जीवित शख्स हो जिन्होंने मेरे पति के साथ काम किया है और उनके काम को इतने करीब से देखा है। तुम उन पहलुओं से भली-भांति परिचित हो जिन्होंने उन्हें एक असाधारण फिल्मकार बनाया। अगर तुम यह किताब नहीं लिखोगी, तो रचनात्मकता का एक पूरा पाठ खो जाएगा।'

इस तरह मैंने असाधारण प्रतिभा के धनी राज कपूर के बारे में अपनी याददाश्त को ताज़ा करने का प्रयास शुरू किया। मैं नहीं चाहता था कि यह किताब केवल सिनेमा जगत से जुड़े लोगों को ही पसंद आए, बल्कि एक ऐसी कहानी बने जो हर किसी को पसंद आए – चाहे उन्होंने उनकी फिल्में देखी हों या न देखी हों।

जैसे-जैसे मैं आगे बढ़ता गया, मुझे उनकी फिल्मों के सेट पर बिताया अपना समय और भी याद आता गया। मेरी पत्नी, रीता, प्राणिका के साथ ज़ूम कॉल पर बिताए समय में बेहद धैर्यवान रहीं, जिन्होंने न केवल मेरी कहानी लिखी है बल्कि लेखन शैली में भी उनका बहुत बड़ा योगदान है।

प्रकाशन जगत के एक प्रतिष्ठित संपादक शांतनु रॉय चौधरी ने मुझे प्रोत्साहित किया और जब मैं निराश हो रहा था तब उन्होंने मुझे हिम्मत दी। धन्यवाद, शांतनु। आशा है कि मैं आपकी अपेक्षाओं पर खरा उतरा हूँ।

मेरे मित्र राहुल मित्रा का इस पुस्तक पर अटूट विश्वास था, यहाँ तक कि उन्होंने यह सुनिश्चित करने के लिए हर संभव प्रयास किया कि यह पुस्तक दुनिया के कोने-कोने में पाठकों तक पहुँचे। इसके लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद, राहुल।

मुझे उम्मीद है कि मेरे पाठक काफी होंगे: यह किताब सिर्फ एक शोमैन के बारे में नहीं है, बल्कि एक फिल्म निर्माता को मेरी श्रद्धांजलि है, उस शख्स को जिसने मुझे वह सब कुछ सिखाया जो मैंने सीखा है। यह आपको भारत के अब तक के सबसे महान फिल्म निर्माता के

दिमाग को समझने का मौका देगी। यह किताब उनकी विलक्षणताओं, उनके जुनून और फिल्म निर्माण की तकनीकों को विस्तार से सजीव रूप से प्रस्तुत करती है, और मुझे उम्मीद है कि यह आपको फिल्म निर्माता को एक ऐसे नजरिए से देखने में मदद करेगी जैसा आपने पहले कभी नहीं देखा होगा।

राज साहब, मुझे उम्मीद है कि आपको इस बात पर गर्व होगा कि मैंने लोगों को यह बताकर जो उपलब्धि हासिल करने का प्रयास किया है कि आप केवल एक दिखावा करने वाले व्यक्ति नहीं थे, बल्कि काम में माहिर थे।

प्रस्तावना: सपना

एक बेहद ठंडी शाम को, कमरे में कुछ हलचल महसूस होने पर मैं अचानक चौंककर जाग गया। मेरी अचंभित आँखों के सामने एक अद्भुत दृश्य प्रकट हुआ। यह बात समझने में मुझे कुछ पल लगे कि राज अंकल, राज साहब या 'बॉस', जैसा कि मैं उन्हें अपने जीवन के विभिन्न पड़ावों पर पुकारता था, मेरे ठीक सामने एक कुर्सी पर बैठे थे!
उन्हें वहां देखकर मैं दंग रह गई, लेकिन साथ ही साथ अपनी खुशी को रोक भी नहीं पाई। 'आपको देखकर कितना सुखद आश्चर्य हुआ!' मैंने कहा।
वह गुस्से में लग रहा था, 'मेरी ड्रिंक कहाँ है?' मैं झटपट उठा और उसके लिए ब्लैक लेबल व्हिस्की की एक बड़ी बोतल ले आया, जो उसकी पसंदीदा ड्रिंक थी।
उसने ड्रिंक गटक ली और बोला, 'एक और लाओ!' जब मैंने उसे दूसरी ड्रिंक दी, तो वह मुझे घूरता रहा। मैं घबराने लगा; तभी उसने अचानक कहा, 'मुझे पता है कि तुमने कुछ समय से कोई फिल्म नहीं बनाई है। अगर तुम्हें फिल्में बनाने में रुचि नहीं है, तो क्यों न तुम भी आजकल के अधिकांश लोगों की तरह फिल्में बनाना शुरू कर दो?'
मैं पूरी तरह से भ्रमित हो गया और मैंने जवाब दिया, 'मुझे खेद है, मुझे प्रश्न समझ नहीं आया।' वह भड़क उठा और चिल्लाया, 'तुम बेवकूफ हो!' मैं स्तब्ध रह गया और मुझे समझ नहीं आया कि क्या कहूँ क्योंकि मुझे अभी भी समझ नहीं आया था कि वह क्या कहना चाहता था।
'क्या आजकल के लोगों को पता है कि फिल्म बनाने का मतलब क्या होता है?' वह गुस्से से भड़क उठा! 'अब कोई फिल्में नहीं बनाता। कुछ जागरूक और सच्चे फिल्म निर्माताओं को छोड़कर, 90 प्रतिशत तथाकथित फिल्म निर्माता फिल्में नहीं बना रहे हैं, बल्कि सिर्फ उन्हें जोड़-तोड़ रहे हैं!'
जैसे-जैसे वह बोलता गया, उसका गुस्सा बढ़ता गया। "फिल्म उद्योग की हालत दयनीय है। मैंने सिनेमा का स्वर्णिम युग देखा है, जब लोग सचमुच फिल्म बनाने के लिए प्रयासरत रहते थे। फिल्म निर्माण प्रक्रिया में जुनून समाया रहता था, लेकिन अब जुनून सिर्फ संख्या और आंकड़ों के लिए उत्पाद तैयार करने में रह गया है; यह एक भयावह स्थिति है जिसने सिनेमा के पतन को जन्म दिया है।"

उन्होंने अपनी नाराजगी जाहिर करते हुए आगे कहा, 'फिल्म निर्माण अब एक रचनात्मक प्रक्रिया नहीं रह गई है, बल्कि एक यांत्रिक प्रक्रिया बन गई है। मेरा मानना है कि आज के लेखकों को "टाइपराइटर" कहना चाहिए। वे कंप्यूटर पर बैठकर स्क्रिप्ट टाइप करते हैं, या उससे भी बेहतर, कंप्यूटर उन्हें स्क्रिप्ट बोलकर लिखवाता है! निर्देशक शूटिंग के दौरान टेलीविजन स्क्रीन के सामने बैठकर तय करते हैं कि शॉट अच्छा है या नहीं। क्या फिल्में इसी तरह बनती हैं? रचनात्मकता, बुद्धि और मानवीय भावनाओं का उपयोग कहाँ गया? ये फिल्म बनाने के सबसे आवश्यक तत्व थे! जो लोग खुद को फिल्म निर्माता कहते हैं, उन्हें सिर्फ शुक्रवार, शनिवार और रविवार के कलेक्शन से होने वाली मोटी कमाई में दिलचस्पी है। यह सब सिर्फ आंकड़ों का खेल है। अगर आपको सिर्फ शुक्रवार, शनिवार और रविवार में ही दिलचस्पी है, तो सोमवार, मंगलवार, बुधवार और गुरुवार कहाँ गए? क्या वे कैलेंडर से गायब हो गए हैं और अब उनका कोई अस्तित्व नहीं है?'

वह सिनेमा के पतन पर शोक मना रहे थे; रचनात्मकता की अमिट विरासत के लुप्त होने पर शोक मना रहे थे; सिनेमा से उस भावपूर्ण जुनून के गायब होने पर शोक मना रहे थे। अब यह केवल गणनाओं और अर्थशास्त्र के आधार पर कार्य करता था।

'फिल्म निर्माण एक कला है।' उदास भाव से भरे उनके चेहरे पर यह बात झलक रही थी। उन्होंने कहा, 'मुझे लगता है कि मैं उन कुछ खुशनसीब लोगों में से एक हूँ जो आज के दौर में नहीं जी रहे हैं। मैं मानता हूँ कि कुछ हद तक आर्थिक पहलू होने चाहिए, लेकिन एक सच्चे फिल्म निर्माता के लिए दिल सबसे ऊपर होता है। मैं अपनी जगह पर खुश हूँ। मैं ऐसे युग में जीना नहीं चाहता जहाँ फिल्मों को रचनात्मक गतिविधि के रूप में नहीं, बल्कि पैसों के लालच से बनाया जाता हो!'

उनके शब्दों ने मेरे दिल को छू लिया और मैं उस दौर में पहुँच गया जब फिल्म निर्माण सिर्फ पैसे कमाने का ज़रिया नहीं था। इसने मुझे अतीत की उस यात्रा पर ले गया जब फिल्में अत्यंत सटीकता से बनाई जाती थीं। इसने मुझे 8 दिसंबर 1968 को 'मेरा नाम जोकर' के सेट पर पहुँचा दिया, जिस दिन मैंने पहली बार अमर उस्ताद को अपना जादू बिखेरते देखा था।

बाहर शुरू

हाल ही में मैंने तनावपूर्ण आईसीएसई बोर्ड परीक्षाएँ समाप्त की थीं कि मुझे अपने बचपन के दोस्त चिंटू, ऋषि कपूर का फोन आया, 'पापा आज से क्रॉस मैदान में 'मेरा नाम जोकर' के सर्कस चैप्टर की शूटिंग कर रहे हैं, चलो पूरा दिन वहीं बिताते हैं। वहाँ कुछ आकर्षक रूसी महिला सर्कस कलाकार होंगी...' और बस! मैं मान गया! आईसीएसई बोर्ड की थका देने वाली परीक्षाओं के बाद मिले खाली समय और कम कपड़ों में सजी युवा रूसी सर्कस कलाकारों से मिलने की संभावना, घर पर बैठे रहने से कहीं ज्यादा लुभावनी थी।

पंद्रह साल के मुझ जैसे लड़के के लिए यह निमंत्रण बहुत रोमांचक था। मुझे शूटिंग में कोई खास दिलचस्पी नहीं थी, क्योंकि निर्देशक एच.एस. रावेल का बेटा होने के नाते मैं कई शूटिंग देख चुका था। मैं तो बस वहाँ विदेशी लड़कियों को निहारने गया था।

देखिए, चिंटू और मैंने वाल्सिंघम हाउस स्कूल में चौथी कक्षा तक साथ-साथ पढ़ाई की थी, जिसके बाद वह लड़कियों का स्कूल बन गया। उन चार सालों में चिंटू और मेरे बीच ऐसी गहरी दोस्ती हो गई जो जीवन भर कायम रही। पापा और राज अंकल दोनों फिल्म निर्माता थे, इसलिए उनके बीच बहुत अच्छे संबंध थे।

जब हम क्रॉस मैदान पहुँचे और सर्कस टेंट में दाखिल हुए, तो सबसे पहले वहाँ मौजूद लड़कियों ने मेरा ध्यान खींचा, लेकिन जब मैंने राज अंकल को देखा और उनके काम करने का तरीका देखा, तो मैं वहाँ जाने का अपना मूल उद्देश्य ही भूल गया। राज अंकल के काम करने के तरीके से पैदा हुई आभा ने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया। ऐसा लग रहा था मानो मैं बिना संगीत की शीट के ही किसी सिम्फनी का संचालन कर रहा हूँ। एक अकेला आदमी 5,000 जूनियर कलाकारों, रूसी और भारतीय सर्कस कलाकारों, क्रू सदस्यों और अभिनेताओं की भीड़ को नियंत्रित कर रहा था। वह उन सभी को अपनी पूरी क्षमता से प्रदर्शन करने के लिए निर्देशित कर रहा था, ताकि उनकी कल्पना को साकार किया जा सके। मेरे सामने जो दृश्य था, वह अव्यवस्था और व्यवस्था का एक अद्भुत संगम था। इसने मुझे एक कोने में खड़े होकर बस देखने के लिए मजबूर कर दिया, और तब तक मैं इतना मुग्ध हो चुका था कि लड़कियों का ख्याल भी मेरे दिमाग से निकल गया था!

घर लौटने पर, शूटिंग के दौरान मुझे जो बात सबसे ज़्यादा आकर्षित कर रही थी, वह मेरे दिमाग में बार-बार घूम रही थी। राज अंकल शूटिंग के दौरान छोटी से छोटी बात पर कितना ध्यान देते थे और छोटी से छोटी हरकत को भी कितना परफेक्ट रखते थे। मुझे उनकी फिल्म के बारे में कुछ भी नहीं पता था, लेकिन इतने सारे लोगों के साथ जिस तरह से उन्होंने फिल्म को अंजाम दिया, उसे देखकर मेरा मन भर आया। मैं इतना मंत्रमुग्ध हो गया था कि मैंने अपनी माँ से यह बात ज़रूर साझा की। मैंने उनसे कहा, 'माँ, मैं आज राज अंकल की फिल्म की शूटिंग देखने गया था और उन्हें काम करते देखना बिल्कुल अलग अनुभव था! मैं कल सर्कस में उनकी शूटिंग देखने जा रहा हूँ।'

अगले दिन मैं फिर सर्कस गया और एक कोने में अकेला बैठ गया। राज अंकल ने मुझे वहाँ देखा और पूछा कि क्या चिंटू मेरे साथ है। मैंने जवाब दिया कि मैं उस दिन अकेला आया हूँ और उन्होंने बस सिर हिलाया और शूटिंग में वापस लग गए।

मैं यह देखकर चकित रह गया कि वह अपने मस्तिष्क में इतनी अधिक जानकारी को कितनी कुशलता से संग्रहित कर लेता था। उसकी आँखें और कान हर जगह चौकन्ने रहते थे। वह हर चीज़ पर नज़र रखता था। उसका दृढ़ विश्वास था कि यदि निर्देशक को अपने अभिनेता से संवाद बोलने या कोई विशेष हावभाव करने की आवश्यकता हो, तो निर्देशक का यह कर्तव्य है कि वह स्वयं वही करके दिखाए ताकि अभिनेता उसे दोहरा सके।

मुझे याद है कि राज अंकल चाहते थे कि धर्म जी, जो सर्कस के मालिक और ट्रैपीज़ कलाकार का किरदार निभा रहे थे, कूदने के बाद सुरक्षा जाल पर खड़े हों। धर्म जी को जाल पर खड़े होने का तरीका थोड़ा समझ नहीं आ रहा था क्योंकि जाल बहुत हिलता-डुलता था और उस पर संतुलन बनाना मुश्किल था। इसलिए, राज अंकल सीढ़ियों से चढ़कर सुरक्षा जाल तक पहुँचे और धर्म जी को दिखाया कि इसे कैसे किया जाता है। राज अंकल थोड़े भारी-भरकम थे, लेकिन उनके चेहरे पर डर या शर्मिंदगी का कोई निशान नहीं था।

यह कला के प्रति उनके समर्पण को दर्शाता था। फिल्म बनाते समय वे अपने लक्ष्यों से कभी समझौता नहीं करते थे। उन्होंने कैमरे की गति, पृष्ठभूमि की गति, अभिनेताओं की अभिनय शैली और संवादों की लय की कल्पना की होती थी, जो फिल्माए जा रहे दृश्य की विषयवस्तु के अनुरूप होती थी, और वे यह सुनिश्चित करते थे कि ये सभी लक्ष्य प्राप्त हों।

फिल्म निर्माण की उनकी स्पष्टता और सहज समझ ने उन्हें हर दृश्य में हर क्रिया और भाव पर पूरा नियंत्रण रखने के लिए प्रेरित किया। यदि किसी दृश्य के उनके चित्रण के अनुसार अभिनेता को पहले बाएँ पैर से चलना होता, तो वे अभिनेता से बाएँ पैर से ही चलने पर ज़ोर देते। जैसे-जैसे मैंने उन्हें अधिक समय तक देखा, मुझे एहसास हुआ कि उनके हर काम के पीछे एक कारण था और जो बातें आम आदमी को साधारण लगती थीं, वही उनकी प्रतिभा का आधार थीं।

एक और दृश्य था, जिसमें दारा सिंह जी को शेर के पिंजरे के पीछे से प्रवेश करना था और पिंजरे के बगल में अपनी जगह पर खड़ा होना था। उनके दाहिने हाथ में चाबुक थी। दारा जी ने कहा था कि वे पीछे से आएंगे और ऐसी जगह पर खड़े होंगे जहाँ शेर उनके दाहिनी ओर होगा। राज चाचा इससे सहमत नहीं थे। उन्होंने कहा कि पीछे से प्रवेश करते हुए, दारा जी को ऐसी जगह पर खड़ा होना चाहिए जहाँ शेर उनके बाईं ओर हो और चाबुक उनके दाहिने हाथ में हो। चाबुक और शेर का दारा जी के बगल में होना दृश्य प्रभाव को और बढ़ा देगा।

शूटिंग से लौटने के बाद मैं रुककर सोचने लगी कि मैं क्या कर रही हूँ। क्या मुझे राज अंकल के साथ काम करने में मज़ा आ रहा था और क्या मैं यही अपना करियर बनाना चाहती थी? मुझे पक्का पता नहीं था। मैंने हर चीज़ के बारे में बहुत सोचा: अपनी पढ़ाई, अपना करियर और अपना भविष्य। मेरे माता-पिता चाहते थे कि मैं अपने पिता की विरासत को आगे बढ़ाऊँ, लेकिन मेरा एक प्लान था, और वो बहुत सीधा-सादा प्लान था। मुझे कनाडा जाकर न्यूक्लियर फिजिक्स में डिग्री हासिल करनी थी; फ़िल्में कभी मेरे प्लान का हिस्सा नहीं थीं।

मेरी पढ़ाई अगले सात महीनों में शुरू होने वाली थी और मेरे पास करने के लिए कुछ बेहतर नहीं था, इसलिए मैंने अपनी माँ से इस बारे में बात की, 'देखो, मेरे पास सात महीने खाली हैं और करने के लिए कुछ भी सार्थक नहीं है। मैं सोच रही थी कि क्या मुझे कुछ उपयोगी काम करना चाहिए और छुट्टियों के अंत तक राज अंकल के यहाँ सहायक निदेशक के रूप में काम शुरू कर देना चाहिए।'

मुझे छुट्टी बिताने के बजाय काम करते देखकर वह बहुत खुश थीं। मेरी ट्रेनिंग की शुरुआत इस तरह हुई कि अगले दिन मेरे पिताजी मुझे शूटिंग पर ले गए और राज अंकल से मेरी छुट्टियों के दौरान सात महीने उनके साथ काम करने के बारे में बात की। राज अंकल ने मुझे

फोन किया और कहा, 'तुम्हारा मेरे साथ काम करने के लिए हार्दिक स्वागत है। मैंने देखा है कि तुम पिछले 15 दिनों से हर दिन यहाँ आकर मुझे काम करते हुए ध्यान से देख रहे हो, लेकिन याद रखना, तुम यहाँ एच.एस. रावेल के बेटे नहीं बनोगे, बल्कि बाकी लोगों की तरह यूनिट का हिस्सा बनोगे। दूसरी बात, मैंने कोई स्कूल नहीं खोला है, लेकिन अगर तुममें ज्ञान की प्यास है तो मुझे तुम्हें पढ़ाने और मार्गदर्शन करने में बहुत खुशी होगी।'

उन्होंने मेरे पिता की ओर सख्त चेहरे से मुड़कर पूछा, 'तुम अभी भी यहाँ क्या कर रहे हो? यहाँ राज कपूर का सहायक निर्देशक है, तुम्हारा बेटा नहीं।' वे दोनों हंसने लगे जबकि मैं वहीं खड़ा इस बात पर विचार कर रहा था कि मैं सचमुच राज कपूर का सहायक निर्देशक था!

मेरी अप्रेंटिसशिप के कुछ ही दिनों में मुझे एहसास होने लगा कि राज अंकल न केवल एक प्रतिभाशाली दिमाग वाले थे, बल्कि एक विलक्षण व्यक्तित्व के भी धनी थे। उनकी अपनी कुछ अजीब आदतें थीं जिनसे मैं जल्द ही परिचित हो गया। एक दिन शूटिंग के दौरान, जब राधू कर्माकर, जो आवारा फिल्म से उनके सिनेमैटोग्राफर (डीओपी) थे, एक शॉट के लिए लाइटिंग कर रहे थे, तो उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, 'बाबू, मुझे इस शॉट के लिए लाइटिंग ठीक नहीं लग रही है। मुझे किसी ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत है जो तंबू पर चढ़कर उस प्लेटफॉर्म पर खड़ा हो जाए, जहाँ ट्रैपीज़ कलाकार खड़ा होता है।'

मैं सोच रहा था कि इतनी ऊंचाई पर चढ़ने के लिए सही व्यक्ति कौन होगा, तभी खान साहब, जो 'आग' फिल्म के समय से राज अंकल के साउंड इंजीनियर हैं, मेरे पास आए और बोले, 'बस यहां खड़े मत रहो, टेंट पर चढ़ो और ट्रैपीज पर अपनी जगह बना लो।'

इस भयानक अनुभव के बारे में सोचकर मैं बुरी तरह डर गई थी और सुन्न पड़ गई थी, लेकिन इससे पहले कि मैं कुछ कह पाती, मेरे ऊपर एक सुरक्षा घेरा बांध दिया गया। खान साहब गंभीर थे। वह चाहते थे कि मैं 40 फीट लंबी, हिलती हुई रस्सी की सीढ़ी पर चढ़कर बिल्कुल ऊपर तक जाऊं। मैं दिल थामकर सीढ़ी चढ़ने लगी। जब मैं ऊपर पहुंची, तो खान साहब ने मुझे दोनों हाथों से ट्रैपीज़ को पकड़ने के लिए कहा। अगर मैं पहले से डरी हुई नहीं थी, तो उनके ये शब्द सुनकर और भी डर गई। मुझे सर्कस के करतबों का कोई प्रशिक्षण नहीं था। मैं अपनी जान जोखिम में डाले बिना ट्रैपीज़ को कैसे पकड़ सकती थी?

राज अंकल ने भी कहा, 'बब्बू [मेरा हास्यास्पद उपनाम], ट्रैपीज़ को पकड़ो और दूसरे छोर तक झूलने की कोशिश करो। वहाँ खड़ा ट्रैपीज़ कलाकार तुम्हारी मदद करेगा।'

मैं इतना डर गया था कि मेरा दिमाग सुन्न हो गया और तभी सारा क्रू ज़ोर से हंसने लगा। मेरे साथ मज़ाक हुआ था! मैं आँखों में आँसू लिए उनकी तरफ देखने लगा, समझ नहीं पा रहा था कि मैं किस तरह मज़ाक का पात्र बन गया था।

मैं कांपते पैरों से नीचे उतरी, मेरा दिल अभी भी ज़ोर से धड़क रहा था और राज अंकल ने पहली बार मुझे दोपहर के भोजन के लिए बुलाया, 'मैं समझता हूँ कि जो कुछ तुम्हारे साथ हुआ उससे तुम बहुत डरी हुई और अपमानित महसूस कर रही थी। इसे मज़ाक मत समझो, बल्कि एक बहुत महत्वपूर्ण सबक समझो। किसी भी रचनात्मक कार्य में, भावनाओं का अनुभव करना और उन्हें समझना - डर, अपमान, हार, किसी प्रियजन को खोना, रिश्ते का टूटना - सभी आवश्यक हैं क्योंकि ये जीवन के प्रति तुम्हारी समझ को मजबूत करते हैं और इस प्रकार तुम्हें रचनात्मक रूप से समृद्ध बनाते हैं।'

उनके शब्द मेरी स्मृति में अंकित हो गए और उनके साथ बिताए हर दिन ने मुझे जीवन के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराया। ज्ञान की मेरी प्यास दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। सर्कस का कार्यक्रम समाप्त हुआ और इसके साथ ही विश्व के सबसे प्रतिष्ठित फिल्म निर्माता और सर्वश्रेष्ठ शिक्षक राज कपूर के मार्गदर्शन में मेरा प्रशिक्षण भी समाप्त हो गया।

जब राज चाचा राज साहब बने

मुझे परमाणु भौतिकी में आगे बढ़ने का बहुत शौक था, लेकिन अब मेरी रुचियाँ मुझे एक ऐसे मोड़ पर ले आई थीं जहाँ एक और जुनून जाग उठा था। फिल्म बनाने का नशा और खुद फिल्म जगत का जुनून मुझ पर हावी हो रहा था। राज अंकल ने बिल्कुल सही कहा था, 'एक बार जब आप इस क्षेत्र में आ जाते हैं और इसके प्रति जुनूनी हो जाते हैं, तो इसे छोड़ना बहुत मुश्किल होता है। जब आप बहादुरी से हर चुनौती का सामना करते हैं, तो आपको एक अलग ही जोश मिलता है और यही आपके अंदर उत्साह की भावना पैदा करता है।' उस समय, सहायक निर्देशक के रूप में काम करते रहना मुझे किसी दूसरे देश जाकर कोई नया करियर बनाने से कहीं ज्यादा अच्छा लगा। मैं उस बच्चे की तरह था जिसने डाकिया बनने का सपना देखा था, फिर धीरे-धीरे दमकलकर्मी बनने का, फिर पुलिसकर्मी बनने का और अंत में फिल्म निर्माता बनने का!

मुझे राज अंकल से बात करनी थी और देखना था कि क्या वे मुझे अपने साथ काम जारी रखने देंगे। इस बार मेरे पिताजी चाहते थे कि मैं उनसे खुद बात करूं। राज अंकल का स्टूडियो में एक दफ्तर था, लेकिन वे अपने पूजनीय 'कुटिया' से काम करते थे, जो उनके लिए पवित्र थी। मैं प्रवेश द्वार पर खड़ा था, बहुत असमंजस में था कि मुझे अंदर जाना चाहिए या नहीं और क्या मुझे अंदर जाने से पहले दरवाजा खटखटाना चाहिए। मैं उनके दरवाजे पर सोच ही रहा था कि तभी उनके रसोइए जॉन ने मुझे वहाँ देखा और मुझसे पूछा कि मैं कौन हूँ और यहाँ क्या कर रहा हूँ?

‘Sahab se milna hai. Bolna Babbu milna chahta hai,’ I answered.

मैं हमेशा उन्हें राज अंकल कहकर बुलाता था, लेकिन जब मुझे एहसास हुआ कि मैं उनके यहाँ नौकरी करना चाहता हूँ, तो 'साहब' शब्द ज़्यादा उपयुक्त लगने लगा। जैसे ही मैं घबराते हुए झोपड़ी में दाखिल हुआ, उन्होंने पूछा, 'जी राहुल, बताओ।'

वह मेरे लिए एक ऐतिहासिक दिन था। पहली बार उन्होंने मुझे 'राहुल' कहकर पुकारा, न कि 'बब्बू'। मैं बस वहीं असमंजस भरे चेहरे के साथ खड़ा रह गया। उन्होंने कहा, 'इस बात पर इतना हैरान मत होइए कि मैंने आपको बब्बू की जगह राहुल कहा। मैं जानता हूँ कि आप यहाँ

क्यों हैं और आप सहायक निर्देशक के रूप में काम जारी रख सकते हैं।' चेहरों को पढ़कर और उन्हें आपके विचारों से जोड़कर समझने की उनकी प्रतिभा अद्वितीय थी।
फिर राज साहब ने मुझसे मेरी भविष्य की योजनाओं के बारे में पूछा, 'तो क्या तुम भी जून से कॉलेज जाओगे?'
मैंने जवाब दिया, 'जी सर, मैं धोबी तलाओ स्थित सेंट जेवियर कॉलेज में दाखिला लूंगा।'
आपके कॉलेज का समय क्या है?
सुबह सात बजे से दोपहर एक बजे तक।
आप स्टूडियो तक कैसे आएंगे-जाएंगे?
'सुबह मैं बांद्रा से ट्रेन लेकर वीटी कॉलेज जाऊंगी। कॉलेज से मैं वीटी से ट्रेन लेकर किंग सर्कल जाऊंगी, फिर वहां से बस लेकर सायन और फिर बस से स्टूडियो जाऊंगी। मैंने सारे रूट पता कर लिए हैं।'
'बहुत बढ़िया! मुझे आपकी लगन बहुत पसंद है और मैं प्रार्थना करता हूं कि यह गुण आपके साथ हमेशा बना रहे।'
राज साहब के समर्थन से मेरे भविष्य की योजनाओं में और भी आत्मविश्वास जागा, इसलिए मैं मुस्कुराते और खुश होकर कॉटेज से बाहर निकला। उस बातचीत के बाद, मुझे सेंट जेवियर्स कॉलेज में दाखिला मिल गया और इस तरह सुबह लेक्चर अटेंड करने और दोपहर में काम पर जाने का मेरा व्यस्त कार्यक्रम शुरू हो गया। हालांकि यह व्यस्त था, लेकिन आरके स्टूडियो (जिसे आगे से आरके कहा जाएगा) में आधिकारिक सहायक निर्देशक के रूप में इससे बेहतर शुरुआत की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।
राज साहब के यहाँ सहायक निर्देशक के रूप में मेरी नियुक्ति की पुष्टि होने के एक-दो सप्ताह बाद, मुझे भी बाकी लोगों की तरह अपना पहला वेतन मिला। मैं दिसंबर में टीम में शामिल हुआ था, लेकिन मुझे मई से वेतन मिलना शुरू हुआ। राज साहब में वेतन मिलने का दिन वहाँ की बाकी चीज़ों की तरह ही अनोखा था। हर महीने की सातवीं या दसवीं तारीख को हमें वेतन मिलता था। मैं अपना वेतन लेने के लिए लेखा विभाग में गया। वहाँ कर्मचारियों की लंबी लाइन लगी रहती थी, लेकिन हम सहायक निर्देशक होने के नाते भाग्यशाली थे और सीधे अंदर जा सकते थे।

जब मैं कमरे में दाखिल हुआ, तो मुझे बताया गया कि मुझे 72 रुपये वेतन मिलेगा और मैं दिल से खुश हो गया (अपने काम का वेतन मिलना एक अलग ही खुशी होती है)। अकाउंटेंट ने मुझसे एक वाउचर पर हस्ताक्षर करवाए, लेकिन मुझे हाथ में पैसे नहीं मिले। पैसे दूसरी मेज पर दिए गए जहाँ कैंटीन का मालिक बैठा था। आरके की एक कैंटीन थी और हम कभी-कभी वहाँ कोक या कुछ और पीने जाते थे। एक कोक 4 आने का था और कैंटीन वाला हमारा हिसाब रखता था। दूसरी मेज पर बैठा कैंटीन वाला अपना बकाया काटता और बाकी पैसे बगल वाली मेज पर बैठे पानवाले को दे देता। मैं छुपकर सिगरेट पीता था, लेकिन मैं कभी उससे सिगरेट नहीं खरीदता था क्योंकि अगर बॉस को पता चल जाता, तो मेरी खैर नहीं। शुक्र है, मेरा पानवाले के साथ कोई खाता नहीं था, इसलिए वह पैसे दंबरा जी को दे देता था, जो हेड प्रोजेक्शनिस्ट थे और गुपचुप तरीके से सट्टेबाजी का धंधा चलाते थे। वह अपनी बकाया राशि काट लेता था और कटौती के बाद जो कुछ भी बचता था, वही व्यक्ति को हाथ में मिल जाता था।

उस दिन, चूंकि मैं छुप-छुपकर सिगरेट पीता था और अवैध जुआ नहीं खेलता था, इसलिए मुझे अपनी पहली तनख्वाह के रूप में पूरे 72 रुपये मिले। तब मुझे यह भी एहसास नहीं था कि असल तनख्वाह 84 रुपये थी और उसमें से चिकित्सा बीमा और कर्मचारी भविष्य निधि (ईपीएफ) की कटौती भी होती थी। हालांकि, ऐसे दिन ज्यादा दिन नहीं चले। मैंने कैंटीन में खाना शुरू कर दिया, पानवाले से सिगरेट खरीदने लगा और दंबरा जी के साथ उधार पर अवैध सट्टेबाजी करने लगा। नतीजा यह हुआ कि उनमें से तीन लोगों ने मेरा बकाया काट लिया, और तनख्वाह के दिन मुझे तनख्वाह नहीं मिलती थी, बल्कि बकाया राशि का एक ऋण मिलता था क्योंकि मेरी तनख्वाह पूरी तरह से बकाया नहीं चुका पाती थी। दुनिया के अधिकांश लोगों की तरह, मैं भी कर्ज के जाल में फंस गया था! मुझे लगता है कि आरके छोड़ने के समय भी मुझ पर पानवाले का 30 या 40 रुपये बकाया था।

और इस तरह आरके में मेरा सफर जारी रहा। मुझे वहां काम करते हुए एक साल हो गया था और उसी साल दिसंबर में मेरी फाइनल परीक्षा की प्रारंभिक परीक्षाएं थीं। हम 'मेरा नाम जोकर' की एडिटिंग कर रहे थे। मैं राज साहब के पास गया और उनसे कहा, 'सर, मैं अगले तीन हफ्तों तक शायद नहीं आ पाऊंगा।'

उनका एक शब्द का जवाब था, 'क्यों?'
मैंने कहा, 'मुझे अपनी प्रारंभिक परीक्षा के लिए पढ़ाई करनी है।'
उन्होंने इस बारे में बेपरवाही दिखाई और कहा, 'कोई बात नहीं, तुम काफी बुद्धिमान हो। मुझे पता है कि स्टूडियो आते रहने पर भी तुम अपनी पढ़ाई संभाल लोगे।'
राज साहब ने मुझे परीक्षा की चिंता न करने को कहा था, इसलिए मैंने काम करना जारी रखा और प्रारंभिक परीक्षा की तैयारी नहीं की। मैं फेल हो गया! जाहिर है, मेरे माता-पिता मेरे खराब प्रदर्शन से बहुत परेशान थे और मैं भी तनाव में था। बाद में जब मैं स्टूडियो गया, तो मैंने राज साहब से अपनी परेशानी साझा की। मैंने उनसे कहा, 'सर, बड़ी समस्या है, मैंने पढ़ाई नहीं की और मैं प्रारंभिक परीक्षा में फेल हो गया।'
मेरे चिंतित चेहरे को देखकर, उन्होंने स्थिति पर बहुत सहानुभूति जताई और कहा, 'चिंता मत करो, ठीक है? चलो मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। हम सेंट जेवियर स्कूल जाएंगे और प्रिंसिपल से मिलेंगे। मैं उन्हें मना लूंगा कि वे तुम्हें आगे पढ़ने दें और तुम्हें यह भी बता दूंगा कि तुम पास क्यों नहीं हुए।'
A wave of relief washed over me because I was confident that Raj Sahab would convince our principal. I was very happy that he was coming with me and I took an appointment with the principal. However, one evening before the appointment, Raj Sahab was having a drink with some unit members in the cottage garden. I was standing in a corner with a Coke in my hand, and suddenly in the presence of everybody, he took off on me, ‘Ab main kal kya karunga? Tumhare saath jaunga college? Kya bolunga principal ko? Ki yeh bohot honhaar ladka hai? Jo fail ho gaya? Fail ho gaya aur honhaar ladka hai?! Meri zindagi yahi hai kya? Chintu jab fail ho gaya tha, Campion School mein toh mujhe ek trophy donate karni padi thi taki usko aage padhne dein. Tum bhi aise hi ho. Sab bacche aise hi hain.’
अगले दिन, वह मेरे साथ कॉलेज आए और मुझे याद है, इससे काफी हलचल मच गई थी। हर कोई सोच रहा था कि राज कपूर कैंपस में क्या कर रहे हैं? इसी बीच, हम प्रधानाचार्य से मिलने

गए और प्रधानाचार्य ने कहा, 'नहीं, मुझे खेद है, मैं उन्हें प्रवेश नहीं दे सकता।' राज साहब के बहुत समझाने के बाद भी, उनका फैसला अंतिम था।

प्रधानाचार्य के साथ हमारी असफल कोशिश की भरपाई के लिए, वह मुझे नानकिंग में दोपहर के भोजन के लिए ले गए और मुझसे कहा, 'भूल जाओ! प्रमाण पत्र प्राप्त करके तुम क्या करोगे? क्योंकि जिस तरह से तुम मेरे साथ काम कर रहे हो, और जो मैं तुममें देख रहा हूँ, मुझे नहीं लगता कि तुम्हें किसी डिग्री या प्रमाण पत्र की आवश्यकता होगी।'

मुझे बस इतना ही आत्मविश्वास चाहिए था। वे मेरे गुरु, पिता तुल्य और मित्र बन गए, जिन्होंने पेशेवर और व्यक्तिगत रूप से मुझे जीवन भर मार्गदर्शन दिया। मैं हर दिन स्टूडियो में वापस आकर और अधिक सीखना चाहता था। मैं उनसे फिल्म के बारे में सब कुछ सीखने में ही आनंदित था। राज साहब के स्टूडियो में मैंने थिएटर में प्रोजेक्टर चलाना, रील लगाना, कैमरा चलाना, साउंड रिकॉर्डिंग करना, एडिटिंग करना सीखा; वास्तव में, मुझे फिल्म निर्माण के हर पहलू से अवगत कराया गया। मेरे लिए राज साहब एक जीनियस थे। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि एक व्यक्ति को सिनेमा का इतना व्यापक ज्ञान हो सकता है।

राज कपूर वह कठपुतली नचाने वाले थे जिन्होंने पटकथा, संवाद, संगीत, तकनीक और दृश्यों की डोर को बड़ी कुशलता से संभाला। उन्होंने मुझे फिल्म निर्माण की ऐसी गहरी समझ दी जो मेरे मन में हमेशा के लिए बस गई।

आरके स्टूडियोज: रचनात्मकता की नींव

चेम्बूर में आरके स्टूडियोज़ नामक उस छोटे से भूखंड पर भारतीय सिनेमा के केंद्रबिंदु रहे राज कपूर का निवास था। स्टूडियो में कला सीखने के लिए जो पवित्र वातावरण मिलता था, उसने मुझे पूरी तरह मंत्रमुग्ध कर दिया। यह एक पूजनीय स्थान था जिसने मुझे मेरे जीवन के सर्वश्रेष्ठ अनुभव और सबक दिए। आरके स्टूडियोज़ न केवल मेरा कार्यस्थल था, बल्कि मेरा पूजा स्थल भी था।

इसका आकर्षण बेहद भव्य और विस्मयकारी था। आरके स्टूडियो में प्रवेश करते ही एक विशाल लोगो दिखाई देता था, जिसमें एक व्यक्ति एक हाथ में वायलिन लिए खड़ा है और एक महिला उसकी बाहों में सिमटी हुई है। यह लोगो राज कपूर की शैली में निहित रोमांस और संगीत का प्रतीक था। आवारा फिल्म की रिलीज के समय से ही यह लोगो आरके फिल्म्स एंड स्टूडियोज का प्रतीक बन गया था। इसे प्रख्यात डिजाइनर एम.आर. अचरेकर ने डिजाइन किया था और प्रसिद्ध एवं सम्मानित श्री बालासाहेब ठाकरे ने चित्रित किया था।

कहा जाता है कि लोगो बरसात फिल्म के उस ऐतिहासिक दृश्य से प्रेरित है जिसमें नरगिस जी राज साहब की ओर दौड़ती हैं, जो हाथ में वायलिन लिए खड़े हैं। राज साहब उन्हें गले लगा लेते हैं और पीछे की ओर झुकाकर एक सहज और अंतरंग मुद्रा बनाते हैं। इस क्लासिक दृश्य को, जैसा कि सभी रचनात्मक कार्यों के लिए प्रेरणा की आवश्यकता होती है, राज साहब द्वारा स्टटगार्ट में देखी गई एक पेंटिंग से प्रेरणा मिली थी। पेंटिंग में एक पुरुष वायलिन पकड़े हुए एक महिला को भावुक आलिंगन में लिए हुए है, जो पीछे की ओर झुकी हुई पियानो से टेक लगाए हुए है। यह पेंटिंग फ्रांसीसी कलाकार रेने-जेवियर प्रिनेट ने बनाई थी, जो स्वयं लियो टॉल्स्टॉय के उपन्यास 'द क्रुत्ज़र सोनाटा' से प्रेरित थे, जिसमें एक वायलिन वादक एक पियानोवादक के प्यार में पड़ जाता है और जब उसे पता चलता है कि वह उससे प्यार नहीं करती, तो वह उसकी हत्या कर देता है।

लोगो के नीचे भगवान शिव की एक विशाल प्रतिमा दिखाई देती थी। राज साहब शिव के भक्त थे। किसी भी नई फिल्म के मुहूर्त पर उनके पिता, प्रसिद्ध पृथ्वीराज कपूर, भगवान शिव की पूजा करते थे। हालांकि राज साहब किसी विशेष धर्म में कट्टर आस्था नहीं रखते थे, लेकिन वे

एक ईश्वर में विश्वास रखते थे और सभी धर्मों का सम्मान करते थे, क्योंकि वे सर्वशक्तिमान के विभिन्न रूप थे।

आरके स्टूडियो की स्थापना के पीछे एक रोचक कहानी है। जब राज साहब ने 'आग' फिल्म बनाने का फैसला किया, तब उनके पास सिर्फ 13,000 रुपये थे। उन्होंने अपनी फिल्म के निर्माण की योजना के बारे में विश्व मेहरा जी (मामा जी) को बताया, जो पृथ्वी थिएटर में उनके करीबी सहयोगी थे। फिल्म के लिए कई लोगों की मदद की ज़रूरत थी - मेकअप आर्टिस्ट, अभिनेता और नर्तक, जो उस समय पृथ्वी थिएटर में काम कर रहे थे। पृथ्वी थिएटर में कार्यरत सभी लोगों के सामूहिक प्रयास से ही उनका सपना साकार हो सका।

उन दिनों, किसी फिल्म निर्माता के लिए स्टूडियो से जुड़ना बेहद ज़रूरी था, क्योंकि स्टूडियो में सेट लगाने के लिए एक ढका हुआ क्षेत्र होता था और सेट की लागत भी स्टूडियो ही वहन करता था। स्टूडियो होने का मतलब यह भी था कि आपके पास साउंड उपकरण, साउंड रिकॉर्डिस्ट, एडिटिंग रूम, कैमरे और बहुत कुछ उपलब्ध हो।

राज साहब फिल्म बनाने के जुनून में चूर होकर श्री लखानी के स्वामित्व वाले ईस्टर्न स्टूडियो से जुड़ गए। राज साहब अपनी फिल्मों में बेहतरीन तकनीशियनों को चाहते थे और उन्होंने इसके लिए वी.एन. रेड्डी की सेवाएं लीं, जो एक बहुत ही प्रख्यात कैमरामैन थे। 'आग' के निर्माण में उन्हें ₹3,00,000 का खर्च आया, जो उस समय बहुत बड़ी रकम थी। राज साहब को पूरा भरोसा था कि कहानी में गहराई होने और उनकी दूरदृष्टि के चलते उन्हें इस फिल्म से मुनाफा होगा। हालांकि, फिल्म को समीक्षकों से सराहना तो मिली, लेकिन बॉक्स ऑफिस पर यह सफल नहीं हो पाई। आर्थिक नुकसान के बावजूद, राज साहब ने एक और फिल्म बनाने का फैसला किया।

श्री लखानी ने सहायक साउंड रिकॉर्डिस्ट अलाउद्दीन खान, जिन्हें हम खान साहब कहते थे, को मुख्य साउंड इंजीनियर का पदभार सौंप दिया था। हालांकि राज साहब अनुभवी और तकनीकी रूप से कुशल पेशेवरों के साथ काम करना चाहते थे, लेकिन श्री लखानी ने उन्हें एक सहायक की सेवाएं लेने के लिए मजबूर कर दिया। राज साहब को इस बात से बहुत निराशा हुई कि उनके पास कोई विकल्प नहीं था। उन्होंने फैसला किया कि वे खान साहब को स्वयं प्रशिक्षित करेंगे ताकि वे उद्योग के सबसे प्रतिष्ठित साउंड इंजीनियर बन सकें।

राज साहब के मार्गदर्शन में खान साहब ने बॉस की उम्मीदों पर खरा उतरते हुए सफलता की बुलंदियों को छुआ। श्री लखानी इस बात से नाराज़ थे कि खान साहब को अब ज़्यादा फ़ायदेमंद काम मिल रहे थे, और इसमें बाधा डालने के लिए उन्होंने खान साहब के अनुबंध की शर्तों को सख्ती से लागू किया और राज साहब को अपनी अगली फ़िल्म में खान साहब को साउंड इंजीनियर के तौर पर इस्तेमाल करने से मना कर दिया। इससे बॉस ने श्री लखानी से संबंध तोड़ लिए और खान साहब को अदालत से अपना अनुबंध रद्द करवाने और अपनी अगली फ़िल्म के लिए दूसरा स्टूडियो ढूंढने में मदद की। लोगों ने उन्हें समझाने की कोशिश की कि वे इतने ज़िद्दी न बनें और हालात के साथ चलें, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, 'मैं अपने तकनीशियन के चुनाव में कोई समझौता नहीं करूंगा।'

राज साहब ने बरसात बनाने का फैसला किया, जिसके लिए उन्होंने दिग्गज के. आसिफ के स्वामित्व वाले रूप तारा स्टूडियोज के साथ समझौता किया, जिन्होंने उनका खुले दिल से स्वागत किया। उन्हें निर्माण के लिए वित्तीय सहायता जुटाने की आवश्यकता थी क्योंकि नियमित निवेशक ऐसे निर्माता में निवेश करने के इच्छुक नहीं थे जिनकी पिछली फिल्म व्यावसायिक रूप से बुरी तरह फ्लॉप रही थी। इसलिए, राज साहब ने अपने पिता पृथ्वीराज कपूर से मदद लेने का निर्णय लिया, जिन्होंने उदारतापूर्वक अपने बेटे को फिर से अपने पैरों पर खड़ा होने में मदद की।

राज साहब ने बरसात फिल्म के गीत 'हवा में उड़ता जाए' की शूटिंग कश्मीर की खूबसूरत घाटी में करने का फैसला किया, जो कि ऐसी जगह थी जहां पहले कभी किसी फिल्म की शूटिंग नहीं हुई थी। इससे दर्शकों के लिए दृश्य अनुभव और भी बेहतर हो गया। कश्मीर में शूटिंग करना अभूतपूर्व था क्योंकि इसका मतलब था पूरी कास्ट, क्रू और उपकरणों को लाने-ले जाने का अत्यधिक खर्च और यात्रा एवं आवास से जुड़ी कई तरह की समस्याएं।

राज साहब अपने दर्शकों को एक शानदार दृश्य अनुभव देने में कोई कसर नहीं छोड़ना चाहते थे। उन्होंने तय किया कि वे और फिल्म के सिनेमैटोग्राफर जल मिस्त्री जी किसी तरह कश्मीर पहुँचेंगे और वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों को एक स्टैंड-इन के साथ फिल्माएँगे। इन दृश्यों को महाबलेश्वर में फिल्माए जाने वाले अभिनेता के शॉट्स के साथ मिलाकर दिखाया जाएगा। बिजली से चलने वाले भारी-भरकम कैमरे को ढोने का बोझ कम करने के लिए उन्होंने ईमो

कैमरा खरीदा – जो उस समय का एकमात्र पोर्टेबल, बैटरी से चलने वाला 35 मिमी कैमरा था। दरअसल, यह खरीदारी राज साहब का अपना स्टूडियो खोलने के सपने को साकार करने की दिशा में पहला कदम था।

बरसात फिल्म बनाते समय, जिसके लिए उनके पास वितरक और एक फाइनेंसर थे, उन्होंने एक अभिनेता के रूप में अधिक फिल्मों में काम करना शुरू कर दिया, क्योंकि इससे उन्हें अधिक धन प्राप्त होता, जिसका उपयोग वे अपने अंतिम सपने को पूरा करने में करते। उनका अगला कदम एक साउंड ट्रक खरीदना था, जो सभी साउंड रिकॉर्डिंग उपकरणों को रखने के लिए एक आवश्यक उपकरण था। स्टूडियो बनाने के बाद भी, साउंड ट्रक उनके पास स्थायी रूप से मौजूद रहा। तीसरा कदम था एक पेशेवर 35 मिमी कैमरा, मिशेल एनसी खरीदना। ये सभी चीजें फिल्म निर्माण के प्रति उनके जुनून से उपजी थीं और स्टूडियो के मालिक बनने के लिए आवश्यक आधारशिला बनीं।

बरसात की अभूतपूर्व सफलता के बाद, राज साहब ने आवारा फिल्म के लिए राधू कर्माकर को अपना सिनेमैटोग्राफर नियुक्त करने का फैसला किया। राधू साहब ने कोलकाता में किस्मत का धानी से अपने फिल्मी करियर की शुरुआत की थी, जिसके बाद उन्होंने ज्वार भाटा, नौकादुबी और अन्य फिल्मों में काम किया। रात्रि दृश्यों की शूटिंग में उनकी महारत और उच्च कंट्रास्ट प्रकाश व्यवस्था की तकनीक ने उन्हें अपार प्रशंसा दिलाई थी। इन्हीं खूबियों के कारण राज साहब ने उनकी सेवाएं लीं और दोनों का साथ राम तेरी गंगा मैली तक चला।

आवारा फिल्म के निर्माण का ठेका आशा स्टूडियो को दिया गया था। राज साहब ने एक दृश्य की योजना बनाई थी जिसमें नरगिस जी स्विमिंग कॉस्ट्यूम पहनकर तालाब में प्रवेश करती हैं। हालांकि अधिकांश फिल्में स्टूडियो में बने सेट पर शूट की जाती हैं, लेकिन इस विशेष दृश्य के लिए उन्हें एनएससीआई क्लब के स्विमिंग पूल में शूटिंग करनी थी। नरगिस जी को इतने सारे लोगों के बीच शूटिंग स्थल पर स्विमिंग कॉस्ट्यूम पहनने में झिझक थी। नरगिस जी को मनाने के लिए, उन्होंने बिना पूर्व अनुमति के स्टूडियो की जमीन खोदकर शूटिंग के लिए एक तालाब बना दिया। स्टूडियो मालिकों ने अनुमति न लेने के लिए राज साहब को कड़ी फटकार लगाई और 80,000 रुपये का भारी भरकम मुआवजा मांगा। उन्होंने तुरंत स्टूडियो को पैसे

वापस कर दिए, लेकिन वे बहुत नाराज थे और स्टूडियो मालिकों से कहा, 'मुझे भुगतान की गई राशि से परेशानी नहीं है, बल्कि अपनी रचनात्मक गतिविधियों के लिए अनुमति लेने का आदेश देना मुझे बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं है। मैं अब इस स्टूडियो में कभी शूटिंग नहीं करूंगा!'

आगे की शूटिंग के लिए वे श्रीकांत स्टूडियो चले गए, लेकिन अपने खुद के स्टूडियो की ज़रूरत दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी। श्रीकांत स्टूडियो के बगल में ही 2 एकड़ ज़मीन थी, जिसे राज साहब अपना स्टूडियो बनाने के लिए चाहते थे। ज़मीन की कीमत ₹1,50,000 थी और उस समय उनके पास इतनी बड़ी रकम नहीं थी; फिर भी, वे अपनी कला के प्रति समर्पित थे और स्टूडियो को अपनी रचनात्मकता का स्वाभाविक विस्तार मानते थे। उन्होंने अन्य निर्माताओं के लिए अथक परिश्रम और लगन से ज़रूरी रकम जुटाई। उन्होंने हुंडी (प्रॉमिसरी नोट) पर भी उधार लिया और आखिरकार ज़मीन खरीदकर अपना आरके स्टूडियो बनाया।

स्टूडियो बनाने से उनके घर में समस्याएं पैदा हो गईं। कृष्णा आंटी कहती थीं, 'हम किराए के घर में कब तक रहेंगे? घर खरीदने में पैसा लगाओ।'

जिस पर वह जवाब देता, 'मैं...मैं एक घर खरीदूंगा। लेकिन पहले मुझे एक स्टूडियो चाहिए। स्टूडियो होने पर ही मैं घर खरीदने के लिए पर्याप्त पैसा कमा पाऊंगा। मुझे स्टूडियो बनाने दीजिए, आप चिंता न करें, आखिरकार मैं आपको एक घर खरीद कर दूंगा...'

अपने सपनों का स्टूडियो बनाने में राज साहब ने बहुत मेहनत और लगन लगाई। उन्होंने आरके स्टूडियो में 'आवारा' फिल्म पर काम शुरू किया, लेकिन उस समय वहां छत नहीं थी। दिन के उजाले से बचने के लिए शूटिंग सिर्फ रात में ही होती थी। 'आवारा' की शूटिंग के दौरान, एक तूफानी रात में, छत न होने के कारण सेट बह गया। इसी घटना ने राज साहब को छत बनवाने के लिए प्रेरित किया।

स्टूडियो की छत बनने के बाद राज साहब का लालच बढ़ गया। उन्हें एक एडिटिंग रूम और एक प्रीव्यू थिएटर चाहिए था जहाँ वे अपनी फ़िल्में एडिट और देख सकें। इसलिए उन्होंने प्रशासनिक भवन की छत पर एक एडिटिंग रूम और उससे लगा हुआ एक थिएटर बनवा दिया। थिएटर के लिए उन्होंने किनारों पर लकड़ी के सपोर्ट लगाए और बोरियों को जोड़कर

थिएटर बनाया, जिसके कारण इसका नाम 'गोनपथ थिएटर' पड़ गया। बैठने के लिए इधर-उधर कुछ बेंचें रखी थीं।

इसके बाद राज साहब आवारा फिल्म पूरी कर पाए, जो बेहद सफल रही। फिल्म की सफलता से उन्हें इतना पैसा मिला कि वे आरके स्टूडियो को एक सुचारू रूप से चलने वाले स्टूडियो में बदल सके। आखिरकार उन्होंने सब कुछ सही ढंग से व्यवस्थित कर लिया था। आवारा के बाद उन्होंने कई और सफल फिल्में बनाईं और जब उन्होंने संगम का निर्माण शुरू किया, तब जाकर गोनपथ थिएटर को एक स्थायी सिनेमाघर में बदला गया। संगम की सफलता के बाद उन्होंने आरके स्टूडियो को और विस्तार देने के लिए बगल में स्थित श्रीकांत स्टूडियो भी खरीद लिया।

राज साहब की रचनात्मकता के विकास का केंद्र बिंदु आरके स्टूडियो था। यहाँ कई फिल्मों की शूटिंग हुई है। स्टूडियो में चार स्टेज थे, जिनमें से पहला स्टेज सबसे महत्वपूर्ण था क्योंकि यह उनके द्वारा निर्मित पहला साउंड स्टेज था। कई प्रख्यात फिल्म निर्माता आरके स्टूडियो में शूटिंग करते थे। राज साहब शाम को स्टूडियो का दौरा करने, विभिन्न स्टेजों पर शूटिंग कर रही यूनिटों से मिलने और उनका हालचाल जानने के लिए आते थे। अन्य फिल्म यूनिटों के लिए उनसे मिलना और बातचीत करना सम्मान की बात मानी जाती थी। मैं उनके पीछे-पीछे जाता था और मुझे एल.वी. प्रसाद, मनमोहन देसाई और अन्य ऐसे ही महान फिल्म निर्माताओं को उनकी शूटिंग करते देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन मुलाकातों ने मेरे ज्ञान को बढ़ाया और मैं खुद को भाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे अपने समय के महानतम फिल्म निर्माताओं से सीखने और इन उस्तादों से ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला।

आरके थिएटर में एक कॉस्ट्यूम डिपार्टमेंट भी था, जिसमें 'आग' फिल्म की शूटिंग के समय से लेकर अब तक के कॉस्ट्यूम मौजूद थे और हर नई फिल्म के साथ यह डिपार्टमेंट बढ़ता ही गया। अगर आप वहां जाते, तो आपको 'आग' और 'बरसात' फिल्मों में नरगिस जी के कॉस्ट्यूम के साथ-साथ 'मेरा जूता है जापानी' फिल्म में राज साहब के जूते भी देखने को मिलते। हम कुछ भी उठाकर उनकी फिल्मों में इस्तेमाल कर सकते थे। दुर्भाग्य से, आरके थिएटर में आग लगने से वह सारा सामान जलकर राख हो गया और उन्होंने अपनी इस अनमोल विरासत को खो दिया।

राज साहब समय और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ स्टूडियो में नए-नए उपकरण जोड़ते रहे। इससे न केवल स्टूडियो पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा, बल्कि स्टूडियो में काम करने वाले लोग भी संतुष्ट और खुश रहे। राज साहब अपने तकनीशियनों को बहुत महत्व देते थे। उनके पास कई बेहद कुशल लोग काम करते थे और वे उन्हें अपने परिवार की तरह मानते थे। वे सचमुच उनका परिवार थे।

राज साहब हर साल होली पर आरके स्टूडियो में एक भव्य आयोजन करते थे। यह एक शानदार और प्रतिष्ठित कार्यक्रम होता था। उद्योग जगत के लोग और उनके मित्र दोपहर 2:30 बजे के बाद वहां आते थे। उनका विचार था कि दोस्तों के साथ होली मनाने के बाद, सभी लोग स्टूडियो में आकर फिल्म उद्योग की एक इकाई के रूप में आनंद लें। वे सब मिलकर गाते, पीते और मौज-मस्ती करते थे। राज साहब आरके स्टूडियो को रचनात्मक लोगों का एक ऐसा केंद्र बनाना चाहते थे जहां लोग आकर बैठ सकें और रचनात्मक विचारों पर चर्चा कर सकें। राज साहब के लिए फिल्म निर्माण एक उत्सव था, और उनकी आंखों में इस उत्सव से मिलने वाली खुशी झलकती थी। वे सबके साथ बैठकर बातें करते थे। उनमें यह खूबी थी कि वे लोगों से बात करके उन्हें समझते थे और उनसे प्रेरणा भी लेते थे।

राज साहब के बेहद काबिल बेटे रणधीर कपूर, जिन्हें डब्बू साहब के नाम से जाना जाता था, अपने पिता के बहुत अच्छे दोस्त थे। वे हमेशा काम की प्रगति पर नजर रखते थे और जरूरत पड़ने पर अपने पिता की मदद करते थे। डब्बू साहब ने अपने पिता की विरासत को आगे बढ़ाया और यह सुनिश्चित किया कि राज साहब हिंदी सिनेमा के इतिहास में रचनात्मकता और फिल्म निर्माण के एक महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में जाने जाएं।

टराइन

राज साहब अपने सबसे भरोसेमंद तकनीशियनों - राधू साहब और खान साहब - के साथ मिलकर सिनेमा की 'त्रिमूर्ति' का गठन करते थे: निर्माता, उनकी आंखें और उनके कान।
यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वे राज साहब के लिए अपरिहार्य थे। तीनों ने आरके के स्वर्णिम युग में एक साथ काम किया था और स्टूडियो की दीवारों के भीतर होने वाले जादू में उनका अभिन्न योगदान था। उन्होंने एक मजबूत पेशेवर और कलात्मक बंधन विकसित किया, रचनात्मक विचारों का आदान-प्रदान किया और रचनात्मक कार्यों को लेकर आपस में बहस भी की। राज साहब ने उन्हें प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया और उनके कुशल मार्गदर्शन से उन्होंने जो परिणाम प्राप्त किए वे उल्लेखनीय थे।
आवारा फिल्म में राधू साहब का काम असाधारण था! ब्लैक एंड व्हाइट फोटोग्राफी बहुत मुश्किल होती है और इसमें बारीकी से ध्यान देने की जरूरत होती है, क्योंकि प्रकाश और छाया का खेल ही निर्देशक द्वारा फिल्म के लिए परिकल्पित दृश्य प्रभाव पैदा करता था। राधू साहब इस पहलू को बखूबी निभाने में माहिर थे। वे निर्देशक के विजन को साकार करने के लिए दृढ़ संकल्पित थे और पूर्णता प्राप्त करने के लिए अपनी गति से काम करते थे। आम तौर पर, जब आप किसी सिनेमैटोग्राफर से पूछते कि किसी विशेष रूप से जटिल शॉट की लाइटिंग में कितना समय लगेगा, तो वह कम समय बताते हुए कहते, शायद एक घंटा, लेकिन जब राधू साहब से यही सवाल पूछा जाता, तो उनका जवाब होता, 'कम से कम पांच घंटे'।
जब 'आवारा' को अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोहों में प्रदर्शित किया गया, तो फिल्म निर्माताओं ने उनकी प्रतिभा को पहचान लिया। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विख्यात फिल्म निर्माता और निर्देशक सर अलेक्जेंडर कोर्डा, राधू साहब के काम से पूरी तरह मुग्ध हो गए। उन्होंने राज साहब को सुझाव दिया कि जब वे ब्लैक एंड व्हाइट से रंगीन फिल्मों की ओर रुख करें, तो राधू साहब को उस्ताद छायाकार जैक कार्डिफ के मार्गदर्शन में प्रशिक्षण दिलाएं, जिसे राधू साहब ने 'संगम' फिल्म शुरू करने से पहले पूरा किया।
संगम की दृश्य गुणवत्ता इसे सबसे यादगार फिल्मों में से एक बनाती है। अंबाला हवाई अड्डे पर संगम की शूटिंग के दौरान, राज साहब ने रनवे के किनारे 100 ग्रेट विमानों को कतार में

खड़ा करवाया था, ताकि विजयंतीमाला जी के उस विमान के साथ दौड़ने का अविस्मरणीय दृश्य फिल्माया जा सके जिसे राज साहब उड़ा रहे थे। जब राज साहब ने यह दृश्य तैयार करवाया, तो राधू साहब ने बिना किसी झिझक के बॉस से पूछा, 'क्या हम सभी विमानों को एक फुट पीछे कर सकते हैं?' मेरा मानना है कि बॉस की रचनात्मक विलक्षणता उनकी टीम में भी झलकती थी।

खान साहब एक कुशल तकनीशियन थे और उनमें हास्यबोध भी भरपूर था। रकिस्तान में हमारा एक थिएटर था जहाँ हम डबिंग करते थे। डबिंग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पहले से रिकॉर्ड किए गए संवाद को दोबारा रिकॉर्ड किया जाता है और पिछले संवाद पर इस तरह से लगाया जाता है कि उसमें से शोर हट जाए। डबिंग थिएटर ध्वनिरोधक होने चाहिए। बाहर से कोई ध्वनि अंदर नहीं आनी चाहिए और स्पष्ट संवाद रिकॉर्ड होना चाहिए। रिकॉर्डिस्ट को चलती हुई फिल्म को देखना होता है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि डब की गई ध्वनियाँ अभिनेता के भावों के अनुरूप हों और साथ ही डब की गई ध्वनि की गुणवत्ता और तालमेल एकदम सही हो।

आरके स्थित डबिंग स्टूडियो ध्वनिरोधक नहीं था; वास्तव में, वहाँ हर तरह की आवाज़ें सुनाई देती थीं! चार इमारतें दूर स्थित एक कारखाने से मशीनों के चलने और टकराने की आवाज़, सड़क पर यातायात और अन्य कई तरह की आवाज़ें स्पष्ट रूप से सुनाई देती थीं। डबिंग स्टूडियो में इस्तेमाल होने वाले उच्च गुणवत्ता वाले माइक्रोफ़ोन सभी शोर को पकड़ लेते थे, जिससे ध्वनि को अलग करना मुश्किल हो जाता था।

साउंड ट्रक, जहाँ खान साहब साउंड की निगरानी करते थे, स्टूडियो के दूसरे छोर पर था! वहाँ पहुँचने के लिए लगभग 400-450 फीट चलना पड़ता था। इस तरह उनका साउंड से कोई सीधा संपर्क नहीं होता था, लेकिन जब हम साउंड सुनते थे, तो वह कमाल का होता था! खान साहब में ऐसी प्रतिभा थी कि जब भी आरके खान की कोई फिल्म रिलीज होती, उन्हें सर्वश्रेष्ठ साउंड रिकॉर्डिस्ट का फिल्मफेयर पुरस्कार मिलता था।

आरके की टीम में और भी लोग थे। उन दिनों फिल्में ज्यादातर ऐसे सेटों पर शूट की जाती थीं जिन्हें बिल्कुल नए सिरे से बनाना पड़ता था और बैकग्राउंड को खुद पेंट करना पड़ता था।

इसमें शामिल सौंदर्यशास्त्र का दायरा बहुत बड़ा था और राज साहब के मन में हमेशा एक विस्तृत और विशिष्ट दृश्य होता था।

आवारा फिल्म के लिए उन्हें झुग्गी-झोपड़ियों के सेट के साथ-साथ अमीरों के घरों, आंगनों और गलियों के बाहरी और अंदरूनी दृश्यों की भी आवश्यकता थी। उनके द्वारा परिकल्पित शानदार 'स्वप्न दृश्य' में, सेट में अवास्तविक छवियां शामिल थीं। सेट की जटिलता को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने प्रसिद्ध आरके लोगो के डिजाइनर अचरेकर साहब से संपर्क किया ताकि वे उनके विचार को साकार कर सकें। अचरेकर साहब, जो एक कला निर्देशक थे, फिल्मों में काम करने के इच्छुक नहीं थे, लेकिन बॉस के सिनेमा के प्रति दृढ़ संकल्प और जुनून ने उन्हें यह काम स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया और बाकी सब इतिहास है।

स्टूडियो में हरीश दादा जैसे और भी लोग थे, जो एक इलेक्ट्रीशियन थे, जिन्हें आज गैफर के नाम से जाना जाता है। हरीश दादा एक बुजुर्ग व्यक्ति थे और लंबे समय से आरके स्टूडियो में काम कर रहे थे। उनकी और राधू साहब की आपस में बहुत अच्छी बनती थी। जब राज साहब राधू साहब को कोई शॉट देते और कहते, 'मुझे यही चाहिए', तो हरीश दादा राधू साहब के बिना कहे ही बैकग्राउंड की लाइटिंग शुरू कर देते थे। हरीश दादा बेसिक काम करते और राधू साहब आकर जरूरत पड़ने पर फाइनल एडजस्टमेंट करते। राज साहब कभी-कभी हरीश दादा को सीधे निर्देश देते, 'हरीश, ये एरिया जो पीछे है उसे थोड़ा डार्क करना है।'

कैमरे को रेल की पटरियों पर चलाने के लिए ट्रॉली का इस्तेमाल किया जाता है, जिन्हें समतल ज़मीन पर समान रूप से बिछाया जाना चाहिए ताकि ट्रॉली सुचारू रूप से चल सके। राज साहब के यहाँ बापू काटकर नाम का एक बढ़ई था, जिसकी एक अनोखी कहानी है। जब वे संगम फिल्म में 'बोल राधा बोल' गाने की शूटिंग कर रहे थे, तब कोहरा बनाने के लिए सेना के पुराने धुएँ के कनस्तरों का इस्तेमाल किया गया था। घने काले बालों वाले बापू दादा को कनस्तर खोलने का काम सौंपा गया था। दुर्भाग्य से, एक कनस्तर खुल गया और धुआँ उनके चेहरे पर जा गिरा। जब धुआँ छटा, तो उनके काले बाल सफ़ेद हो चुके थे!

बापू दादा ट्रॉली शॉट के लिए रेल बिछाने में माहिर थे। स्टूडियो जैसी समतल और सख्त ज़मीन पर ट्रॉली बिछाना आसान था, लेकिन खुले में, ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर, ट्रॉली को सुचारू रूप से चलाना लगभग नामुमकिन था। यहीं पर बापू दादा की विशेषज्ञता काम आती

थी। जगह या ज़मीन कैसी भी हो, वे ट्रॉली की रेल को इतना सुचारू रूप से बिछाते थे कि ट्रॉली ऑपरेटर बिना किसी परेशानी के उसे चला सके। राज साहब उनके बिना शूटिंग नहीं करते थे और यहां तक कि जब वे प्रेम रोग के कुछ दृश्यों की शूटिंग के लिए एम्स्टर्डम गए, तब भी वे बापू दादा को अपने साथ ले गए। मेरे काम पर राज साहब का प्रभाव कैमरे की गति पर काफी हद तक पड़ा और मैंने अपनी सभी फिल्मों के लिए बापू दादा की सेवाएं लीं। उनके निधन से एक खालीपन सा आ गया और उसके बाद, जब भी मुझे ट्रॉली शॉट के लिए रेल बिछानी होती थी, मैं उन्हें याद करता था और उनकी आत्मा की शांति के लिए मौन प्रार्थना करता था।

हमारे साथ ओम जी, ओम प्रकाश मेहरा भी थे, जो स्टूडियो में प्रोडक्शन इंचार्ज थे; वे किसी सीईओ की तरह थे और उनकी अपनी कुछ अजीब आदतें थीं। वे हर दिन ऑफिस आते, अपनी पेमेंट डायरी खोलते और अपना नाम लिखकर उसके आगे लिखते – खुद को ₹500 का भुगतान किया। जब मैंने उनसे उनकी इस अजीब आदत के बारे में पूछा, तो उन्होंने तुरंत बताया, 'सुनो, मैं हर दिन अपने लिए ₹500 निकाल लेता हूँ क्योंकि मेरी सैलरी बहुत कम है। अगर मैं ये रकम खुद अकाउंट से नहीं निकालता, तो मैं इसे ऐसे तरीकों से निकाल लेता हूँ जिनका बॉस को पता भी नहीं चलता; मैं चुपके से निकाल लेता हूँ। मैं बहुत ईमानदार आदमी हूँ और बेईमानी से मुझे नफरत है।'

मुझे लगता है कि हमारे आस-पास ऐसे लोग ही आते हैं जिनकी आदतें हमारी तरह ही अनोखी होती हैं। इसलिए, राज साहब के साथ काम करने वाले लोगों को देखकर मुझे कोई हैरानी नहीं हुई। ओम जी और राज साहब का रिश्ता कुछ ज़्यादा ही अजीब था। दोनों को ही शराब पीने का बहुत शौक था और जब वे नशे में होते तो अक्सर झगड़ा करते थे। कभी राज साहब ओम जी को पकड़कर स्टूडियो से बाहर निकाल देते थे तो कभी ओम जी राज साहब को पकड़कर बाहर निकाल देते थे! इस अनोखे व्यवहार को देखकर आरके स्टूडियो का एक चौकीदार हमेशा उलझन में रहता था और समझ नहीं पाता था कि राज साहब बॉस हैं या ओम जी। एक रात देर से राज साहब स्टूडियो आए और चौकीदार ने उन्हें अंदर नहीं आने दिया। इसके बाद जो उलझन भरी बहस हुई, वही राज साहब और ओम जी के असामान्य रिश्ते का सबसे बड़ा सबूत है।

राज साहब: ‘आप मुझे अंदर क्यों नहीं आने दे रहे?’
चौकीदार: 'मैं नहीं कर सकता; साहब ने मुझे रात में किसी को भी अंदर आने की इजाजत न देने का आदेश दिया है।'
राज साहब: ‘सुनो, यह जगह मेरी है! मैं साहब हूँ!’
चौकीदार: 'तुम ऐसा नहीं करते और तुम साहब नहीं हो!'
राज साहब (हर पल अपना धैर्य खोते हुए): 'तो साहब कौन हैं?'
चौकीदार: ‘क्या आप उस आदमी को देख रहे हैं? वह साहब हैं।’
वह ओम जी की ओर इशारा कर रहा था क्योंकि उसे पूरा विश्वास था कि ओम जी ही स्टूडियो के मालिक हैं।
उनके रिश्ते में उतार-चढ़ाव के बावजूद, दोनों एक-दूसरे पर बहुत भरोसा करते थे और ओम जी बहुत कुशल थे। वे अपने काम में माहिर थे, यही वजह थी कि दोनों साथ मिलकर सबसे अच्छा काम करते थे।
फिर हमारे यहाँ हरीश बिबरा नाम के एक सज्जन थे, जो राज साहब के सचिव थे। हरीश जी का स्वभाव ही ऐसा था कि जब पूरी दुनिया नील आर्मस्ट्रांग के चंद्रमा पर उतरने का जश्न मना रही थी, तब उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मुझे व्हाइट हाउस का डाक पता पता है।
मैं असमंजस में पड़ गया और मैंने उससे पूछा, 'क्यों?'
उन्होंने कहा, ‘मैं अमेरिका के राष्ट्रपति को चंद्रमा पर पहले इंसान के उतरने की बधाई देने के लिए एक टेलीग्राम भेजना चाहता हूँ। मैं उस पर ‘राज कपूर की ओर से’ हस्ताक्षर करूँगा।’ मैं उनसे पूछना चाहता था कि क्या उन्हें लगता है कि राष्ट्रपति राज कपूर को जानते होंगे, लेकिन उनके चेहरे पर दिख रहे आत्मविश्वास ने मुझे चुप रहने पर मजबूर कर दिया।
हरीश जी की अनोखी हरकतों ने हमें अविस्मरणीय यादें दी हैं। जब राज साहब अपनी फिल्म संगम के लिए वैजयंतीमाला जी को लेना चाहते थे और उनके जवाब का इंतजार कर रहे थे, तब हरीश जी ने उन्हें एक टेलीग्राम भेजा जिस पर मशहूर शब्द लिखे थे, ‘बोल राधा बोल संगम होगा के नहीं’। यह घटना राज साहब की एक यादगार घटना बनी हुई है और एक मशहूर गाने के शुरुआती बोल (मुखड़ा) का आधार बन गई।

एस. कालाचंद्र, जिन्हें काला जी के नाम से जाना जाता था, मुख्य सहायक निर्देशक थे। काला जी की कहानी काफी रोचक थी। वे मद्रास (अब चेन्नई) से अपने एक मित्र के साथ फिल्म उद्योग में सहायक निर्देशक के रूप में शामिल होने की उम्मीद में बॉम्बे (अब मुंबई) आए थे। तो, वे दोनों राज कपूर से मिलने गए। राज साहब ने 'आग' की शूटिंग पूरी कर ली थी और उस समय 'बरसात' पर काम कर रहे थे। उनकी मुलाकात किसी के माध्यम से हुई और उन्होंने उनसे संभावित अवसरों के बारे में पूछा। राज साहब ने अपनी स्पष्टवादिता के साथ उनसे कहा, 'देखिए, मैं आप दोनों में से केवल एक को ही टीम में ले सकता हूँ क्योंकि आप दोनों के लिए जगह नहीं है।'

दोनों से बात करने के बाद, राज साहब को लगा कि काला जी ही उनके सहायक के रूप में सबसे उपयुक्त हैं। काला जी की दोस्त बहुत दुखी हुई और रोने लगी। चूंकि वह दोस्त भी एक नर्तक थी और उसे नौकरी की सख्त जरूरत थी, इसलिए राज साहब ने उसे पृथ्वी थिएटर में नौकरी दिलवा दी।

काला जी ने अपना पूरा जीवन आर.के. में सहायक के रूप में बिताया, और उनके मित्र एल.वी. प्रसाद उस दौर के प्रमुख फिल्म निर्माताओं में से एक बने और दादासाहेब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित हुए। दरअसल, राज साहब ने प्रसाद सर की पहली हिंदी फिल्म 'शारदा' में मुख्य भूमिका निभाई थी। राज साहब अक्सर मजाक में कहते थे कि काला जी और प्रसाद सर में से किसी एक को चुनने में उनका फैसला पूरी तरह से गलत साबित हो गया था।

राज साहब बेहद जानकार थे और अपनी ही तरह की एक गुप्त एजेंसी चलाते थे। उन्हें हमेशा पता रहता था कि उनके बारे में क्या कहा जा रहा है। मामा जी उनके हमेशा साथ रहते थे और आरके सीक्रेट सर्विसेज में स्टूडियो स्थापित करने में उनकी अहम भूमिका निभाई थी। मामा जी गपशप में मग्न रहते थे और दिन भर की खबरें, यहाँ तक कि कोई भी ताजा खबर, राज साहब को सुनाते थे। रेवती, राज साहब के निजी नौकर, उनकी मदद करते थे। जब रेवती जी बॉस के आसपास नहीं होते थे, तो वे स्टूडियो के हर कोने में छुपकर जानकारी इकट्ठा करते रहते थे। जब बॉस सुबह उठते थे, तो रेवती जी उनके पैर दबाते और उन्हें दिन भर की सुनी-सुनाई बातें बताते थे। राज साहब को मामा जी और रेवती जी से मिलने वाली गपशप बहुत पसंद थी। हमें हमेशा डर रहता था कि कहीं बॉस तक कोई झूठी खबर न पहुँच जाए। मामा

जी को खुश रखने के लिए, जो खुद को एक महान अभिनेता भी मानते थे, हम उनकी अभिनय प्रतिभा की दिल खोलकर तारीफ करते थे। रेवती जी, बेशक, हमारे द्वारा दिए जाने वाले सुझावों से प्रसन्न होते थे।

भले ही टीम के सभी सदस्य कितने ही अजीब क्यों न लगते हों, फिर भी सबने मिलकर एक शानदार टीम बनाई। ये सभी लोग राज साहब के भरोसेमंद थे और वे इन्हें अपने परिवार की तरह मानते थे। उन्हें पता था कि ये लोग उनके लिए बिल्कुल सही हैं क्योंकि ये उन्हें वही काम करने में मदद करेंगे जो वे चाहते थे। उनके अटूट विश्वास ने मुझे यह एहसास दिलाया कि अगर मैं उनकी पसंद के अनुसार काम करूँ तो उन्हें मेरा काम पसंद आएगा और वे उसकी सराहना करेंगे, और अधिक से अधिक सीखने का एकमात्र तरीका यही था कि राज साहब की पसंद को समझा जाए और उसे पूरा किया जाए।

दंबरा नाइट्स

मैं, अंबारा जी, एक बेहद मददगार, नेक दिल और हंसमुख इंसान था, और स्टूडियो का मुख्य प्रोजेक्शनिस्ट था। राज साहब के निर्देशानुसार, अंबारा जी ने यह सुनिश्चित करने के लिए काफी प्रयास किए कि मैं प्रोजेक्टर चलाने में निपुण हो जाऊं, जिसके कारण कई बार मैं स्वतंत्र रूप से प्रीव्यू भी चला पाता था। अपने काम में माहिर होने के साथ-साथ, वे स्टूडियो के 'मटका' सट्टेबाज भी थे, जो पूरी तरह से अवैध, लेकिन राष्ट्रीय जुआ प्रणाली थी। मैं उनसे बहुत स्नेह करता था और उनकी कहानियों का दीवाना था, खासकर गोनपथ थिएटर और आरके के गौरवशाली अतीत से जुड़ी कहानियों का। मैं अपना काफी खाली समय उनके केबिन में बिताता था, जहां उनकी कहानियां सुनने के अलावा, मैं छुप-छुपकर सिगरेट भी पीता था।
प्रीव्यू थिएटर एडिटिंग रूम के बगल में था और एडिट किए गए किसी भी सीक्वेंस को देखने के लिए आसानी से उपलब्ध था। एडिटिंग के लिए इस्तेमाल न होने पर, यह एक इन-हाउस प्रीव्यू थिएटर, डबिंग स्टूडियो और एक इन-हाउस जादुई अनुभव, 'दंबारा नाइट' के आयोजन स्थल के रूप में कार्य करता था।
दंबरा जी ने राज साहब की फिल्मों के कुछ यादगार और पसंदीदा दृश्यों का संग्रह तैयार किया था। दंबरा नाइट में इसी संग्रह की स्क्रीनिंग हुई, जो राज कपूर की रचनात्मकता को दर्शाती थी। यह एक निजी कार्यक्रम था, जिसमें केवल राज कपूर और उनके सहायक ही शामिल थे।
बॉस की यह नीति थी कि काम करते समय वे कभी शराब को हाथ नहीं लगाते थे। हालांकि, कभी-कभार, जब संपादन के थका देने वाले दिन के बाद वे थक जाते थे और आराम करना चाहते थे, तो वे थिएटर में बैठ जाते थे और उनके खास सहायक - रेवती जी - उनके लिए ब्लैक लेबल (उनकी पसंदीदा व्हिस्की) की एक बोतल ले आते थे, और फिर वह रात दंबरा नाइट में बदल जाती थी।
दंबरा नाइट्स आमतौर पर रात साढ़े दस बजे शुरू होती थीं और जब तक वे समाप्त होतीं, तब तक सुबह के चार या पाँच बज चुके होते थे। वे सुंदर धुनों से सजी सुबह के शुरुआती घंटों में दृश्य कथा कहने के अपने अनूठे और अपरंपरागत तरीकों को जारी रखते थे।

इन रातों में मेरी आँखों के सामने सिनेमा के विषयवस्तु, स्वरूप और तकनीक का एक ऐसा अद्भुत नजारा था, जिसकी मैंने पहले कभी कल्पना भी नहीं की थी और न ही सेल्युलाइड पर कभी देखा था। वहाँ मौजूद अन्य सहायक अपने पेय पदार्थों का आनंद ले रहे होंगे, लेकिन मेरे लिए यह मात्र मनोरंजन से कहीं अधिक संतुष्टिदायक था। यह एक मास्टरक्लास की पहली पंक्ति में बैठकर सीखने का अवसर था।

स्क्रीनिंग की शुरुआत राज साहब की पहली फिल्म 'आग' से होगी, जिसमें उनकी नवविवाहित पत्नी उनके जले हुए चेहरे को देखकर बेहद प्रभावित होती है। इसके बाद 'बरसात' दिखाई जाएगी, जिसमें 'मेरा लाल दुपट्टा मलमल का' गीत शामिल है। फिर 'आवारा' के कई अंश दिखाए जाएंगे: नायक की उथल-पुथल के दृश्य, पिता के साथ उसका टकराव, नरगिस जी के साथ प्रेम प्रसंग के दृश्य और सबसे महत्वपूर्ण, स्वप्न दृश्य। इसके बाद राज साहब का पसंदीदा दृश्य 'श्री 420' से दिखाया जाएगा, जिसमें वे ताश के पत्तों के साथ अकेले बैठे हैं और वहां उनकी हाथ की सफाई और कार्ड-शार्पनिंग में महारत दिखाई देती है, जिसे अंततः नादिरा जी देख लेती हैं और उन्हें एक अधिक जटिल चरित्र में बदल देती हैं। उनके प्रिय गीत 'इचक दाना बिचक दाना' और 'रामैया वस्तावैया' भी दिखाए जाएंगे। आह, बूट पॉलिश, जागते रहो, जिस देश में गंगा बहती है, संगम और मेरा नाम जोकर के अनुक्रम।

दंबरा नाइट्स में सरगम नामक फिल्म का एक गीत शामिल था, जिसका निर्माण या निर्देशन राज साहब ने नहीं किया था। यह गीत था, 'मैं हूं अलादीन अलादीन अलादीन; मेरे पास चिराग-ए-चीन', जिसमें राज कपूर ने अभिनेता की भूमिका निभाई थी और बेहद प्रतिभाशाली अभिनेत्री रेहाना थीं, जो कलकत्ता (अब कोलकाता) में मेरे पिता की पालक मां थीं। इस फिल्म का निर्देशन पी.एल. संतोषी ने किया था, जो प्रतिष्ठित निर्देशक राजकुमार संतोषी के पिता थे। उनके प्रिय संग्रह में यह गीत पी.एल. संतोषी को श्रद्धांजलि थी।

राज कपूर एक महान शिक्षक थे। जिस दिन मैंने उनसे काम शुरू किया, उस दिन उन्होंने मुझसे जो कहा था – 'मैंने कोई स्कूल नहीं खोला है' – वह झूठ था! उनके काम की व्यापकता को देखकर और उनके अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करके ही वे एक उत्कृष्ट शिक्षक बन पाए थे। वे बेहद तीक्ष्ण बुद्धि के थे, जिससे उनमें भावनाओं और भावों को समझने की क्षमता थी, जो उनके शब्दों में, एक निर्देशक का सबसे बड़ा गुण होता है।

एक बार दंबरा नाइट के दौरान, राज साहब और मेरे साथी कलाकार अपनी ड्रिंक का आनंद ले रहे थे। मैं शराब पीने के लिए बहुत छोटा था (हालाँकि मैं सिगरेट पीता था; कुछ साल पहले छोड़ने के बावजूद मुझे आज भी इसका पछतावा है)। मैं एक कोने में खड़ा होकर स्क्रीन पर नज़रें गड़ाए, पूरी एकाग्रता से शो देखता रहता था, मेरे दिमाग में सवालों का अंबार लगा रहता था और मैं उनके जवाब पाने के लिए बेताब रहता था। अचानक, राज साहब ने दंबरा जी को स्क्रीनिंग रोकने के लिए कहा और बत्तियाँ जल गईं।

फिर निम्नलिखित बातचीत हुई। उन्होंने मुझसे पूछा, 'तुम इतने हैरान और परेशान क्यों दिख रहे हो?'

मैंने जवाब दिया, 'नहीं, मैं ठीक हूँ, महोदय। बस थोड़ा रास्ता भटक गया हूँ।'

उन्होंने कहा, 'ऐसा लगता है कि आपके मन में मेरे लिए कुछ सवाल हैं, लेकिन आप पूछने से डर रहे हैं। [मैं चुप रहा, मेरा सिर नीचे झुका हुआ था।] याद रखिए, अगर आप ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो पूछने से कभी मत डरिए। जो दृश्य आप देख रहे हैं, उनका रचयिता मैं ही हूँ। इसलिए मैं ही एकमात्र व्यक्ति हूँ जो आपके सवालों का जवाब दे सकता हूँ और यकीन मानिए, मुझे ऐसा करने में खुशी होगी। मैंने काली माँ [यह वह स्नेह का नाम था जो वे मेरी माँ के लिए इस्तेमाल करते थे, जो बंगाली थीं] से वादा किया था कि मैं अपना सारा ज्ञान आपको दूंगा, बशर्ते आप वह ज्ञान प्राप्त करना चाहें।'

इससे उत्साहित होकर मैंने पूछा, 'सर, आपने आवारा में जिस स्वप्न दृश्य को इतने बड़े पैमाने पर फिल्माया, उसके पीछे कोई विशेष कारण था - सेटों की विविधता और गाने के तीनों हिस्सों का भाव?'

उन्होंने जवाब दिया, 'मैंने जिस किरदार को निभाया, वह एक आवारा, एक दबे-कुचले इंसान का था जिसने कभी बड़ी जिंदगी का अनुभव नहीं किया था। इसलिए, जब वह अपनी प्रेमिका के उसे पुकारने का सपना देखता है, तो वह उसे एक अवास्तविक माहौल में पाता है, जो उसकी कल्पना से कहीं अधिक विशाल है। यह एक शानदार परिवेश है जहाँ उसके कद का कोई व्यक्ति एक आदर्श दुनिया का सपना देखेगा, लेकिन अंततः अपने अतीत के राक्षसों से टकराएगा - एक बहुत ही विशाल, विचित्र और डरावना वातावरण। उसकी आशा, अपने प्यार

को पाने के उसके प्रयास और उसके डर, सब कुछ इस सपने में समाहित है, और हर सपना पिछले सपने से कहीं अधिक भव्य है।'

उनके रचनात्मक दिमाग में जो कुछ चल रहा था, उसकी यह व्याख्या सुनकर मेरा दिन बन गया! उनकी कहानियों की वजह से 'दंबरा नाइट्स' मेरे लिए विस्मयकारी बन गई। कई बार राज साहब कहते थे, 'उस दृश्य को करके देखो, मैं इसे राहुल को दिखाता हूँ।' उनकी तकनीक के पीछे छिपी उनकी प्रेरणा की प्रतिभा मुझे हर बार चकित कर देती थी, खासकर इसलिए क्योंकि मैं इसे सीधे रचनाकार के मुँह से सुन रहा था। हर क्रिया और हर प्रतिक्रिया ने मुझे राज साहब के काम की अद्वितीय गहराई से रूबरू कराया।

उनकी तकनीक और किसी खास पल के पीछे की सोच से जुड़े सवाल मेरे मन में बार-बार उठते रहे और वे जवाब देते रहे। दंबरा नाइट्स के ज़रिए ही मैं उनके अंतर्मन और संगीत, संवाद और दृश्य कला के प्रति उनके जुनून की गहराई को समझ पाया था। वे अपनी सभी फिल्मों से बेहद प्यार करते थे और इस प्यार को देखना मेरे लिए एक सुखद अनुभव था। कार्यक्रम लगभग पाँच से छह घंटे तक चलता था, लेकिन सिनेमा की कुछ अनमोल कृतियों को देखते हुए वे घंटे पलक झपकते ही बीत जाते थे।

बॉबी के पहले शेड्यूल के बाद, दंबरा नाइट्स में वह दृश्य जोड़ा गया जिसमें ऋषि कपूर (चिंटू) की मुलाकात डिंपल कपाडिया से पहली बार उनके घर के दरवाजे पर होती है, जहां गलती से उनके बालों में बेसन लग जाता है। वह दृश्य मुझे हमेशा रोंगटे खड़े कर देता था, चाहे शूटिंग के दौरान हो, एडिटिंग के दौरान हो या उसे देखते समय। एक युवा लड़की की मासूमियत और उसकी सादगी के कारण एक लड़के का उसके प्रति आकर्षण, मेरे लिए 'पहली नजर में प्यार' का सच्चा पल था। एक ऐसा पल जिसे सिनेमा में शायद ही कभी दोहराया गया हो!

मैंने बॉस से कहा कि यह लड़की कमाल की अभिनेत्री है। उसने तुरंत मेरे बाल मुट्ठी में पकड़ लिए और मुझ पर गुर्राते हुए कहा, 'तो अब तुम उसके अभिनय की इतनी तारीफ कर रही हो, लेकिन जब मैंने उसका ऑडिशन लिया था, तो तुम और तुम्हारे जैसे सारे मूर्ख उसका ऑडिशन देखकर बेहद निराश हुए थे और मुझे उसे कास्ट न करने के लिए मनाने की कोशिश कर रहे थे। तुम्हारे हिसाब से, उसे कास्ट करना एक घातक गलती थी। मूर्खों!'

वो थिएटर से बाहर निकले तो बैकग्राउंड में ‘जागो मोहन प्यारे जागो’ की धुन बज रही थी। मुझे ऐसा लगा मानो ये शब्द मुझ जैसे ‘बेवकूफ’ के लिए गाए जा रहे हों, जिसने बॉबी फिल्म में मुख्य भूमिका के लिए डिंपल कपाडिया के चयन से असहमति जताई थी।
मुझे लगता है कि यही कारण था कि वह 'राज कपूर' थे और मैं, एक साधारण इंसान!

प्रतिभा के जुनून और विलक्षणताएँ

राज साहब का एक अनोखा और सनकी स्वभाव था, जो उनकी फिल्मों, खाने या पसंदीदा पेय के आसपास होने पर खुलकर सामने आता था। ये तीन जुनून ही उनके विलक्षण व्यक्तित्व का आधार थे। उनकी इन विलक्षणताओं का उनकी फिल्मों से गहरा संबंध था, ठीक वैसे ही जैसे उनके सभी कार्यों का था।

जॉनी वॉकर ब्लैक लेबल के प्रति उनका जुनून बेमिसाल था। दरअसल, एक बार जब वे एक घूंट पी लेते, तो सारा काम रुक जाता, चाहे शेड्यूल कुछ भी हो। उन्हें पूरा यकीन था कि भारत में वही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो असली ब्लैक लेबल पीते हैं, क्योंकि वे अपनी विदेश यात्राओं के दौरान बोतलें खरीदते थे। वे हर यात्रा पर बोतलें खरीदते और उन्हें अपनी निजी अलमारी में रखते, जिसकी चाबी सिर्फ उन्हीं के पास थी। दरअसल, जब उनका देहांत हुआ और उनकी निजी अलमारी खोली गई, तो उसमें सिर्फ ब्लैक लेबल की बोतलें ही मिलीं, और कुछ नहीं।

एक बार मैं उनके घर पर था, उन्होंने ब्लैक लेबल की एक बोतल निकाली और फिर रेवती जी एक और ब्लैक लेबल की बोतल लेकर आईं जो मेरे सामने रख दी गई। मुझे अजीब लगा कि एक बोतल मेरे सामने और दूसरी राज साहब के सामने थी। इसलिए मैंने उनसे पूछा, 'सर, दो बोतलें क्यों?'

‘देखो, मैं जो ब्लैक लेबल पीता हूँ वह असली है।’

क्या आप मुझे नकली शराब पीने को दे रहे हैं?

इस पर उन्होंने जवाब दिया, 'नहीं, नहीं। मैं यह ब्लैक लेबल इंग्लैंड की अपनी यात्राओं से लाया हूँ। आपकी बोतल मैंने बंबई में अवैध शराब बेचने वालों से खरीदी थी और इसके लिए मैंने 1000 रुपये दिए थे। लेकिन मुझे यकीन नहीं है कि यह असली है। तो मैं जोखिम क्यों लूँ? आपके पास यह ब्लैक लेबल है, लेकिन मैं आपको अपनी ब्लैक लेबल की एक बूँद भी नहीं दूँगा!'

उनकी विलक्षणताएँ केवल शराब के चुनाव तक ही सीमित नहीं थीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व के संपूर्ण दायरे में फैली हुई थीं।

आरके के एक मुख्य वित्तीय अधिकारी श्री रमन थे, जो तमिलनाडु क्षेत्र में उनकी फिल्मों के वितरक बन गए थे। उनके निधन के बाद, उनके बेटे बाबू ने अपने पिता का वितरण कार्यालय संभाल लिया। राज साहब को इससे कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन बॉबी फिल्म हिट हो गई और बाबू ने राज साहब को मुनाफा नहीं दिया, जिससे राज साहब बहुत नाराज हो गए।
एक रात, शहर से लौटते समय, राज साहब अचानक बोल पड़े, 'ड्राइवर, ये गाड़ी घुमाओ और रमन साहब के घर चलो।' गाड़ी आरपी मसानी रोड की ओर चल पड़ी, जो कभी फिल्म जगत का इलाका हुआ करता था, जहाँ पृथ्वीराज कपूर, के.एल. सहगल, के.एन. सिंह और कई अन्य प्रमुख हस्तियाँ रहती थीं। बाबू बगल वाली गली में रहते थे, और आधी रात के बाद गाड़ी बाबू के घर के बाहर रुकी।
राज साहब गाड़ी से उतरे और बार-बार 'बाबू, बाबू!' चिल्लाते रहे, जब तक कि बाबू दौड़ते हुए बाहर नहीं आ गए। बाहर शोर सुनकर बाबू के सभी पड़ोसी यह देखने के लिए बाहर आ गए कि आगे क्या होने वाला है। बाबू अधनी नींद की हालत में, दक्षिण भारतीय पारंपरिक पोशाक – मुंडू (आधी उठी हुई लुंगी) पहने और नंगे बदन बाहर आए, उनके माथे पर एक बड़ा सा तिलक लगा हुआ था।
वह दौड़ते हुए बाहर आया और राज साहब ने एक पल भी बर्बाद किए बिना उस पर सवालों की बौछार शुरू कर दी, 'मेरा बॉबी का प्रॉफिट कहां है?'
बाबू ने तुरंत जवाब दिया, 'मेरे पास सुरक्षित पड़ा है!'
But Raj Sahab wasn't having any of it, 'Tumhare paas hai, mere paas kyun nahi hai? Woh paisa mera hai, tumko rakhne ka kya haq hai?'
Babu answered nonchalantly, 'I will give it to you, Sir. Hum dega, kal dega aapko.'
राज साहब ने कुछ सेकंड तक बाबू को घूरा और अगले ही पल उन्होंने बाबू की लुंगी उतार दी, जिससे बाबू नग्न अवस्था में रह गया और अपने गुप्तांग को ढकने की कोशिश करने लगा।

'कल सुबह पैसे लेकर आओ और लुंगी लेकर जाओ,' बाबू से यह कहते हुए राज साहब मुड़ गए और बाबू को उसके पड़ोसियों से घिरा हुआ नग्न अवस्था में छोड़कर चले गए, जो सब मिलकर जोर-जोर से हंस रहे थे।

एक रात, लगभग तीन बजे, मेरे पड़ोसी ने बताया कि राज कपूर बाहर आवारा कुत्तों के साथ खेल रहे हैं, जिससे मेरी नींद खुल गई। मैं उन्हें ढूंढने निकला, लेकिन वे नहीं मिले। मैंने सोचा कि वे घर चले गए होंगे क्योंकि उनकी कार कहीं आस-पास खड़ी नहीं थी। मैं अपने प्यारे बिस्तर पर लौटने ही वाला था कि मैंने उनकी कार को गली में आते देखा, जिसे उनका भरोसेमंद ड्राइवर चला रहा था।
मानो रात पहले से ही काफी पेचीदा न हो, मैंने उससे पूछा, 'क्या हुआ? साहब कहाँ हैं?'
He said, ‘Sahab Bandra se jaa rahe the aur unhone bola ki Rahul ke ghar par lo. Toh main yahan par le aaya aur voh gaadi se utar gaye aur kutton ke saath khelne lage. Phir voh paidal chalne lage aur mujhe bole tum gaadi lekar jao mein Chembur paidal jaoonga!’
मुझे एहसास हुआ कि राज साहब शायद ड्राइवर से नाराज थे, इसलिए मैंने उनसे पूछा, 'तुमने रोका नहीं?'
‘Main gaya unke peeche, par jab unhone dekha toh ghoom ke, “Get out! Get out!” chillate huye meri taraf bhagna shuru kar diya. Maine dar kar gadi ghumai aur yahan par wapas aa gaya.’
मैंने ड्राइवर से कहा, 'देखो, मुझे लगता है वह तुमसे नाराज़ है। चिंता मत करो, तुम घर जाओ और मुझे अपनी कार लेकर आस-पड़ोस में घूमने दो। मैं उसे ज़रूर ढूंढ लूंगा और उसे घर तक पहुंचा दूंगा।'
जब मैं आस-पड़ोस में गाड़ी चला रहा था, तो मैंने राज साहब को एक बस स्टॉप पर खड़े देखा। मैंने गाड़ी रोकी और उनसे पूछा, 'सर, आप यहाँ क्या कर रहे हैं?'
उसने व्यंग्यपूर्वक उत्तर दिया, 'ट्रेन का इंतज़ार कर रहा हूँ! बेवकूफ, बस स्टॉप पर लोग क्या करते हैं? वे बस का इंतज़ार करते हैं! मुझसे बेवकूफी भरे सवाल पूछना बंद करो!'

आपको बस का इंतजार क्यों करना पड़ता है?

‘मैं बस से ही वापस जाऊंगा। मेरे पास टिकट खरीदने के लिए पैसे भी हैं।’ उसने कुछ सिक्के निकाले और उन्हें दिखाते हुए कहा।

मैंने आह भरी और उसे समझाने की कोशिश की, 'आपको पता है कि बसें सुबह साढ़े पाँच बजे तक नहीं चलतीं, और अभी तो सिर्फ सवा तीन बजे हैं। आइए महोदय, मैं आपको छोड़ देता हूँ।'
वह यह सब मानने को तैयार नहीं था और चिल्लाया, 'मैं साढ़े पांच बजे तक इंतजार करूंगा, लेकिन मैं सिर्फ बस से ही जाऊंगा! चले जाओ और मुझे अपना चेहरा मत दिखाओ! तुम्हें नौकरी से निकाल दिया गया है!'
मैं जोर से हंस पड़ा और बोला, 'चूंकि आपने मुझे नौकरी से निकाल दिया है, तो आप मुझे बस का किराया दे सकते हैं, लेकिन मैं खुद आपको गाड़ी से ले जाऊंगा।'
जब मैं कार में बैठी थी, तब उसके अंदर गुस्सा और चिड़चिड़ाहट उबल रही थी और उसने एक छोटा पत्थर उठाकर मेरी तरफ फेंक दिया। उसे शांत करने के लिए, मैंने गाड़ी घुमाई और बस स्टॉप पर वापस आ गई। वह वहाँ नहीं था!
मुझे ठीक से पता नहीं था कि वह कहाँ गए होंगे, लेकिन मेरा अंतर्ज्ञान कह रहा था कि शायद उन्होंने टैक्सी ली होगी, इसलिए मैं सांताक्रूज़ की ओर चल पड़ा। आमतौर पर लोग कुर्ला या दादर से होकर जाते थे क्योंकि उस समय धारावी रोड नहीं थी। मुझे लगा कि उन्होंने कुर्ला वाला रास्ता ही लिया होगा, इसलिए मैं उसी ओर चल पड़ा। सांताक्रूज़ सबवे की ओर जाते हुए, मैंने एक टैक्सी को ओवरटेक किया जिसमें आगे की सीट पर तीन लोग बैठे थे। ओवरटेक करते हुए मैंने यूं ही टैक्सी के अंदर देखा और यह देखकर हैरान रह गया कि राज साहब तीसरे व्यक्ति थे! वह ड्राइवर और उसके साथी के बीच में बैठे थे, उनके कंधों पर हाथ रखे हुए और सिर पर गमछा बांधे हुए। मैं उनके पास पहुँचा और सुना कि वह एक ऐसा गाना गा रहे थे जो मैंने उन्हें पहले कभी गाते नहीं सुना था, 'सुन साहिबा सुन, प्यार की धुन'।

ग्यारह साल बाद, इस गाने को रिकॉर्ड किया गया और राम तेरी गंगा मैली नामक फिल्म में दिखाया गया।

मैंने टैक्सी नहीं रोकी और उसके पीछे-पीछे गया ताकि यह सुनिश्चित कर सकूं कि वह सुरक्षित पहुंच जाए। राज साहब के घर पहुंचते ही वे टैक्सी से उतरे, सबको अलविदा कहा, गले लगाया और बिना किराया दिए चले गए। तो मैंने उन लोगों से पूछा, 'आपका बिल कितना है?'

They were thrilled and they said, ‘Arey Sahab, Raj Kapoor gaadi mein baith gaye, toh bill kahe ka?’

Anyway, I went home after that and in the morning, I got a call from Revati ji saying, ‘Sahab ne bola hai aap ghar pe aa jaiye aur khana ghar pe hi khana.’

वहाँ पहुँचकर राज साहब ने मुझसे पूछा, ‘मैं आपसे आरके फिल्म्स एंड स्टूडियोज के रजत जयंती समारोह के बारे में बात करना चाहता था, जिसकी हम योजना बना रहे हैं। हमें क्या करना चाहिए?’ इस बातचीत के दौरान मैंने पिछली रात का ज़िक्र नहीं किया, लेकिन जब उन्हें एहसास हुआ कि मैं ऐसा नहीं करने वाला हूँ, तो उन्होंने खुद ही बात शुरू कर दी, ‘क्या मैं पिछली रात आपके घर आया था?’

मैंने जवाब नहीं दिया।

वह मुस्कुराया और बोला, 'मुझे पता है मैं तुम्हारे घर आया था। मुझे पता है मैं बस स्टॉप पर खड़ा था और टैक्सी से वापस आया था, और मुझे यह भी पता है कि तुम मेरे पीछे आई थीं। तो, क्या तुमने टैक्सी का किराया दिया था? मुझे बताओ ताकि मैं तुम्हें पैसे वापस कर सकूँ।'

मैंने मना कर दिया, 'नहीं, मैंने टैक्सी का किराया नहीं दिया। वे बहुत खुश थे कि आप उनकी टैक्सी में बैठे और आपने मेरे द्वारा दिए गए पैसे स्वीकार नहीं किए।'

उन्होंने पूछा, 'उन्हें गाना कैसा लगा?'

यही उनकी रचनात्मक प्रतिभा थी। उस रात जो भी घटनाएँ घटीं, उन्हें हर पल याद रहा क्योंकि सब कुछ उनके काम के इर्द-गिर्द ही घूमता था। शराब पीने के बाद भी वे कभी भी बेतरतीब ढंग से नहीं बोलते थे। उनकी हर बात उनके सबसे बड़े जुनून – सिनेमा – के इर्द-गिर्द घूमती थी।

दोपहर का भोजन परोसा जा चुका था और सात प्रकार के लज़ीज़ पकवानों का आनंद लेते हुए, वह अचानक खाना बंद करके, हाथ धोकर मासूमियत से बोला, “ओह! मुझसे कितनी बड़ी गलती हो गई। मैं भूल ही गया था कि आज अमावस्या है और कृष्ण ने मुझे शाम सात बजे तक उपवास रखने और कुछ भी न खाने का आदेश दिया था। यह शर्मनाक है कि मैंने धार्मिक आदेशों की अवहेलना की। खैर, मैंने गलती की है और मुझे यकीन है कि भगवान मुझे इसके लिए क्षमा कर देंगे।” वह बिना किसी पछतावे के फिर से सात प्रकार के पकवानों का भोजन खाने में जुट गया, लेकिन उपवास तोड़ने के लिए खुद को लगातार कोसता रहा!

रूसियों का राज कपूर के प्रति लगाव बेमिसाल था। एक बार जब 'आवारा' फिल्म रूसियों को पसंद आ गई, तो राज साहब की फिल्में न सिर्फ सोवियत संघ में बल्कि लगभग सभी कम्युनिस्ट देशों में हिट हो गईं। मैंने इसे खुद देखा है। मैं 2007 में चिंटू और डब्बू साहब के साथ उज्बेकिस्तान के ताशकेंट गया था। हमारी फ्लाइट सुबह करीब 3:30 बजे ताशकेंट में उतरी और कड़ाके की ठंड थी। एयरपोर्ट पर सभी लोग, ट्रैफिक स्टाफ और हेल्पर, 'आवारा हूं' और 'मेरा जूता है जापानी' गाने गुनगुना रहे थे, जो सालों से सोवियत संघ में शादी की रस्मों का हिस्सा बन चुके थे, और यह दीवानगी CIS देशों में भी जारी है। पूरे इलाके में कई 'राज कपूर' जैसे दिखने वाले लोग थे और राज साहब खुद को उनमें से एक मानते थे।

मुझे एक बहुत ही रोचक घटना याद आती है। डब्बू साहब और चिंटू का एक दोस्त था जो अमेरिकी दूतावास में काम करता था। उसका नाम जेरी किरिकानो था और वह राज साहब के घर पर एक पार्टी में मौजूद था। राज साहब ने शराब पी रखी थी; वे थोड़े भावुक हो गए और डब्बू साहब और चिंटू से बोले, 'आप जानते हैं कि मेरे बेटे बहुत दिनों बाद यहां आए हैं।' वे झूले पर बैठे बीते दिनों को याद कर रहे थे और अपने बच्चों से कहा, 'इधर आओ, अपने पिता की गोद में बैठो। आप जानते हैं कि आपने बहुत दिनों से ऐसा नहीं किया है।'
अब, डब्बू साहब और चिंटू ज़ाहिर तौर पर शर्मिंदा हो गए। ये दो बड़े हो चुके लोग थे जिन्हें एक सामाजिक समारोह में अपने पिता की गोद में बैठने के लिए कहा गया था। इसलिए, उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी, लेकिन यह हट्टा-कट्टा, विशालकाय अमेरिकी लड़का दौड़कर

राज साहब की गोद में बैठ गया और बोला, 'मैं भी आपका बेटा हूँ। मैं डब्बू और चिंटू का भाई हूँ और आप भी मेरे पापा जैसे हैं।'

राज साहब ने उसकी तरफ देखा और फिर उसे अपनी गोद से धक्का देकर नीचे उतार दिया। 'तुम मेरे बेटे कैसे हो सकते हो? तुम अमेरिकी हो और मैं रूसी, और हमारी आपस में बनती ही नहीं!'

राज साहब पाखंडी साधुओं और संतों से घृणा करते थे जो अपना धार्मिक उपदेश देकर पैसा कमाना चाहते थे। उनकी आस्था केवल सर्वशक्तिमान ईश्वर में थी। उस समय एक प्रसिद्ध धर्मगुरु थे (मैं उनका नाम नहीं लेना चाहता), जिन्होंने अभी-अभी धर्म साधना शुरू की थी। आप जानते हैं, सभी धर्मगुरु प्रसिद्धि पाने और भोले-भाले लोगों को अपना भक्त बनाने के लिए जनसंपर्क का सहारा लेते हैं।

राज साहब को एक स्थानीय पुलिस इंस्पेक्टर ने इस धर्मगुरु के प्रवचन में आमंत्रित किया था। कार्यक्रम स्थल पर पहुँचने पर आयोजकों ने हमारा स्वागत किया और हमें सहज महसूस कराने के लिए हर संभव प्रयास किया और हमें पहली पंक्ति में बैठने को कहा। राज साहब ने चारों ओर देखा और पूछा, 'कुर्सी कहाँ है?' बाकी सभी लोग ज़मीन पर या गद्दों पर बैठे थे, लेकिन राज साहब को कुर्सी चाहिए थी और उन्होंने कहा, 'दो कुर्सियाँ लेकर आइए।' चूंकि मैं उनके साथ था, इसलिए मुझे भी कुर्सी पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ!

प्रवचन चल रहा था और प्रसाद के रूप में शीरा परोसा जा रहा था, जिसे देखकर राज साहब ने कहा, 'यह शीरा बहुत अच्छा लग रहा है।' ऐसा लग रहा था कि उन्हें उपदेशक के प्रवचन से ज़्यादा शीरा में दिलचस्पी थी। वे शीरा के आने का इंतज़ार नहीं कर पा रहे थे, इसलिए उन्होंने मुझसे कहा, 'जाओ और परोसने वाले को बुलाओ और उसे पहले यहाँ आने के लिए कहो।' तो मैं गया और उस आदमी से कहा, 'राज कपूर आपको बुला रहे हैं।' मेरी बात सुनकर उसकी आँखों में चमक आ गई और वह तुरंत शीरा से भरा एक बड़ा बर्तन और हमारे लिए खाने के लिए छोटी कटोरियाँ ले आया। राज साहब, जो खाने के शौकीन थे, उन्होंने पूरा बर्तन ही उठा लिया और सारा शीरा चट कर गए!

Then the organizers came up to him and gave him a garland, saying, ‘Aap jaa ke Baba ji ko ye pehna dena.’

राज साहब अपनी कुर्सी पर ही बैठे रहे और शीरा का आनंद लेते रहे। इसलिए मैंने उनसे कहा, 'सर, क्या आपको ऊपर जाकर उन्हें माला नहीं पहनानी चाहिए?'
'देखो, मैं राज कपूर हूँ। इस आदमी को पब्लिसिटी चाहिए। यह खुद उठकर आएगा और मुझे माला पहनाएगा।' और यकीन मानिए, ठीक यही हुआ! खुद बाबा राज साहब के पास आए और उनके गले में माला पहनाई। एक तरह से दोहरा फायदा हुआ। धोखेबाज बाबा को फोटो खिंचवाने का मौका मिल गया और राज साहब ने शीरा का आनंद लिया!

राज साहब की याददाश्त हाथी जैसी थी और अगर किसी ने उनके बारे में कुछ बुरा कह दिया हो या कोई ऐसा काम किया हो जो उन्हें पसंद न आए, तो वे उसे कभी नहीं भूलते थे। अचानक, कई सालों बाद, उन्हें कोई घटना याद आ जाती और वे आपको फटकार लगाते, और ऐसा करने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता था।
जब राज साहब ने 'मेरा नाम जोकर' बनाई, उसी समय उन्होंने 'जॉनी मेरा नाम' नाम की एक फिल्म भी बनाई। जैसा कि आप देख सकते हैं, गुलशन राय की फिल्म का शीर्षक 'मेरा नाम जोकर' से काफी मिलता-जुलता था और यह पहले रिलीज़ हुई और बहुत सफल रही। 'मेरा नाम जोकर' बॉक्स ऑफिस पर कुछ खास कमाल नहीं कर पाई और दोनों फिल्मों के शीर्षकों की समानता और उनके भविष्य को लेकर खूब मजाक बने। चार साल बाद राज साहब ने 'बॉबी' बनाई, जो ज़बरदस्त हिट रही। एक दिन उन्हें एक पार्टी में बुलाया गया, जहाँ उन्होंने गुलशन राय को पकड़कर कहा, 'क्यों, मैंने 'मेरा नाम जोकर' बनाई तो तुमने 'जॉनी मेरा नाम' बना ली? अब मैंने 'बॉबी' बनाई, तो तुम कौन सी फिल्म बनाओगे? टॉबी?'

एक शाम, लोनी स्थित अपने फार्म में, दिन भर के काम के बाद, वह अपनी टीम के साथ बैठे शराब पी रहे थे। पूरी शाम वह मेरे साथ बहुत अच्छे से पेश आ रहे थे और सहायक निर्देशक के रूप में मेरी क्षमताओं की तारीफ कर रहे थे, लेकिन मुझे लगा जैसे कोई आहट सुनाई दे रही हो। मैंने चिंटू से कहा, 'देखो, बॉस मेरे साथ बहुत अच्छे से पेश आ रहे हैं, मुझे यकीन है कि मैंने आज काम के दौरान कहीं न कहीं कोई गलती की होगी, या उनकी याददाश्त को

देखते हुए, शायद दो साल पहले भी। मुझे समझ नहीं आ रहा कि वह किस बात से नाराज़ हैं, इसलिए मैं सोने जा रहा हूँ, इससे पहले कि वह मुझे डांटें और पूरी रात मेरी बेइज्जती करें।'
जैसे ही मैं उठा और अपने कमरे की ओर चलने लगा, मुझे एहसास हुआ कि राज साहब मेरे पीछे आ रहे हैं। मैंने अपनी चाल तेज़ कर दी और उन्होंने भी अपनी चाल तेज़ कर दी। मैं दौड़कर कमरे में पहुँचा, बिस्तर पर कूद गया और कंबल अपने सिर पर ओढ़ लिया। वह भी मेरे पीछे आए और कमरे में घुसते हुए बोले, 'उठो! उठो! उठो!' हर बार 'उठो' कहने पर उनकी आवाज़ तेज़ होती जा रही थी। मैंने उनकी बात अनसुनी कर दी और कंबल को और कसकर अपने चारों ओर लपेट लिया। 'सोने का नाटक करना बंद करो। मुझे पता है तुम सो नहीं रहे हो! तुम्हें उठना होगा और मेरी बात सुननी होगी,' और वह मुझे हिलाने लगे। हिलाना और भी ज़ोरदार होता गया, लेकिन एक ज़िद्दी 'रोने वाले' की तरह मैंने कंबल से बाहर निकलने से इनकार कर दिया। तो, वह मेरे बगल में बिस्तर पर बैठ गए और बोले, 'ठीक है! मैं पूरी रात यहीं बैठा रहूँगा और तुम्हें हिलाता रहूँगा। मैं देखना चाहता हूँ कि तुम कब तक मुझसे बच सकते हो।' यह सिलसिला लगभग पूरी रात चलता रहा और सुबह करीब चार बजे, वह आखिरकार उठे और बोले, 'तुम्हें नौकरी से निकाल दिया गया है!' मैं तुम्हें कल से नहीं देखना चाहता,' और यह कहकर वह दरवाजा पटकते हुए बाहर चला गया।
अगली सुबह मैं सेट पर था। वह अंदर आए, हमने कुछ देर हालचाल पूछा और पिछली रात की कोई बात किए बिना काम चलता रहा। उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या तुम अच्छे से सोए?'
'बहुत अच्छा, महोदय', मैंने जवाब दिया।
उनका जवाब था, 'अच्छा'।
शाम होते-होते उन्होंने मुझे फोन किया और बड़े प्यार से कहा, 'देखो, तुम्हें अपने काम पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। एक हफ्ते पहले, तुम्हें वो एक डायलॉग याद नहीं था जो मैं सीन में जोड़ना चाहता था और मुझे वो डायलॉग के बिना ही सीन शूट करना पड़ा।'
मैंने जवाब दिया, 'माफ़ कीजिए, महोदय, लेकिन मैं ध्यान रखूंगा कि ऐसा दोबारा न हो।' उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई और कहा, 'मुझे खुशी है कि आप अपनी गलती मान रहे हैं।' आज तक मुझे वह भूला हुआ संवाद याद नहीं है!

लगभग सन् 1979 में, मैं बॉस के साथ 'बीवी-ओ-बीवी' की पटकथा पर चर्चा करने के लिए लोनी में था। एक शाम, जाने-माने निर्माता और निर्देशक नरेश कुमार कमरे में आए और मुझे कमरे से बाहर जाने के लिए कहा गया क्योंकि वे बॉस से निजी तौर पर कुछ बात करना चाहते थे। लगभग दो घंटे बाद, नरेश कुमार चले गए और बॉस ने मुझे बुलवाया। जैसे ही मैं उनके कमरे में पहुँचा, वे तरोताज़ा दिख रहे थे और उनके चेहरे पर बड़ी सी मुस्कान थी। रेवती जी एक बोतल ब्लैक लेबल व्हिस्की और दो गिलास लेकर आए। मुझे समझ आ गया कि यह कोई खास घोषणा है क्योंकि उन्होंने अपनी निजी व्हिस्की की बोतल मेरे साथ बाँटने का फैसला किया था। उन्होंने एक लिफाफा निकालते हुए और उसमें से नोट निकालते हुए कहा, 'आपको यह जानकर बहुत खुशी होगी कि नरेश कुमार ने मुझे अपनी फिल्म के लिए साइन कर लिया है और मुझे 2,00,000 रुपये मेहनताना दे रहे हैं।' 'यह तो 25,000 रुपये की साइनिंग फीस है जो उन्होंने मुझे दी है!'

‘बधाई हो, महोदय।’

‘क्या तुमने मुझे सुना या नहीं? हस्ताक्षर के लिए 25,000 रुपये और पारिश्रमिक के रूप में 2,00,000 रुपये!’

मैंने बस मुस्कुरा दिया और वह चिल्लाया, 'तुम्हारी कोई प्रतिक्रिया नहीं है। इस तरह की रकम सिर्फ राज कपूर को मिलती है और तुम, गधे की तरह, कोई प्रतिक्रिया नहीं दे रहे हो। मुझे लगता है कि तुम इस सदमे को सहन नहीं कर पा रहे हो!'

मैंने जवाब दिया, 'सर, पिछले हफ्ते चिंटू ने मनमोहन देसाई की एक फिल्म 4,00,000 रुपये के पारिश्रमिक पर साइन की और मेरी उपस्थिति में, उन्हें 50,000 रुपये की साइनिंग राशि दी गई।'

‘चिंटू ने तुम्हें बेवकूफ बना दिया! ये सिर्फ 10,000 रुपये ही रहे होंगे और उसने तुम्हें प्रभावित करने के लिए शायद नकली नोट भी मिला दिए होंगे। मैं उसके जैसे अभिनेताओं को जानता हूँ, वे अधिकतम 50,000 रुपये के पारिश्रमिक पर किसी के भी लिए उपलब्ध होते हैं और वैसे भी उनकी कीमत इतनी ही होती है। राज कपूर जैसे कद का अभिनेता ही इतनी शर्तें रख सकता है!’

मेरा नाम जोकर का दिल्ली प्रीमियर नौसेना अधिकारी पत्नियों के संघ द्वारा आयोजित किया गया था। रात में जब प्रीमियर हुआ, तो तत्कालीन नौसेना प्रमुख ने रात्रिभोज का आयोजन किया। इसमें कई प्रतिष्ठित हस्तियों और अधिकारियों ने भाग लिया। पेय पदार्थ परोसे गए, जिनमें ब्लैक लेबल भी शामिल था, और बार का संचालन एक वरिष्ठ अधिकारी द्वारा किया जा रहा था। दो बार पेय परोसने के बाद, केवल यूनिट के लोग और कुछ बाहरी लोग ही बचे थे। अधिकांश मेहमानों के चले जाने के बाद जो पेय परोसा गया, वह प्रीमियम भारतीय व्हिस्की थी। जैसे ही राज साहब ने उसका एक घूंट लिया, उन्हें एहसास हुआ कि उनका पसंदीदा पेय बदल दिया गया है। उन्होंने अधिकारी को बुलाया और उसे जमकर फटकारा। उन्होंने कहा, 'तुम ऐसा इसलिए कर रहे होगे क्योंकि तुम्हें सरकार से कोटा मिला है जिसे तुमने अपने भंडार में रखा है। और तुम इसे काला बाजार में बेचकर पैसा कमाओगे। क्या तुम्हें लगता है कि हम मूर्ख हैं कि तुम हमें भारतीय व्हिस्की परोसकर बच जाओगे? मैं शिकायत दर्ज कराऊंगा क्योंकि नकली व्हिस्की परोसने के लिए तुम पर कोर्ट मार्शल होना चाहिए!'

पहलगाम में बॉबी की शूटिंग के दौरान मुझे एक ऐसी ही घटना याद है, लेकिन इस बार एक प्रतिष्ठित जनरल से जुड़ी हुई। हम बांग्लादेश युद्ध से अभी-अभी विजयी होकर लौटे थे और जनरल उस युद्ध में शामिल प्रमुख अधिकारियों में से एक थे। शूटिंग के दौरान जनरल हमसे मिलने आए। वे राज साहब से मिलकर और उन्हें काम करते देखकर बहुत खुश हुए। तो राज साहब ने बॉबी फिल्म का नरेंद्र चंचल द्वारा गाया गया गीत 'बेशक मंदिर मस्जिद तोड़ो' बजाया। गीत के बोल आंशिक रूप से हिंदी और आंशिक रूप से पंजाबी में थे। जनरल भी पंजाबी थे और उन्हें गाना सुनकर बहुत आनंद आया। लेकिन गाना खत्म होने के बाद उन्होंने कहा, 'राज, यह पंजाबी गाना है, क्या लोग इसे समझ पाएंगे?'

इस पर राज साहब ने कहा, 'सर, यह सिनेमा है और आमतौर पर सिनेमा में आप चीजों को इसलिए समझते हैं क्योंकि वे फिल्म की स्थिति के अनुरूप होती हैं। हो सकता है कि आपको भाषा का ज्ञान न हो, लेकिन दृश्य संदर्भ को स्पष्ट कर देते हैं।'

इस पर जनरल ने कहा, 'नहीं, नहीं, मुझे नहीं लगता कि लोग इसे समझ पाएंगे।'

Raj Sahab was about to lose his patience as he gritted through his teeth, ‘Nahin. Samajh jayenge sab.’

The general further rebutted, ‘Nahin, mere khayal se nahin samjhenge.’
तो अंत में राज साहब ने कहा, 'ठीक है, मैं इस बारे में सोचूंगा।'
उस चर्चा के समाप्त होते ही जनरल ने विदाई ली और राज साहब उन्हें उनकी कार तक ले गए। उन्होंने उनके लिए दरवाजा खोला और जनरल कार में बैठ गए। फिर राज साहब ने दरवाजा बंद किया और मुड़कर बोले, 'अब एक जनरल मुझे बताएगा कि फिल्म कैसे बनाते हैं? बेवकूफ!'
उसी रात उसने मुझे बुलाया और कहा, 'चलो सेना के भोजनालय चलते हैं, मैं जनरल से मिलना चाहता हूँ। मैं उन्हें बताना चाहता हूँ कि युद्ध में मेरे इतने सारे बच्चों की मौत के लिए वही ज़िम्मेदार हैं। उनकी वजह से ही मेरी मौत हुई है। और वो मुझे फिल्म बनाना सिखाएंगे जबकि उन्हें खुद लड़ाई लड़ना नहीं आता! उन्हें क्या हक है मुझे फिल्म बनाना सिखाने का?'
राज साहब अक्सर चीजों को हल्के में ले लेते थे। बॉबी की शूटिंग के दौरान, हम फिल्म के लिए प्रकृति के कुछ दृश्यों की तस्वीरें लेने के लिए गाड़ी चला रहे थे। हम एक सेना चौकी से गुजरे और एक ऐसे इलाके में पहुंचे जिसे हममें से किसी ने पहले कभी नहीं देखा था। आगे बढ़ते हुए, हम एक बैरिकेड पर पहुंचे और वहां तैनात सैनिकों ने हमें बताया कि हमें इसे पार करके आगे जाने की अनुमति नहीं है। तब राज साहब गाड़ी से उतरे और बोले, 'मेरा नाम राज कपूर है।'
The soldier had already recognized him and said, ‘Kamal kar rahe hain.’ He touched his feet and continued, ‘Aap ko kaun nahin janta? Aap utre kyun car se?’
Raj Sahab wouldn’t let this opportunity go. He replied, ‘Nahin beta, woh kya hai ki mujhe Bobby ke do char shots lene hain yahan par. Mujhe border pe shoot nahin karna hai but I like the area around it.’
सीमा वहां से मात्र 20 किलोमीटर दूर थी, इसीलिए वह प्रतिबंधित क्षेत्र था। सैनिक ने कहा, 'मुझे खेद है, मैं आपको इस हालत में अंदर नहीं जाने दे सकता।'
राज साहब ने कहा, 'ठीक है, कोई दिक्कत नहीं। अपने कमांडर के पास जाओ, चाहे वो कोई भी हो, और उसे बताओ कि राज कपूर यहाँ हैं।' उन्होंने ये बात गर्व से भरी आवाज़ में कही।

उन्होंने आगे कहा, 'और उसे ये भी बता देना कि राज कपूर को हमें वहाँ ले जाने के लिए दो चौपहिया गाड़ियों की ज़रूरत है। उसे बता देना कि मैं सीमा पर शूटिंग करने जा रहा हूँ।'
मुझे उनकी इस स्पष्ट विनती पर थोड़ी चिंता हुई। मैं नहीं चाहता था कि हम सेना के साथ किसी मुसीबत में पड़ें। मैं राज साहब के पास गया और उनसे कहा, 'सर, कम से कम आप खुद जाकर उनसे इस बारे में पूछ लीजिए।'
लेकिन राज साहब ने मुझे यह कहकर चुप करा दिया, 'नहीं, वह आएगा, तुम सब मेरी ताकत नहीं जानते।'
और कमांडर सचमुच बाहर आए, हमारा अभिवादन किया और हमें सीमा तक जाने के लिए गाड़ियों का इंतजाम किया। हम सीमा की ओर बढ़े और तस्वीरें लीं। हम किसी संवेदनशील जगह पर नहीं गए, लेकिन फिर भी उन्होंने कमांडर से पूछा कि क्या हम नियंत्रण रेखा तक जाकर उसे देख सकते हैं।
कमांडर ने तुरंत सहमति जताते हुए कहा, 'ज़रूर।'
मैं शब्दों में बयान नहीं कर सकता कि वह कितना अद्भुत अनुभव था। वह एक विशाल सीमा थी, जहाँ तक हमारी नज़र जा सकती थी, फैली हुई थी। सभी जवान हमारा इंतज़ार कर रहे थे क्योंकि उन्हें वायरलेस रेडियो पर सूचना मिल गई थी कि राज कपूर आ रहे हैं। उन्होंने फूलों से अपना स्वागत समारोह आयोजित किया था और हमारे लिए पकौड़े और समोसे भी बनाए थे, जिन्हें हमने जी भरकर खाया।
हम उनके साथ बैठे और उन्होंने हमें बताया कि पूरा इलाका कैसे काम करता है। उन्होंने हमें 'नो मैन्स लैंड' दिखाया और बताया कि पाकिस्तानी दूसरी तरफ कैसे रहते हैं, जैसे हम इस तरफ रहते हैं। यह सब देखना बहुत ही दिलचस्प था। लगभग आधे घंटे बाद, हमने उनसे विदा ली, लेकिन उन्होंने कहा, 'सर, कृपया रुकिए। हमने रेडियो पर पाकिस्तानियों को बता दिया है कि राज कपूर यहाँ हैं और वे आपसे मिलने आ रहे हैं।' हमें भी उनसे मिलकर बहुत खुशी हुई। हमने थोड़ी देर और इंतज़ार किया और पाकिस्तानी सैनिकों से भरी दो जीपें आ गईं। वे राज कपूर से मिलकर बहुत उत्साहित थे और अपने साथ जलेबी और मिठाई लाए थे ताकि वे हमें खिला सकें। वहाँ होना एक अद्भुत अनुभव था।

राज साहब को काम और शराब के अलावा खाने का भी बहुत शौक था। यह एक ऐसा जुनून था जिसे वे दिल से पसंद करते थे और इससे जुड़ी अनगिनत कहानियां हैं। वे खाने के बहुत शौकीन थे और उन्होंने हम सबको भी ऐसा ही बना दिया। उनका खाने का एक नियमित कार्यक्रम था जिसका वे हर शाम पालन करते थे। वे शाम ठीक 6 बजे स्टूडियो से निकलकर चेंबूर स्टेशन जाते थे। स्टेशन के बाहर एक पानी पूरी वाला था जहाँ से वे पानी पूरी खाते थे। उसके बगल में ही एक दक्षिण भारतीय रेस्टोरेंट था, जहाँ वे डोसा और मेदु वड़ा खाते थे। मेदु वड़ा सिर्फ सुबह ही बनता और परोसा जाता था, लेकिन चूंकि राज कपूर हर दिन आते थे, इसलिए उनके लिए शाम को भी मेदु वड़ा बनाया जाता था। फिर वे पास के ही एक तीसरे रेस्टोरेंट में जाकर फिल्टर कॉफी पीते थे।

इस नियमित दिनचर्या को तोड़ना या बदलना नामुमकिन था। दरअसल, अगर उन्हें लोगों से मिलना होता और वह भी उसी खास समय पर, तो वे अपनी शाम की इस दिनचर्या को नहीं छोड़ते बल्कि उन्हें अपने साथ आने के लिए कहते। कल्पना कीजिए कि आप राज कपूर से मिलने आए हैं और सड़क पर खड़े होकर पानी-पुरी खाते हुए उनसे बात कर रहे हैं।

आरके के यहाँ स्टूडियो में लगने वाला खाना बहुत भव्य होता था। इसे सचमुच राजाओं का भोजन कहा जा सकता है। ज़रा विस्तार से बताऊँ तो, खाने में एक चिकन, एक मटन, एक मछली और इसके अलावा केकड़ा या झींगा और चिकन की कोई और डिश, जैसे कलेजी या कबाब, होती थी। साथ ही, कई तरह की दालें, सब्ज़ियाँ और तीन तरह के मीठे होते थे। हम सब उनके साथ बैठकर एक ही खाना खाते थे।

आरके में हम ही एकमात्र ऐसी यूनिट थे जिन्हें शाम 6 बजे हाई टी परोसी जाती थी। राज साहब की यह बहुत अच्छी बात थी क्योंकि दिन भर काम करने के बाद भूख लगना स्वाभाविक था। हाई टी अपने आप में एक बहुत ही बढ़िया भोजन होता था! राज साहब इसे 'टिफिन' कहते थे जिसमें हर दिन एक डोसा, एक वड़ा, सांभर, सैंडविच, रोल, जलेबी या कुछ मीठा होता था। यह शूटिंग के दिनों की बात है, एडिटिंग के दिनों में यह भोजन और भी भव्य होता था। फिल्म की फाइनल एडिटिंग और नेगेटिव कटिंग तक, राज साहब शाकाहारी बन जाते थे और शराब नहीं पीते थे। तब हमें ज़्यादा देर तक काम करना पड़ता था। हम सुबह 9:30 बजे काम शुरू करते थे और जब तक वह चाहते थे तब तक काम करते रहते थे। और

वह सुबह सबसे पहले पहुँचते थे। एडिटिंग के दिनों की एक और दिलचस्प बात यह थी कि काम शुरू करने से पहले, हम सभी प्रोजेक्शन रूम में कागज और पैड लेकर इकट्ठा होते थे और दिन भर का मेन्यू तय करते थे - तीनों टाइम का खाना और शाम की हाई टी। दिन के मेनू पर सभी के विचार जानने में लगभग डेढ़ घंटा लग गया।

Someone would suggest, 'Sir, Ghatkopar mein ek restaurant hai jismein dal badi acchi milti hai.'

Raj Sahab would say, 'Likho.'

कोई और कहता, 'अच्छा, ठाणे में एक रेस्टोरेंट है जहाँ मटन बहुत सही मिलता है।' इसे भी लिख लिया जाता, और यह सिलसिला तब तक चलता रहता जब तक कि उस दिन का पूरा मेनू तय नहीं हो जाता।

उन्हें ग्रांट रोड पर नोवेल्टी सिनेमा के बगल में स्थित कोरोनेशन नामक रेस्तरां की बिरयानी बहुत पसंद थी। वह बिरयानी हमारी सूची में अवश्य शामिल होती थी और फिर उस सूची को दोपहर के भोजन, शाम की चाय और रात के खाने के लिए विभाजित किया जाता था।

हम अगले दिन नाश्ते में क्या खाना है, यह भी तय करते थे। नाश्ते में सिर्फ अंडे काफी नहीं होते थे और नाश्ता इतना स्वादिष्ट होता था कि आज के किसी भी 5-स्टार होटल के शानदार ब्रेकफास्ट बुफे को टक्कर दे सकता था। अलग-अलग समय पर अलग-अलग जगहों से खाना लाने के लिए गाड़ियों का इंतजाम किया जाता था ताकि हम सभी को गरमागरम खाना मिल सके। राज साहब शाम को चाय के साथ परोसे जाने वाले स्नैक्स को लेकर भी बहुत खास ध्यान रखते थे। यह एक ऐसी परंपरा थी जिसे आरके ने शुरू किया था और फिर यह पूरी इंडस्ट्री में फैल गई। पूरा दिन काम करने और स्वादिष्ट खाना खाने में बीतता था, और एक खाने के शौकीन बॉस का होना मतलब था कि फिल्म निर्माण की बारीकियां सीखने के साथ-साथ मैं भी खाने का शौकीन बन गया और इसका असर मेरी कमर पर दिखने लगा!

राज साहब को खाने के साथ प्रयोग करना भी बहुत पसंद था। मैंने उन्हें एक पाव लेते, उसके बीच में मक्खन लगाते, एक जलेबी उठाते और इस मिश्रण को एक मीठे जलेबी सैंडविच में बदलते देखा है! यह देखकर मैं दंग रह गया और मैंने कहा, 'सर, आप पाव और मक्खन के

साथ जलेबी सैंडविच कैसे खा सकते हैं?' उन्होंने मेरी तरफ देखा, सहमति में सिर हिलाया और मीठे सैंडविच को टमाटर केचप में डुबोकर चट कर गए!
राज साहब को घुड़दौड़ देखने का भी बहुत शौक था, और यह शौक उन्हें जुआ खेलने की लत नहीं थी, बल्कि खाने के प्रति उनका जुनून था। उनका पक्का मानना था कि उनके पास जो कुछ भी है, वे उसे सिर्फ अपनी फिल्मों पर ही दांव पर लगाने को तैयार थे। वे घुड़दौड़ देखने इसलिए जाते थे क्योंकि घुड़दौड़ के मैदान में मिलने वाले स्नैक्स उन्हें बहुत पसंद थे। वे पुणे घुड़दौड़ के मैदान में अपने सात-आठ दोस्तों के साथ बैठते और सैंडविच व चिकन पैटी मंगवाते। जब घुड़दौड़ शुरू होने वाली होती, तो वे सब शर्त लगाने के लिए उठ जाते, लेकिन राज साहब वहीं रुक जाते। वे सैंडविच उठाते, ब्रेड खोलते और उसमें से फिलिंग खा लेते, फिर ब्रेड बंद करके उसे प्लेट में इस तरह रख देते जैसे सैंडविच को छुआ ही न गया हो। बाद में वे वेटरों पर खाली सैंडविच परोसने का आरोप लगाते! चिकन पैटी का भी यही हाल होता था। यह देखकर मुझे बहुत हैरानी होती और वे मेरी तरफ देखकर कहते, 'क्या घूर रहे हो? मैं डाइट पर हूं, तुम्हें पता है। मैं कार्बोहाइड्रेट नहीं खा रहा हूं।'

जब रीता और मेरी शादी हुई, तो फेरे सुबह हुए और राज साहब भी वहाँ मौजूद थे। खाने को लेकर वे बहुत नाराज़ थे क्योंकि परोसा गया सारा खाना शाकाहारी था। उन्होंने रीता के परिवार को अपनी नाराज़गी ज़ाहिर करते हुए कहा, 'तुम्हें किसने कहा कि शादी में सिर्फ शाकाहारी खाना ही परोसना है? अगर साथ में चिकन हो तो शादी नहीं हो सकती क्या?'
हमने कोई रिसेप्शन आयोजित नहीं किया क्योंकि मैं मंच पर मूर्ख की तरह बैठने से इनकार कर रहा था, और मैंने अपने घर के ठीक बाहर लगभग 200 करीबी दोस्तों के लिए डिनर का आयोजन किया। जब बॉस आए, तो रीता और अन्य मेहमान चौंक गए। राज कपूर टिफिन लेकर अंदर आए! राज कपूर को कुर्ता-पायजामा पहने और हाथ में टिफिन लिए देखकर हैरान रीता ने पूछा, 'राज अंकल क्या कर रहे हैं?'
वह अपने साथ खाली टिफिन लेकर आया है क्योंकि वह खाना पैक करके घर ले जाएगा। वह रसोई में गया, विभिन्न व्यंजनों का स्वाद चखा और जो उसे पसंद आए उन्हें पैक कर लिया।
फिर राज साहब ने मुझसे पूछा, 'मेरी व्हिस्की का क्या हुआ?'

मैंने ब्लैक लेबल की 12 बोतलें अलग रख दी हैं, जो 12 अलग-अलग आपूर्तिकर्ताओं से मंगाई गई हैं। मैंने उन्हें अभी तक खोला नहीं है और आपके लिए अलग रखा है ताकि आप चखकर तय कर सकें कि कौन सी बोतल असली है।
तो, वह मुझे बार में ले गए और बार में मौजूद मेरे एक दोस्त से कहा, 'मुझे सभी 12 बोतलों में से अलग-अलग गिलासों में थोड़ा-थोड़ा सैंपल ड्रिंक दो।' राज साहब ने हर बोतल से एक-एक घूंट लिया और आखिर में तय किया कि पाँचवीं बोतल असली है। फिर उन्होंने अपने कुर्ते की जेब से एक प्लास्टिक की बोतल निकाली और उसमें आधी बोतल व्हिस्की डाली, बोतल बंद की और अपने ड्राइवर से कहा, 'इसे गाड़ी में रखना।' और उन्होंने बार में मौजूद मेरे दोस्त से कहा, 'इसे अलग रख दो, यह सिर्फ मेरे लिए है। इसे किसी और को मत देना।'

जब हम बीवी-ओ-बीवी पर काम कर रहे थे, उसी दौरान संजीव कुमार ने बैंगलोर (अब बेंगलुरु) में एक रेस्टोरेंट खोला। वे बहुत ही अच्छे इंसान थे और हम सब की तरह खाने के शौकीन थे। उन्होंने दिलीप कुमार और राज साहब को रेस्टोरेंट के उद्घाटन में मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया। ज़ाहिर है, प्रेस के लोग वहाँ जमा हो गए थे, तस्वीरें खींच रहे थे और सवाल पूछ रहे थे। दिलीप साहब और राज साहब दोनों ने खाने की तारीफ की और कहा कि यह स्वादिष्ट लग रहा है। उनके लिए खाना परोसा गया, लेकिन दोनों यह कहते हुए उठ गए, 'हम बाद में मिलेंगे।'
पूरे समूह में असमंजस का माहौल छा गया और संजीव कुमार ने उनसे पूछा, 'क्या आप लोग दोपहर का भोजन नहीं करेंगे?' आखिर वे लोग एक रेस्तरां के उद्घाटन के लिए ही तो आए थे।
लेकिन उन्होंने बिना किसी लिहाज़ के जवाब दिया, ‘नहीं, नहीं, यहाँ का खाना तो बहुत अच्छा लग रहा है, लेकिन आपको पता है सामने एक रेस्टोरेंट है जिसका नाम आरआर है। वहाँ का खाना लाजवाब है और हमें वहाँ खाने का मौका बहुत कम मिलता है।’ फिर वे उठे और आरआर में खाने चले गए। मुझे सच में लगा कि उनका यह बर्ताव असभ्य था, लेकिन राज साहब ऐसे ही थे। दरअसल, जब वे बैंगलोर से लौटे, तो अपने साथ आरआर का खाना भी लाए

थे। जब हम दोनों अपनी-अपनी फिल्मों, प्रेम रोग और बीवी-ओ-बीवी की शूटिंग के लिए मैसूर में थे, तो वे अपनी कार से मैसूर से बैंगलोर तक आरआर से रात का खाना लेने जाते थे।
बॉम्बे में उन्हें वेसाइड इन नाम की जगह पर जाना बहुत पसंद था। वे हमेशा वहाँ बीच वाली मेज पर बैठते थे और सारे रसोइये उनका अभिवादन करने के लिए बाहर आ जाते थे। वे सब उनकी पीठ थपथपाते और कहते, 'राज, कैसा है? बहुत समय बाद आया।' उनके साथ उनकी घनिष्ठता देखकर हमें पता चला कि वे बचपन से ही वहाँ आते रहे हैं और रसोइये वही पुराने लोग हैं जो उनके बचपन से वहाँ काम करते थे। रेस्टोरेंट में ठेठ ब्रिटिश व्यंजन परोसे जाते थे। जब मैंने उनसे पूछा कि वह जगह उन्हें इतनी प्रिय क्यों है, तो उन्होंने कहा, 'आप जानते हैं, मैं यहाँ अक्सर क्यों आता हूँ और इस खास मेज और कुर्सी पर क्यों बैठता हूँ, इसके पीछे एक कारण है। यह वही जगह है जहाँ डॉ. अंबेडकर बैठे थे और उन्होंने भारत का संविधान लिखा था। मैं यहाँ इसलिए बैठता हूँ ताकि यह मुझे रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित कर सके।'
फ्लोरा फाउंटेन में मारोसा नाम की यह जगह उन्हें बहुत पसंद थी। यह एक छोटा सा, आम कैफे था जहाँ आप एक मेज पर बैठते थे और आपसे सिर्फ इतना पूछा जाता था कि क्या आपको चाय या कॉफी चाहिए। बिना ऑर्डर दिए ही, वे आपके लिए एक ब्रिटिश शैली का स्टैंड ले आते थे जिसमें सैंडविच, चिकन पैटी, चिकन कटलेट और स्कोन रखे होते थे। आप जो चाहें खा सकते थे और बिल इस बात पर निर्भर करता था कि आपने कितनी चीजें खाई हैं। राज साहब को यह बहुत पसंद था। ठीक वैसे ही जैसे वे रेस कोर्स में करते थे, वे सैंडविच खोलते, उसकी फिलिंग खा लेते, ब्रेड के स्लाइस को एक साथ रखते और वापस सर्विंग प्लेट पर रख देते। इसलिए, जब राज साहब का बिल बनता था, तो मालिक खुद सैंडविच खोलकर चेक करता था क्योंकि वह जानता था कि राज साहब आमतौर पर क्या करते हैं। यह उनकी पसंदीदा जगहों में से एक थी और वे वहाँ नियमित रूप से जाते थे।
राज साहब को पुणे से विशेष लगाव था। उन्हें वहां जाना बहुत पसंद था और उन्होंने वहां कई शूटिंग भी कीं। वे उस जगह के लिए पूरी तरह से दीवाने थे। वे जरा भी समय निकाले वहां चले जाते थे। पुणे से मात्र 14 किलोमीटर दूर लोनी में उनका एक फार्महाउस भी था। बार-बार पुणे आने के कारण उनका घर काफी आलीशान हो गया था और पूरी टीम को जगह देने के लिए उन्हें धीरे-धीरे घर का विस्तार करना पड़ा। राज साहब ने घर में एक एडिटिंग रूम भी बनवा

लिया था क्योंकि वे अक्सर वहीं एडिटिंग करते थे। यह भी उनके जुनून का ही एक हिस्सा था। वे उस जगह को एक तरह का फिल्म हब बनाना चाहते थे।

राज साहब को डेक्कन क्वीन ट्रेन से पुणे जाना बहुत पसंद था। यह ट्रेन आज भी मुंबई से पुणे के लिए शाम 5:10 बजे निकलती है और सुबह 7 बजे वापस मुंबई आती है। यह एक तरह से आम लोगों की ट्रेन है। इससे पुणे में रहने वाले लोग समय पर अपने दफ्तर पहुँचने के लिए मुंबई आ सकते हैं और वापस जा सकते हैं। राज साहब के चेंबूर स्थित घर से पुणे तक गाड़ी से जाने में उतना ही समय लगता था जितना डेक्कन क्वीन को वर्मोंट से पुणे जाने में लगता था। राज साहब वर्मोंट पहुँचने के लिए डेढ़ घंटा ज़्यादा गाड़ी चलाते थे और फिर डेक्कन क्वीन से यात्रा करते थे, क्योंकि उन्हें ट्रेन में मिलने वाला खाना बहुत पसंद था।

वैसे, उनका मेन्यू काफी विविध होता था। उसमें समोसे, टोस्ट पर बेक्ड बीन्स, रेलवे कटलेट, उनका सबसे पसंदीदा कीमा पाव और पेस्ट्री शामिल होते थे। वे सिर्फ इसलिए ट्रेन से यात्रा करना चाहते थे ताकि उन्हें ये स्वादिष्ट व्यंजन खाने को मिल सकें और हम भी उनके साथ जाते थे।

ट्रेन में एक कैंटीन का डिब्बा था और वह ज़्यादातर सफ़र वहीं बैठकर खाता रहता था। वह सिर्फ़ ट्रेन का खाना ही नहीं खाता था, बल्कि ट्रेन जिन-जिन स्टेशनों पर रुकती थी, वहाँ के हर प्लेटफ़ॉर्म पर खाना खाता था। और यकीन मानिए, उसे दक्कन क्वीन ट्रेन से पुणे जाने का इतना जुनून था कि चेंबूर से वर्मोंट तक का पूरा सफ़र तय करने के बाद अगर वर्मोंट में ट्रेन छूट जाती, तो वह कहता, 'नहीं, चलो करजत चलते हैं और ट्रेन पकड़ते हैं।' हम कार से करजत जाते और अगर करजत में भी ट्रेन छूट जाती, तो वह कहता, 'चलो लोनावला चलते हैं और ट्रेन पकड़ते हैं।' उसे बस दक्कन क्वीन में चढ़ना ही था और कभी-कभी तो ऐसा होता था कि पुणे पहुँचने के चक्कर में हम आख़िरकार कार से ही पहुँच पाते थे।

पुणे में शूटिंग खत्म होने के बाद एक रात, उन्होंने यूनिट के लिए एक पार्टी रखी जो सुबह 6 बजे तक चली; सभी लोग खूब मस्ती में थे और शराब के नशे में चूर थे। अचानक उन्होंने कहा, 'मैं डेक्कन क्वीन से वापस जाना चाहता हूँ क्योंकि मैं ट्रेन में नाश्ता करना चाहता हूँ।' तो मैंने उनके लिए डेक्कन क्वीन में एक सीट बुक कर दी। ट्रेन के डिब्बों में सीटें ट्रेन की गति की

दिशा के विपरीत दिशा में लगी होती थीं। मान लीजिए ट्रेन पुणे से मुंबई जा रही है, तो सीटें मुंबई की ओर होंगी और पुणे जाने के लिए इसका उल्टा होगा।
उस सुबह राज साहब थाने आए। मैं उन्हें उनकी सीट तक ले गया और मेरी किस्मत ऐसी थी कि उस डिब्बे में सीटें दूसरी तरफ मुंह करके लगी हुई थीं। वे वहीं रुक गए और बोले, 'मैं पुलिस को बुला रहा हूं।'
मैं उसकी अचानक प्रतिक्रिया से चकित रह गया और मैंने उससे पूछा, 'किसलिए?'
उसने मेरी तरफ देखा और चिल्लाने लगा, 'तुम मेरा अपहरण कर रहे हो!'
मुझे बिलकुल भी अंदाजा नहीं था कि उसके मन में यह विचार कहां से आया, 'मैं तुम्हारा अपहरण क्यों करूंगा?' मैंने उसे समझाने की कोशिश की लेकिन वह सुनने को तैयार ही नहीं था।
उसने आरोप लगाते हुए कहा, 'आप मुझे बॉम्बे नहीं ले जा रहे हैं। आप मुझे कहीं और ले जा रहे हैं। ट्रेन की सीटें दूसरी तरफ मुंह करके खड़ी हैं। मुझे बताइए मैं कहाँ जा रहा हूँ?'
मैंने धैर्यपूर्वक पूछा, 'सर, मैं आपको कहीं और क्यों ले जाऊँगा?'
उसने सुनने से इनकार कर दिया और कहा, 'नहीं, तुम हो! वरना ट्रेन दूसरी तरफ क्यों मुड़ती? तुम मुझे अगवा करने की कोशिश कर रहे हो और मैं तुम्हारे जाल में नहीं फँसूँगा!' असल में, वह बस लोनी के पास वापस जाकर सोना चाहता था।
पुणे के प्रति उनका जुनून सिर्फ शहर तक ही सीमित नहीं था, बल्कि वहां के खाने के प्रति भी था। एमजी रोड पर इंडिया कॉफी सेंटर नाम की एक जगह थी, जहां हम अक्सर जाया करते थे। राज साहब अपने लिए कोल्ड कॉफी और क्लब सैंडविच मंगवाते थे। हर बार जब हम वहां जाते थे, यही उनका पसंदीदा ऑर्डर होता था। फिर गुड लक नाम की एक जगह थी, जहां की बिरयानी उन्हें बेहद पसंद थी। वो हमेशा बिरयानी मंगवाते थे। इसके अलावा दोराबजी नाम का एक रेस्टोरेंट भी था, जहां वो खास तौर पर मशहूर पारसी खाना खाने जाते थे। पुणे में चाइनीज रूम नाम का उनका एक पसंदीदा चाइनीज रेस्टोरेंट भी था, जैसे बॉम्बे में नानकिंग था। हम लोनी से 14 किलोमीटर का सफर तय करके चाइनीज रूम में खाना खाने आते थे।

एक बार उन्होंने वजन कम करने का फैसला किया और लोनी से महज 12 किलोमीटर दूर उरुली कंचन में स्थित एक प्राकृतिक चिकित्सा क्लिनिक में भर्ती हो गए। मैंने सोचा कि मैं सप्ताहांत में उनसे मिलने जाऊँगा और मैं गया भी।

राज साहब ने शहर के मुख्य चहल-पहल से दूर, जंगल के एक कोने में एक कॉटेज किराए पर लिया था। मैं उनके पास गया, यह सोचकर बहुत दुखी था कि उन्हें इस हालत में रहना पड़ रहा है, लेकिन जब मैंने उन्हें देखा, तो वे बेहद खुश लग रहे थे। उन्होंने खुले दिल से मेरा स्वागत किया और कहा, 'आओ, राहुल, चाय पी लो।' रेवती जी उनके साथ थीं, जिन्होंने हम दोनों के लिए चाय बनाई। चाय की चुस्की लेते हुए राज साहब ने पूछा, 'कैसे हो? क्या चल रहा है?' और हमने थोड़ी बहुत बातचीत की।

जल्द ही दोपहर के भोजन का समय हो गया और मैंने फैसला किया कि मुझे जाना चाहिए, 'सर, मैं अब चलता हूँ।'

उन्होंने कहा, 'क्यों? अपना लंच करो और जाओ।'

मुझे दोपहर का भोजन करने में बहुत चिंता हो रही थी क्योंकि मुझे पता था कि वे खाने के लिए बहुत कम मात्रा में बेस्वाद भोजन देते हैं, इसलिए मैंने उनसे कहा, 'सर, मैं नहीं खा सकता। मेरा मानना है कि ये जगहें नाश्ते, दोपहर के भोजन और रात के खाने में एक ही गोभी देती हैं।'

उसने मुस्कुराते हुए कहा, 'सुनो, राज कपूर तुम्हें दोपहर के भोजन पर आमंत्रित कर रहे हैं...'

पुणे से एक ग्रामीण साइकिल पर एक थैला लेकर आया। उसके पास कागज़ की प्लेटें और कटोरियाँ थीं और उसने हमारा दोपहर का भोजन पहुँचाया। पैकेट खोलने पर मैंने देखा कि यह चाइनीज़ रेस्टोरेंट का खाना था!

राज साहब को बाहर का खाना खाने की इजाज़त नहीं थी, लेकिन उन्होंने पुणे से चोरी-छिपे खाना मंगवा लिया था। संभवतः वे प्राकृतिक चिकित्सा क्लिनिक में भर्ती होने वाले इकलौते व्यक्ति थे, जहाँ वजन कम होने के बजाय, जिस कारण से उन्हें भर्ती किया गया था, वहाँ रहने के अंत तक उनका वजन 3 किलो बढ़ गया था।

उनकी सनक उनके व्यक्तित्व का एक पहलू थी, लेकिन उनका काम ही उनका जुनून था। यही चीज़ उन्हें राज कपूर बनाती थी। जब वे 'मेरा जूता है जापानी' गाने की शूटिंग कर रहे थे, तो उन्होंने इसे पनवेल में शूट करने का फैसला किया। उस समय पनवेल तक जाना एक बड़ी

बात थी। वे वहाँ शूटिंग करना चाहते थे क्योंकि उन्हें लगता था कि वहाँ आसमान में बादल ज़्यादा खूबसूरत होंगे। ब्लैक एंड व्हाइट फोटोग्राफी में, आसमान में बादल उसे और भी ज़्यादा मनमोहक बना देते हैं।

तो, टीम पनवेल गई, लेकिन वहाँ आसमान बिल्कुल साफ था। उन्होंने आगे बढ़ने का फैसला किया और इसी दौरान वे पुणे पहुँच गए। राज साहब को वहाँ का नज़ारा भी पसंद नहीं आया, इसलिए वे और आगे बढ़े और पाँच दिन बाद ऊटी पहुँच गए। वे पनवेल के लिए निकले थे और ऊटी पहुँच गए! एक फिल्म के एक गाने के लिए खूबसूरत बैकग्राउंड पाने के लिए वे कितनी दूर तक जा सकते थे! कला के प्रति उनका जुनून उन्हें किसी भी सीमा तक ले जाता था।

उसके बाद, जब भी राज साहब कहते कि वो पुणे या कहीं और शूटिंग करेंगे, तो खाने-पीने का सामान और खाना पकाने के लिए ज़रूरी औज़ारों से भरा एक ट्रक पूरी यूनिट के साथ जाता था, क्योंकि वो कहीं भी रुककर रात बिताना चाहते थे। हम सबने ये कहानी सुनी थी, इसीलिए बॉबी की शूटिंग के दौरान, क्लाइमेक्स के समय, उन्होंने कहा, 'राहुल, चलो इस सीन की शूटिंग बॉम्बे-नाशिक रोड पर करते हैं।' वो खूबसूरत घाटों को कैमरे में कैद करना चाहते थे।

मैंने जवाब दिया, 'सर, आप अभी बॉम्बे-नाशिक रोड पर शूटिंग करना चाहते हैं, लेकिन अंततः आप कहेंगे कि चलिए पुणे में शूटिंग करते हैं। मुझे पता है। आप कहेंगे कि चलिए पुणे से महाबलेश्वर चलते हैं और उस घाट पर शूटिंग करते हैं।'

उन्होंने इस बात का खंडन किया और हठपूर्वक कहा, 'नहीं, नहीं! मैंने फैसला कर लिया है कि हम वहीं शूटिंग करेंगे। हम तीन दिन की शूटिंग के लिए जाएंगे, सब कुछ तैयार कर लेंगे।'

तो मैंने वैसा ही किया, लेकिन मैंने यूनिट को यह भी कहा, 'सुनो, वह कहता है कि तीन दिन लगेंगे, लेकिन मुझे पूरा यकीन है कि इससे ज़्यादा समय लगेगा; उसे जानते हुए, हम आखिरकार पुणे में ही पहुँचेंगे।' और ऐसा ही हुआ। हम गए और पहले दिन की शूटिंग की। हम द्वारका होटल में रुके।

फिर शाम को उन्होंने मुझसे कहा, 'मैं इस जगह से वास्तव में खुश नहीं हूं।'

मैंने कहा, ‘सर, मैंने पुणे जाने का इंतज़ाम पहले ही कर लिया है।’ हमारी यात्रा तीन दिन की होनी थी, लेकिन हम सोलह-सत्रह दिन बाद वापस आ गए। उनका काम करने का यही तरीका था।

राज साहब का सिनेमा के प्रति जुनून भारत की सीमाओं से परे था। उन्हें 'द बाइसिकल थीफ' और हिचकॉक की फिल्में बेहद पसंद थीं। हम सबने 'द गॉडफादर' पढ़ी थी और यह जानने के लिए बहुत उत्सुक थे कि फिल्म कैसी बनी। फिल्म रिलीज होने के समय राज साहब न्यूयॉर्क में थे और 'फर्स्ट डे फर्स्ट शो' का टिकट पाने के लिए उन्हें पांच घंटे लाइन में खड़ा रहना पड़ा था। जब वे मुंबई लौटे, तो उन्होंने हमसे दो घंटे से अधिक समय तक सिर्फ 'द गॉडफादर' के बारे में ही बात की। जब उन्होंने पूरी फिल्म की कहानी सुनाई, तो ऐसा लगा जैसे हमने पूरी फिल्म देख ली हो। उन्हें हर एक दृश्य और हर एक सीन याद था - उसे कैसे फिल्माया गया था और किरदार कैसे बोलते थे।

जब हम आरके थिएटर में एडिटिंग करते थे—चाहे कोई गाना हो या कोई खास सीन—वह मुझे स्टेज पर भेज देते थे। वह कहते थे, ‘सबको बुलाओ और इसे देखने के लिए कहो।’ और बेशक, यह उस्ताद का काम देखने का एक शानदार मौका होता था। कई बार हमें गाना दो बार चलाना पड़ता था क्योंकि एक साथ इतने सारे लोगों के बैठने की जगह नहीं होती थी। वह सबके साथ मिलकर उसे देखते थे। उनकी नज़र बहुत तेज़ थी। वह आसानी से समझ जाते थे कि दर्शकों को कहां कुछ गड़बड़ लग रही है।

मेरा नाम जोकर का फाइनल कट देखने के बाद, पूरी यूनिट की यही राय थी कि राज साहब को फिल्म की लंबाई कम करनी चाहिए। उन्होंने इसका गहरा जवाब देते हुए कहा, ‘जो फिल्म मैं देख रहा हूँ, वही मेरी नज़र में और मेरे कहने के अनुसार पूरी है। इस समय मुझे एक भी ऐसा फ्रेम नहीं दिख रहा जिसे छोटा किया जा सके, इसलिए यही वर्ज़न रिलीज़ होगा। हालांकि, जब फिल्म शुक्रवार को रिलीज़ होगी और पहले शो के बाद दर्शक फिल्म पर कोई नकारात्मक टिप्पणी करेंगे, तब मुझे भी एहसास होगा कि कुछ हिस्से काटे जाने चाहिए थे। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। याद रखिए, फिल्म निर्माता राजा नहीं होता, दर्शक राजा होते हैं, यह एक ऐसी सच्चाई है जिसे हर फिल्म निर्माता को स्वीकारना पड़ता है। फिल्म रिलीज़ होने के बाद उसे सुधारने की कोशिश करना बेकार है।’

राज कपूर से जो ज्ञान प्राप्त होता था, वह वास्तव में अद्वितीय था। वे एक बहुत अच्छे शिक्षक थे। वे फिल्म निर्माण सीखने के लिए स्कूलों में जाने या किसी विशेष पाठ्यक्रम का पालन करने में विश्वास नहीं रखते थे, बल्कि व्यावहारिक प्रशिक्षण और अपने शिक्षक द्वारा अपनाई गई तकनीकों को आत्मसात करने में विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि एक शिक्षक को उस छात्र को पढ़ाना पसंद होता है जो ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो।

गुरु के अधीन काम करना

राज साहब के मार्गदर्शन में सीखते समय, मैंने ठान लिया था कि मैं उस मुकाम तक पहुँचूँगा जहाँ मैं उनके द्वारा उस समय सोचे जा रहे शॉट में उनकी अपेक्षा को पहले से ही समझ सकूँ। वही दिन मेरे लिए उपलब्धि का दिन होगा। इसलिए, मैंने उनके कार्यों पर पूरा ध्यान देना शुरू कर दिया। मैंने उनके द्वारा किसी दृश्य को फिल्माने के तरीके और बाद में संपादन की तकनीक को सीखने की कोशिश की। ये सब मैंने धीरे-धीरे सीखा।

उनकी फिल्म निर्माण शैली की नींव इस तथ्य पर टिकी थी कि हम एक 'चलचित्र' बना रहे थे। राज साहब ने मुझे समझाया था, 'हम जो बना रहे हैं वह एक चलचित्र है। अगर मुझे सिर्फ एक कहानी सुनानी हो, तो मैं एक किताब लिखूंगा, लेकिन एक चलचित्र के लिए 'गति' आवश्यक है। अब, इस गति का अर्थ कैमरा की गति या अभिनेता की गति या दोनों का संयोजन हो सकता है। ये पहलू कहानी के वर्णन में जान डाल देते हैं।' वे कहते थे, 'जब भी मैं शूटिंग करता हूं, मैं गति को ध्यान में रखने की कोशिश करता हूं। ऐसा नहीं है कि मैं हर समय ऐसा करता हूं, लेकिन जितना संभव हो सके। इससे दृश्य अधिक रोचक हो जाता है और इस तरह दर्शक दृश्य से जुड़े रहते हैं।'

आरके में हमारे पास एक थिएटर था और मैं वहाँ जाकर उनकी पुरानी फिल्में देखता था और अलग-अलग शॉट्स में कैमरे की गति को ध्यान से देखता था। ये शॉट्स अनोखे थे क्योंकि शूटिंग के दौरान इन्हें समझना लोगों के लिए बहुत मुश्किल रहा होगा; लेकिन जब सभी शॉट्स को एक साथ देखा गया, तो समझ आया कि कैसे शॉट्स को कहानी में सहजता से पिरोया गया था। वे कहा करते थे, 'जब भी आप शूटिंग करें, कैमरे के कोण सरल रखें। अपने शॉट्स को जटिल न बनाएं जिससे एक ऐसी दृश्य कहानी बने जो दर्शक के दिमाग को उलझा दे। हर शॉट अगले शॉट में सहजता से जुड़ना चाहिए, जिससे एक सहज कहानी बने।'

मैं कैमरे के लेंस से रचे जा रहे जादू को देखने के लिए बहुत उत्सुक था, लेकिन मैंने ऐसी कहानियां सुनी थीं कि कुछ कैमरामैन किसी भी सहायक को, जो कैमरे से देखने की इच्छा जताता था, लात मार देते थे। इसीलिए, हालांकि मैं चिंतित था, मैंने 'मेरा नाम जोकर' की शूटिंग के दौरान राधू साहब से हिम्मत जुटाकर पूछा, 'दादा, क्या मैं कैमरे से देख सकता हूँ?'

उन्होंने बस इतना कहा, 'बेशक आप देख सकते हैं, लेकिन मैं यह जानना चाहता हूं कि आप कैमरे के माध्यम से क्यों देखना चाहते हैं?'

इस पर मैंने समझाया, 'मैं यह समझने की कोशिश करना चाहता हूँ कि राज साहब ने किसी खास शॉट को कैसे अरेंज किया है। इस तरह मुझे पता चलेगा कि उनके दिमाग में क्या चल रहा है।' राधू साहब मुस्कुराए और बोले, 'ठीक है।' यह सिखाने की प्रक्रिया सिर्फ बॉस तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि मेरी पूरी असिस्टेंटशिप के दौरान 'त्रिमूर्ति' तक फैली रही।

मैंने कैमरे की ओर देखा और सहायकों में से किसी एक से अभिनेता की हरकतों को दोहराने का अनुरोध किया, जैसा कि राज साहब ने अभिनेता को समझाया था। मैं कलाकार की हरकतों, कैमरे की हलचल (यदि कोई हो) और इस शॉट को एक विशेष तरीके से क्यों लिया गया, इन सबका प्रभाव समझना चाहता था।

बाद में मुझे पता चला कि राज साहब ने राधू साहब से पूछा था, 'राहुल आपसे क्या पूछ रहा था?'

राधू साहब ने जवाब दिया, 'सर, वह पूछ रहे थे कि क्या वह कैमरे के जरिए शॉट देख सकते हैं।'

राज साहब ने कहा था, 'मुझे खुशी है कि आपने उसे प्रोत्साहित किया। यह अच्छी बात है कि वह ये सब चीजें सीख रहा है।'

राज साहब को बहुत खुशी होती थी कि कोई उनकी फ़िल्म बनाने की शैली को सीखने और समझने की कोशिश कर रहा है। एक शिक्षक के रूप में उनमें एक खास खूबी थी – अगर आप उनसे कोई सवाल पूछते, तो वे विस्तार से उसका जवाब देते और समझाने में आनंद लेते, जो कि ज़्यादातर लोगों से अलग था। और अगर आपसे कोई गलती हो जाती, तो वे बैठकर आपको समझाते कि क्या हुआ। वे निःसंदेह एक आदर्श शिक्षक थे और उनके पास ऐसे स्पष्ट दिशानिर्देश भी थे जिनसे चरित्र निर्माण में मदद मिलती थी।

सर्कस दिल्ली शिफ्ट हो गया था, इसलिए 'मेरा नाम जोकर' की शूटिंग के लिए वही हमारी अगली लोकेशन बन गई। इसका मतलब था कि पूरी टीम को शूटिंग शेड्यूल पूरा करने के लिए दिल्ली जाना पड़ा। मैं स्कूल की छुट्टियों में अपने माता-पिता के साथ दिल्ली गया था, लेकिन इस बार मैं बिना किसी परिवार के सदस्य के, सिर्फ एक यूनिट मेंबर के तौर पर जा

रहा था। हमें जनता एक्सप्रेस से सफर करना था और मैं अकेला यूनिट मेंबर था जिसके माता-पिता उसे छोड़ने आए थे। खैर, तब तक मैं सोलह साल का नहीं हुआ था, लेकिन फिर भी यह बहुत शर्मनाक था!

बाद में, कार्यक्रम के दौरान, मेरे पिता कुछ काम से कुछ दिनों के लिए दिल्ली आए और मुझसे मिलने भी आए। फिर जब हम बॉम्बे वापस लौटे, तो मुझे पता चला कि राज साहब मेरे पिता पर बहुत गुस्सा थे और उन्होंने मेरे माता-पिता से व्यक्तिगत रूप से मुलाकात की।

उन्होंने उनसे कहा, 'क्या आपको पता है कि मेरी यूनिट में लगभग हर किसी के माता-पिता हैं? क्या आपने इस बारे में सोचा? क्या आपने सोचा कि आपको अपने बेटे को स्टेशन छोड़ने जाना चाहिए? किसलिए? 200 लोग गए थे। उन लोगों को उनके माता-पिता क्यों नहीं मिले? उन्हें इसलिए नहीं मिले क्योंकि यह सही नहीं है। आपने जो किया वह गलत था; वह काम कर रहा है! रवैल साहब, आपने कहा था कि आप निजी काम से दिल्ली आए हैं, लेकिन ऐसा नहीं था! आप अपने बेटे से मिलने आए थे, मुझे पता है। अगर आप चाहते हैं कि वह बड़ा होकर एक जिम्मेदार और आत्मनिर्भर इंसान बने, तो ये सब मत कीजिए।'

राज साहब के लिए फिल्म निर्माण के मामले में 'समझौता' जैसा कोई शब्द नहीं था। 'मेरा नाम जोकर' की एडिटिंग के दौरान उन्होंने कहा, 'मुझे सर्कस के बाहरी हिस्से के तीन शॉट चाहिए। मुझे पता है कि हमारे पास ये शॉट नहीं हैं, इसलिए राहुल, पता लगाओ कि सर्कस इस समय कहाँ है, वहाँ एक दिन के लिए जाओ और ये तीन शॉट ले लो।' संयोग से सर्कस भोपाल में था और भोपाल आने-जाने में चार दिन लगे और शूटिंग चार घंटे से भी कम समय में पूरी हो गई। बात यहीं खत्म नहीं हुई। एडिटिंग के लिए सर्कस के एक-दो माहौल बनाने वाले शॉट लेने के लिए मुझे पाँच बार और अलग-अलग शहरों में भेजा गया।

जूनियर असिस्टेंट के तौर पर मैंने एक बात सीखी थी कि आपको अपने पद की परवाह किए बिना, दिए गए काम के प्रति खुला दृष्टिकोण रखना चाहिए। यह मत कहो, 'क्योंकि मैं तीसरा असिस्टेंट हूँ, इसलिए मैं सिर्फ यही काम करूँगा।' अगर आप अपनी भूमिका से हटकर भी काम करते हैं, तो इससे आपका उत्साह दिखेगा और अंततः आपको आगे बढ़ने में मदद मिलेगी।

बॉबी के आने से पहले मैं जूनियर असिस्टेंट था। बॉबी की शूटिंग के पहले दिन से एक रात पहले, राज साहब के असिस्टेंट जोशी जी और म्हात्रे जी ने इस्तीफा दे दिया और सिर्फ काला जी और मैं ही असिस्टेंट बचे थे।

बॉस ने मुझे फोन किया और कहा, 'कल से शूटिंग शुरू हो रही है और जोशी और म्हात्रे ने अचानक काम छोड़ दिया है। क्या आपको लगता है कि आप और काला जी सारा भार संभाल पाएंगे?' (काला जी बरसात के समय से ही राज साहब के साथ थे। उन्होंने कहीं न कहीं यह बात स्वीकार कर ली थी कि वे हमेशा उसी भूमिका में रहेंगे जिस भूमिका में वे इतने सालों से थे। वे एक बुजुर्ग व्यक्ति थे और सभी उनका सम्मान करते थे और उनकी बात मान लेते थे।)

मैंने जवाब दिया, 'चिंता मत कीजिए, महोदय, हमारे काम पर कोई असर नहीं पड़ेगा।' और इसी तरह मुझे पदोन्नति मिल गई!

कुछ समय बाद हम पर एक दुखद घटना घटी, हमारे प्रोडक्शन इंचार्ज ओम जी का देहांत हो गया। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण था और इससे हम बिना प्रोडक्शन हेड के रह गए। हालांकि, शूटिंग चल रही थी और राज साहब इसे रोकना नहीं चाहते थे, इसलिए उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं सहायक निर्देशक के रूप में अपने काम के अलावा प्रोडक्शन की ज़िम्मेदारियाँ भी संभाल सकता हूँ, जिस पर मैं तुरंत सहमत हो गया।

जब हमने पहला शेड्यूल शूट किया, तब तत्कालीन एडिटर के असिस्टेंट काबरे जी (राज साहब खुद एडिटर थे) भी म्हात्रे जी और जोशी जी के साथ चले गए थे। रशेस का ढेर लगा हुआ था और उनकी एडिटिंग नहीं हुई थी क्योंकि हम एक असिस्टेंट एडिटर की तलाश में थे। उस समय डिजिटल तकनीक नहीं थी, जिसका मतलब था कि साउंड और विजुअल अलग-अलग फिल्म में थे और दोनों को मिलाना पड़ता था। फिर शॉट्स, क्योंकि हमने बेतरतीब क्रम में शूट किया था, उन्हें सही क्रम में लगाना पड़ता था; कम से कम बॉस तो इसी तरह काम करते थे। इसके अलावा, टेक्स चुनने का काम भी था क्योंकि एक शॉट के कई टेक्स होते थे, लगभग छह या आठ टेक्स। उन सभी को रीलों में लोड करके स्क्रीनिंग रूम में दिखाया जाता था। काला जी एक किताब लेकर बैठते थे जिसे आपको उनके लिए तैयार करना होता था, जिसमें वे बताते थे कि कौन सा सीन नंबर है, कौन सा शॉट नंबर है और कौन सा टेक नंबर है।

फिल्म बनानी थी, और शॉट्स को सही क्रम में लगाने में मदद करने के लिए कोई असिस्टेंट एडिटर मौजूद नहीं था।

हमने पहले शेड्यूल में प्राण साहब के घर की शूटिंग की और दूसरे शेड्यूल में प्रेम नाथ जी के घर के बाहरी और अंदरूनी हिस्से की। जब प्राण साहब के प्रेम नाथ जी के घर जाने का दृश्य फिल्माया जा रहा था, तब राज साहब ने अफसोस जताते हुए कहा, 'काश मैंने पहले शेड्यूल के दृश्यों को एडिट कर लिया होता, क्योंकि वे इस दृश्य की ओर ले जाते हैं।' उसी दिन, शूटिंग खत्म होने के बाद मैं एडिटिंग रूम गया, फुटेज उठाया और साउंड मैचिंग व शॉट्स को क्रम में लगाना शुरू किया। इस प्रक्रिया में मुझे शूटिंग के बाद चार शामें लग गईं और जब सब तैयार हो गया, तो मैं सेट पर गया और राज साहब से बात की।

'सर, पहले शेड्यूल की फुटेज एडिटिंग के लिए तैयार है।'

राज साहब आश्चर्यचकित थे, 'ये सब तैयार कैसे हैं, इन्हें सिंक्रनाइज़ और क्रम में क्यों नहीं लगाया गया?'

मैंने कहा, 'सर, मैंने यह सब पूरा कर लिया है।'

उसने पूछा, 'क्या पूरी बात?'

मैंने उत्तर दिया, 'जी सर।'

उन्होंने सहज भाव से मुझे गले लगा लिया। इस भाव से मेरी आँखों में आंसू आ गए। पहली बार मुझे ऐसा लगा कि मैंने अपनी जीविका सार्थक कर ली है।

दो दिन बाद हम एडिटिंग रूम में गए। मैंने जो रीलें तैयार की थीं, वे सब वहीं थीं और यकीन मानिए, मैंने कई जगहों पर गड़बड़ कर दी थी। राज साहब के कुछ प्रतिक्रिया देने से पहले ही, काला जी ने अपना पसंदीदा तेलुगु डायलॉग बोल दिया, 'येन्देरा एडवा रे, लेंजा कुडका!'

राज साहब जोर से हंस पड़े। उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या तुम जानते हो इसका क्या मतलब है?'

जिस पर मैंने कहा, 'हां, लेकिन मुझे इसे ज़ोर से कहने में बहुत शर्म आ रही है।' मैं बस वहीं खड़ा रहा और ज़मीन को घूरता रहा।

फिर काला जी ने बीच में ही टोकते हुए कहा, 'इसका मतलब है कि तुम एक मूर्ख हो। तुम एकदम बेवकूफ और कमीने हो...'

मुझे सचमुच शर्मिंदगी महसूस हुई और राज साहब अभी भी हंस रहे थे। उन्होंने काला जी से कहा, 'उससे ऐसा मत कहिए, हमें उसकी मेहनत की सराहना करनी चाहिए और उसे बताना चाहिए कि उसने कहां गलती की और वह क्या बेहतर कर सकता था।' जब किसी के काम की सराहना उसके गुरु द्वारा की जाती है, तो यह सबसे बड़ा सम्मान होता है। तभी मुझे एहसास हुआ कि वह मेरे लिए कितने मायने रखते थे।

यह सन् 1971 की बात है और मैंने 1968 में काम शुरू किया था। तीन साल तक हर महीने 72 रुपये वेतन पाने के बाद, यह पहली बार था जब मुझे 350 रुपये मिले। मैं बेहद उत्साहित था कि मेरा वेतन अब पहले से पांच गुना हो गया था।

मैं बॉस को धन्यवाद देने गया और बोला, 'धन्यवाद, महोदय', जिस पर उन्होंने जवाब दिया, 'किसलिए धन्यवाद? सुनो बेटे, तुम्हें तुम्हारे काम के लिए वेतन मिलता है, और तुम्हें इससे कहीं अधिक वेतन मिलना चाहिए। जब तुम लगन और ईमानदारी से काम करते हो तो हमेशा अधिक कमाते हो। यह वेतन वृद्धि तुम्हें और अधिक मेहनत करने और उसके अनुसार पुरस्कृत होने के लिए प्रोत्साहन है।'

वेतन वृद्धि मिलने के बाद मैंने खुद को खूब लाड़-प्यार दिया। पहली बार मैंने आरके से अपने घर तक टैक्सी ली। उस समय धारावी रोड नहीं थी, जिसका मतलब था कि हमें दादर या कुर्ला होते हुए लंबा रास्ता लेना पड़ता था और टैक्सी का किराया बहुत ज्यादा होता था – ₹3.25! एक आम आदमी के लिए तो यह बहुत बड़ी रकम थी!

अपनी पहली फिल्म के दौरान ही मैंने हर तरह की घटनाएं और यादें संजो ली थीं, जो अनमोल और मजेदार किस्सों के रूप में गिनी जा सकती हैं। एक मजेदार घटना जो मुझे याद आती है, वह है 'जीना यहां मरना यहां' गाने की शूटिंग के दौरान। गाने के लिए हमने गोल घेरे लगवाए थे। अगर आपको फिल्म का वह दृश्य याद हो, तो चारों ओर खूब रौनक थी। फोकस राजू पर था, जो मुख्य किरदार था, लेकिन बैकग्राउंड में 30 नर्तक गोल-गोल घूम रहे थे। राज साहब नर्तकों के गोल-गोल घूमने का शॉट नीचे के एंगल से लेना चाहते थे। जब रिहर्सल शुरू हुई, बॉस कैमरे से देख रहे थे, और नर्तकों ने अपना नृत्य शुरू किया, तो राज साहब ने अचानक एक महिला नर्तकी को पकड़ लिया और पूरी ताकत से चिल्लाकर कहा, 'ड्रेस दादा, चड्डी पहनाओ इसे!' शर्म से उसके गाल लाल हो गए। राज साहब ऐसे ही इंसान थे। उन्हें जरा भी

शर्म नहीं आती थी। वह हमेशा स्पष्टवादी और खरी बात कहने वाला व्यक्ति था, चाहे परिस्थिति कैसी भी हो।

राज साहब को सिनेमा का व्यापक ज्ञान था और बारीकियों को समझने की उनकी क्षमता बेजोड़ थी। 1972 में, वे दिल्ली में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव के निर्णायक मंडल के अध्यक्ष थे। वे मुझे अपने साथ ले गए ताकि मुझे विभिन्न देशों की फिल्में देखने का अवसर मिल सके। फिल्म शुरू होने के लगभग 20 मिनट बाद, बिना पूरी तरह समझे ही, वे केवल दृश्यों से ही फिल्म का सार बता देते थे और मुझे फुसफुसाकर बताते थे कि फिल्म किस दिशा में जा रही है, हर किरदार का अंतिम लक्ष्य क्या होगा और फिल्म किस मोड़ पर अलग दिशा में जाएगी। लगभग 95 प्रतिशत बार उनका अनुमान सटीक होता था और अगर फिल्म उनकी कल्पना से अलग दिशा में मुड़ जाती थी तो उन्हें बहुत खुशी होती थी। उनके पास 'सामूहिक सृजन के हथियार' का विशाल भंडार था और जब भी आवश्यकता होती, वे इन हथियारों का उपयोग करते थे या नए हथियार बनाते थे।

राज साहब ने मुझे फिल्म निर्माण की एक गहरी समझ दी है जो मेरे साथ हमेशा रहेगी और अब मुझे लगता है कि मैं इसे बाकी दुनिया के साथ साझा करने के लिए तैयार हूं।

पाठ 1: अवधारणाएँ और प्रेरणा

राज साहब हमेशा यह सुनिश्चित करते थे कि उनकी फिल्में दर्शकों पर ऐसा प्रभाव डालें जो एक अमिट छाप छोड़े। उनकी अधिकांश फिल्मों में कोई न कोई सामाजिक संदेश होता था जिसे वे दर्शकों तक पहुंचाना चाहते थे, जिसके लिए वे अपने आसपास की दुनिया से प्रेरणा लेते थे। एक बार जब वे विषय तय कर लेते थे, तो वे हर तरह की प्रेरणाओं से खुद को घेर लेते थे - फिल्में, रेडियो, किताबें और यहां तक कि कॉमिक्स भी। उदाहरण के लिए, प्रेम रोग मूल रूप से कामना चंद्र द्वारा लिखित एक रेडियो नाटक था। राज साहब ने इसे सुना और कामना चंद्र से संपर्क करके उन्हें वही नाटक सुनाने के लिए कहा। उनकी कहानी सुनते ही उनके मन में नाटक की कल्पना जागृत हुई, जिससे उन्हें रेडियो नाटक को फिल्म में बदलने का निर्णय लेने की प्रेरणा मिली। जब उन्हें कोई पटकथा या कहानी सुनाई जाती थी, तो वे उसे 'सुनते' नहीं थे बल्कि 'देखते' थे।

आजकल, अधिकांश फिल्म निर्माता, लेखक आदि स्क्रिप्ट पढ़ने के आदी हो गए हैं, लेकिन मेरा विश्वास करें, स्क्रिप्ट सुनने से आपको कहानी सुनाने वाले लेखक या निर्देशक की भावनाओं से जुड़ने में मदद मिलती है, क्योंकि कहानी में हमेशा फिल्म के साथ उनका भावनात्मक जुड़ाव शामिल होता है।

संगम की कहानी हॉल किंग के उपन्यास 'द मैनक्समैन' से प्रेरित थी। विपुल लेखक इंदर राज आनंद ने वह किताब पढ़ी और राज साहब को यह विचार सुनाया। राज साहब को यह कथानक बहुत पसंद आया और उन्होंने कहानी को आगे बढ़ाया, पृष्ठभूमि और पात्रों में बदलाव किए ताकि दर्शक इससे आसानी से जुड़ सकें। यह एक बेहद दिलचस्प रोमांटिक फिल्म थी। फिल्म में एक शानदार संघर्ष दिखाया गया है - एक पति और पत्नी के बीच गलतफहमी, जिसमें पति को लगता है कि उसकी पत्नी उसके दोस्त के साथ थी।

संगम की शूटिंग के लिए ही पहली बार किसी फिल्म निर्माता ने देश से बाहर यूरोप का रुख किया था। यह कहानी के माध्यम से आम आदमी से जुड़ने का उनका तरीका था, जिसमें किरदारों के जरिए विदेश यात्रा का दृश्यात्मक आनंद भी शामिल था। उन दिनों विदेश यात्रा करना हर किसी के लिए आसान नहीं था, लेकिन लोग थिएटर में आराम से बैठकर स्क्रीन पर

यूरोप के इन नजारों को देख सकते थे और राज साहब ने संगम के जरिए यही संभव कर दिखाया।

उनकी फिल्मों की कलात्मकता की बात करें तो, मुझे सत्यम शिवम सुंदरम की अवधारणा बहुत ही शानदार लगी। फिल्म में एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो सिर्फ एक आवाज से प्यार कर बैठता है, उस आवाज के पीछे के इंसान को देखे बिना। राज साहब लता जी और उनकी आवाज से प्रेरित थे और यहीं से इस कहानी की प्रेरणा मिली। मैंने लता जी को गाते हुए देखा है और मैं पूरी तरह मंत्रमुग्ध हो गया था; एक भावहीन चेहरा और एक मनमोहक आवाज। आवाज और चेहरे का यही मेल सत्यम शिवम सुंदरम की अवधारणा बन गया।

राज साहब को उन रूपों से प्रेरणा मिली जो शायद दूसरों के लिए साधारण विचार ही हों। ऐसी ही एक प्रेरणा 'राम तेरी गंगा मैली' के लिए थी। संत तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' (जिसका अर्थ है 'राम के कर्मों का सरोवर') के काव्यात्मक शब्दों ने उन्हें मंत्रमुग्ध कर दिया। यह काव्य चित्रकूट की यात्रा के दौरान राम की प्रयागराज में हुई एक यात्रा का वर्णन करता है, जहाँ उनकी मुलाकात एक नाविक से होती है। जब राम ने भक्तों को पवित्र गंगा में स्नान करके अपने पापों का प्रायश्चित करते देखकर प्रसन्नता व्यक्त की, तो नाविक ने उनसे कहा, 'राम तेरी गंगा मैली हो गई, पापियों के पाप धोते धोते', जिसका अर्थ है कि मनुष्यों के पाप धोने से गंगा अपवित्र हो गई है। इन शब्दों ने राज साहब को प्रभावित किया और उन्हें समाज के द्वंद्व की आलोचना करने वाली एक प्रतीकात्मक फिल्म बनाने की प्रेरणा दी, लेकिन उनके पास ऐसी कोई कहानी नहीं थी जो इस विचार को सार्थक बना सके।

फिल्म की नींव के रूप में इस विचार का उनके मन पर गहरा प्रभाव था और यह एक जुनून में बदल गया था। यह जुनून तब और बढ़ गया जब वे दिल्ली में एक शादी में शामिल होने गए, जहाँ रवींद्र जैन दर्शकों के लिए एक गीत गा रहे थे। गीत के शुरुआती कुछ शब्द थे, 'एक राधा, एक मीरा; दोनों ने श्याम को चाहा। अंतर क्या दोनों की चाह में बोलो? इक प्रेम दीवानी, इक दरस दीवानी'। राज साहब तुरंत रवींद्र जैन के पास गए और ऑर्केस्ट्रा को गीत बजाना बंद करने को कहा। उन्होंने कहा, 'मुझे महाकाव्य "रामचरितमानस" के एक दृश्य से प्रेरणा मिली, जिससे फिल्म की नींव बनी, लेकिन अफसोस, मेरे पास उस नींव पर आधारित कोई कहानी नहीं थी।' आज पंडित रविंद्र जैन के गीत के बोलों ने मुझे उस नींव को मजबूत करने के लिए

आधार प्रदान किया है।' उन्होंने कुछ पैसे निकाले और रविंद्र जैन को देते हुए कहा, 'पंडित जी, यह सांकेतिक हस्ताक्षर राशि है क्योंकि आप आरके की फिल्म 'राम तेरी गंगा मैली' के संगीत निर्देशक बनने जा रहे हैं।'

आवारा का किरदार निभाने वाले और लोकप्रियता की अपार ऊंचाइयों को छूने वाले मूल अभिनेता चार्ली चैपलिन थे और राज साहब उनसे बहुत प्रेरित थे। उन्होंने मुझे बताया था, 'मैं एक फिल्म प्रतिनिधिमंडल के साथ स्विट्जरलैंड के मॉन्ट्रो गया था, और प्रतिनिधिमंडल को चार्ली चैपलिन से मिलने का निमंत्रण मिला था। मेरे लिए 'आवारा' से मिलना एक बेहद खास पल था। जब हम वहां पहुंचे, तो मुझे चैपलिन के साथ कुछ समय बिताने और उनसे बात करने का मौका मिला। जब हम सब अलग हो गए, तो प्रतिनिधिमंडल के अधिकांश लोगों - बिमल रॉय, राधू कर्माकर, देव आनंद और नरगिस जी - ने टिप्पणी की, "आप दोनों की आवाज़ कितनी मिलती-जुलती है, आपके बोलने का तरीका, आपके विचार और आपके चरित्र..."'

राज साहब ने अभिनेता के रूप में चैपलिन की शैली में आवारा का किरदार अपनाया था। सोवियत संघ, पूर्वी ब्लॉक देशों और चीन के लोग विशेष रूप से इस आवारा के किरदार से जुड़ाव महसूस करते थे और इसी दीवानगी के कारण आवारा और श्री 420 को पंथ का दर्जा प्राप्त हुआ।

मैं 2007 में डब्बू साहब, चिंटू और नितिन मुकेश के साथ ताशकंद गया था, जहाँ महान अभिनेता राज कपूर को समर्पित कई कार्यक्रम आयोजित किए गए थे। उन कार्यक्रमों में मेरा परिचय राज कपूर के एक समय के सहायक निर्देशक के रूप में कराया गया था। एक बार हम स्थानीय बाजार में खरीदारी करने गए और वहाँ राज कपूर के बेटों और करीबी लोगों को देखने के लिए भारी भीड़ जमा थी। उसी भीड़ में एक बुजुर्ग महिला मेरे पास आईं और मुझसे पूछा, 'क्या आप राज कपूर के सहायक थे?' मेरे पास एक अनुवादक था जिसने उनके प्रश्न का अनुवाद करके मुझे समझाया।

मैंने जवाब दिया, 'हां।'

मेरे जवाब पर उसका पूरा व्यवहार बदल गया; उसकी आँखें चमक उठीं और उसने कहा, 'इसका मतलब है कि तुमने उसे छुआ है।' मुझे यह थोड़ा अजीब लगा, लेकिन फिर भी मैंने हाँ में जवाब दिया। उसने तुरंत मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया और रोने लगी और मेरे हाथ को

चूमने लगी। उसे और उसकी प्रतिक्रिया देखकर मैं भी फूट-फूट कर रोने लगी। मैंने ऐसा पहले कभी अनुभव नहीं किया था। आज भी, जब मैं इसके बारे में सोचती हूँ, तो मुझे लगता है कि मैं उन भाग्यशाली लोगों में से एक हूँ जिन्हें उस कद के व्यक्ति के साथ रहने का मौका मिला।

आवारा की कहानी बहुत ही शानदार थी – बचपन में बिछड़ गए पिता-पुत्र की कहानी, और कैसे बच्चा बड़ा होता है और अपने पालन-पोषण के हालातों में ढल जाता है। यह सवाल 'खानदानी' होने का नहीं है, बल्कि इस बारे में है कि आपका पालन-पोषण कैसे हुआ है। हालातों ने राज *(*नायक*)* को वह बनाया जो वह बना*;* हालाँकि उसके चरित्र में एक अंतर्निहित सादगी बनी रही। इस तरह, यह उसके जीन और परिस्थितियों के बीच का संघर्ष बन गया। 'राज' को अपने दबे-कुचले होने का कोई पछतावा नहीं है। राज साहब की यही खूबी थी कि वे ऐसे किरदारों की कल्पना कर पाते थे – चाहे उनका भाग्य कैसा भी हो, वे शक्तिशाली होते थे – और उन्हें उसी रूप में प्रस्तुत करते थे।

श्री 420 में, नायक एक खुशमिजाज और विनोदपूर्ण व्यक्ति था, जो अपनी जिंदगी को जीवंत और ऊर्जावान बनाए रखने का एक बेहतरीन तरीका जानता था। उसे शुरुआत से ही 'मेरा जूता है जापानी' गीत के माध्यम से इसी रूप में दिखाया गया है। उसकी सादगी के कारण नादिरा और खलनायक नीमो, जो 'इसमें फायदा ही फायदा है' कहता है, उसे धोखे की राह पर ले जाते हैं। जब भौतिक सुख-सुविधाएं हावी होने लगती हैं, तो वह न केवल अपनी प्रेमिका की परवाह करना छोड़ देता है, बल्कि उन सीधे-सादे लोगों को भी धोखा देने लगता है जिन्होंने जीवन में उसकी मदद की थी, उसका साथ दिया था और उसे परिवार मानते थे।

Raj Sahab believed in one thing, 'Dekho, beta, ye jitne bhi lakhpati [millionaire] hain, inhone paise mehnat se nahi kamaye hain. Inhone koi na koi fraud kiya hai, nahi toh yeh itne ameer admi nahin ho sakte. This is greed. Aur itne bade ho gaye hain, par inka lalach khatam nahin hua. Inke paas abhi sab kuch hai, par abhi bhi yeh aur fraud karte hain.'

राज साहब 'बूट पॉलिश' के ज़रिए एक सशक्त सामाजिक संदेश देना चाहते थे, जिसमें मुंबई की गलियों में रहने वाले बच्चों को दर्शाया गया था। यह फिल्म उनकी जीत, उनकी

कठिनाइयों, उनके भावों, परिस्थितियों पर उनकी प्रतिक्रियाओं और उनके जीवन की विडंबनाओं पर आधारित थी। उनके पास सब कुछ था, लेकिन परिस्थितियाँ उनके जीवन को आगे बढ़ने से रोकती थीं। बच्चों द्वारा निभाए गए किरदार आवारा बच्चों से मिलते-जुलते थे, लेकिन उनके दृष्टिकोण अलग-अलग थे, जो सीधे दर्शकों के दिलों को छू गए और उन्हें मुंबई की गलियों के जीवन की वास्तविकता से रूबरू कराया, एक ऐसा जीवन जिसे राज साहब ने बारीकी से देखा था।

जागते रहो समाज के दोहरे स्वरूप पर एक बेहद रोचक टिप्पणी थी। कहानी एक ही रात की घटनाओं को दर्शाती है, जिसमें एक भिखारी को सिर्फ एक गिलास पानी की लालसा होती है। वह अपनी लालसा मिटाने के लिए एक इमारत में जाता है, जहाँ रहने वाले लोग उसे चोर करार देते हैं। नायक भौतिकवादी नहीं था; उसे बस पानी चाहिए था, लेकिन अपनी इस आवश्यकता की पूर्ति के प्रयास में उसे पता चलता है कि जिन लोगों ने उसे चोर कहा था, वे खुद उससे भी बड़े चोर थे।

'जिस देश में गंगा बहती है' का निर्देशन राज साहब के कैमरामैन राधू साहब ने किया था और यह फिल्म समाज के एक अलग वर्ग की कहानी बयां करती है। फिल्म की अवधारणा पर चर्चा करने से पहले, मैं आपको इसके बारे में कुछ रोचक तथ्य बता दूं। जिस समय राज साहब ने 'जिस देश में गंगा बहती है' का निर्माण किया, उसी समय दिलीप साहब ने 'गंगा जमुना' और सुनील दत्त ने 'मुझे जीने दो' का निर्माण किया; यह एक अजीब संयोग था। तीनों बड़े नायकों ने तीन डकैत फिल्मों का निर्माण किया, लेकिन एक ही शैली की ये तीनों फिल्में एक-दूसरे से बिलकुल अलग थीं। तीनों ही नाटकीय रूप से भिन्न थीं और बंगाली निर्देशकों - राधू कर्मकार, नितिन बोस और मोनी भट्टाचार्य द्वारा निर्देशित थीं। संयोग यह था कि वास्तव में तीनों फिल्मों का निर्देशन खुद अभिनेताओं ने ही किया था!

'जिस देश में गंगा बहती है' की कहानी पर वापस आते हुए, नायक खुद को डाकुओं के बीच पाता है। राज साहब डाकुओं के उस अनछुए पहलू को उजागर करना चाहते थे जो अपने परिवार के साथ रहते हैं; वे भी अन्य मनुष्यों की तरह अपनी किस्मत के गुलाम थे और परिस्थितियों के चलते अपने परिवार का भरण-पोषण गलत कामों से करते थे। प्राण साहब द्वारा अभिनीत डाकुओं के सरदार राका को पता था कि वह जो कर रहा है वह गलत है,

लेकिन उसकी किस्मत उसे इस जीवन में ले आई थी। नायक अंततः उसे आत्मसमर्पण करने, समाज के प्रति अपना कर्ज चुकाने और एक अधिक सार्थक जीवन जीने के लिए मना लेता है।
राज साहब का मानना था कि जीवन में चाहे कितनी भी कठिनाइयाँ क्यों न आ रही हों, लोगों को हमेशा मुस्कुराता हुआ चेहरा बनाए रखना चाहिए ताकि दूसरे उनकी पीड़ा को न समझें बल्कि उनके आसपास की दुनिया को खुशहाल देखें; यही एक जोकर के जीवन का मूल मंत्र है – शो चलता रहना चाहिए! राज साहब ने इसी सिद्धांत का पालन करते हुए अपने अंतर्मन और सपनों पर आधारित फिल्म 'मेरा नाम जोकर' बनाई।
राज साहब को कॉमिक्स पढ़ने का बहुत शौक था। उन्हें उनमें बेहतरीन कहानियां, कथानक और कथानक मिलते थे। आर्ची कॉमिक्स ने उन्हें युवा प्रेम की कहानी लिखने के लिए प्रेरित किया। आर्ची और वेरोनिका के किरदारों ने उन्हें बेहद प्रभावित किया और यह दिखाया कि कैसे उनके बीच का वर्ग भेद उनके प्रेम को प्रभावित नहीं करता, और इसी बात को उन्होंने बॉबी की कहानी में अपनाया।
राज साहब की सभी फिल्मों में विविध कहानियाँ थीं, जो विभिन्न स्रोतों से प्रेरित थीं। इन कहानियों को फिल्मों में रूपांतरित करना सिनेमा की उनकी गहरी समझ का परिणाम था। उन्होंने ऐसे पात्रों का निर्माण किया जो कथा में सटीक रूप से फिट बैठते थे। कहानी कहना और पात्रों का सिनेमाई ढंग से उपयोग करना एक और महत्वपूर्ण सबक है।

पाठ 2: शूटिंग की तैयारी

एक निर्देशक के रूप में, राज साहब पर्दे पर दिखाए जाने वाले दृश्यों, उनकी शूटिंग के तरीके और दर्शकों पर उनके प्रभाव पर विशेष ध्यान देते थे। उनका मानना था कि दर्शकों का अनुभव ही सर्वोपरि है और उन्होंने ऐसी प्रभावशाली फिल्में बनाने पर काम किया जिनमें कुछ सबसे यादगार दृश्य शामिल थे। स्विट्जरलैंड की खूबसूरत घाटियों से लेकर रंगीन और जीवंत सर्कस तक, राज साहब की फिल्में उनकी तकनीक की बदौलत भव्यता से भरपूर थीं। मुझे इस प्रक्रिया का हिस्सा बनकर और कैमरा चलाना, प्रकाश व्यवस्था, शॉट्स को व्यवस्थित करना और शूटिंग से जुड़ी हर चीज को सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

राज साहब ने उस दौर में काम किया जब फिल्मों की शूटिंग ब्लैक एंड व्हाइट से रंगीन होने लगी थी। उनकी शुरुआती ज़्यादातर फिल्में ब्लैक एंड व्हाइट में थीं, इसलिए उनकी शूटिंग के दौरान टोन और सिनेमैटोग्राफी पर बहुत ध्यान दिया जाता था। ब्लैक एंड व्हाइट और रंगीन फिल्मों की सिनेमैटोग्राफी में अंतर यह है कि ब्लैक एंड व्हाइट में सिनेमैटोग्राफर को हर इमेज में अलग-अलग टोन लाने पड़ते थे, जो रंगीन फिल्मों में ज़रूरी नहीं थे। अगर ऐसा न किया जाता और फिल्म सिर्फ ब्लैक एंड व्हाइट होती, तो तस्वीर में कोई फर्क नहीं दिखता। इसलिए, बैकग्राउंड और फोरग्राउंड में अंतर लाने के लिए, सेट को इस तरह से रोशन करना पड़ता था जिससे परछाईं बनती थीं। मैंने एक बार राज साहब से एक बहुत ही बेवकूफी भरा सवाल पूछा था, 'साहब, जब आप ये फिल्में ब्लैक एंड व्हाइट में बनाते थे, तो क्या आपको अभिनेताओं के कपड़ों की इतनी परवाह करनी पड़ती थी?'

उन्होंने कहा, 'तुम्हारा क्या मतलब है?'

मैंने कहा, 'जो कपड़े पहनते हैं... वो सब काले और सफेद हैं। इसलिए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए।'

उन्होंने जवाब दिया, 'तुम मुझे समझदार लगे थे, तुम तो बेवकूफ हो। बेशक, हमें ऐसा करना ही पड़ा क्योंकि आप जो पूरी तस्वीर देख रहे हैं, अग्रभूमि और पृष्ठभूमि के बीच का वह अंतर, वह सब अलग-अलग रंगों और बनावटों के कारण ही बना है। यह निश्चित रूप से कहीं अधिक कठिन था।'

मेरा नाम जोकर की शूटिंग एक विशाल सर्कस टेंट के अंदर होनी थी, और टीम को पूरे स्थान को रोशन करने के लिए पर्याप्त रोशनी नहीं मिल पा रही थी। इसके लिए, अतिरिक्त आर्क लाइटें *(*दो इलेक्ट्रोड के बीच विद्युत चाप उत्पन्न करके उत्पन्न होने वाली तेज रोशनी*)*, जो आर्क लाइट से कहीं अधिक शक्तिशाली होती हैं और *225* एम्पियर डीसी और *10* किलोवाट टंगस्टन लैंप से चलती हैं, विशेष रूप से अत्यधिक लागत पर आयात की गईं। इतना भी पर्याप्त नहीं था और उच्च रेटिंग वाली एएसए फिल्म नेगेटिव की आवश्यकता थी। एएसए *(*अमेरिकन स्टैंडर्ड्स एसोसिएशन*)* रेटिंग से पता चलता है कि फिल्म प्रकाश पर कितनी जल्दी प्रतिक्रिया करती है, जिससे दिए गए क्षेत्र को रोशन करने के लिए आवश्यक प्रकाश की मात्रा निर्धारित होती है। जैसे-जैसे एएसए रेटिंग बढ़ती गई, रोशनी की आवश्यकता कम होती गई। मुझे याद है कि जब मैंने आखिरी बार सेल्युलाइड पर काम किया था, तब हम *400* एएसए तक की फिल्म का उपयोग कर रहे थे। लेकिन मेरा नाम जोकर के समय, भारत में केवल *16* और *32* एएसए रेटिंग वाली रॉ फिल्में ही उपलब्ध थीं। विश्वभर में *64 ASA* रेटिंग वाली रॉ फिल्में उपलब्ध थीं, लेकिन कोडक इन्हें भारत में आयात नहीं कर रहा था, क्योंकि किसी फिल्म निर्माता ने इनकी मांग नहीं की थी*!* इसलिए, राज साहब ने *64 ASA* रेटिंग वाली रॉ नेगेटिव आयात करने के लिए कोडक के साथ एक समझौता किया। राज साहब ने अपने मन में संजोए दृश्य को साकार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

अब बात करते हैं दृश्यों और शॉट्स की तैयारियों की। हर निर्देशक किसी दृश्य की शूटिंग से पहले एक प्रक्रिया से गुजरता है। कई तरह के शॉट्स होते हैं, जैसे ट्रॉली शॉट, क्लोज-अप, ज़ूम शॉट, और हर दृश्य ऐसे ही अलग-अलग शॉट्स के संग्रह से मिलकर बनता है। निर्देशक अपने विवेक से उस दृश्य के प्रभाव के आधार पर निर्णय लेता है जिसे वह उत्पन्न करना चाहता है।

इसके बाद निर्देशक को यह तय करना होता है कि शॉट के लिए कौन सा कैमरा लेंस इस्तेमाल किया जाएगा। लेंस की फोकल लेंथ के आधार पर लेंस का प्रकार बदलता रहता है। यह बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि हर शॉट की अपनी डेप्थ ऑफ़ व्यू और डेप्थ ऑफ़ फील्ड होती है। इसे आसान शब्दों में समझाएं तो, डेप्थ ऑफ़ फील्ड से ही लेंस का न्यूनतम और

अधिकतम फोकल पॉइंट निर्धारित होता है। यानी, किरदार कितनी दूरी पर होगा और फोकस में रहेगा, और यह निर्देशक द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे लेंस पर निर्भर करता है।

एक गलत धारणा यह है कि क्लोज-अप शॉट केवल 75mm लेंस से ही लिया जा सकता है और वाइड शॉट के लिए 25mm लेंस ही ज़रूरी है। राज साहब इस बात से सहमत नहीं थे। उनका मानना था कि किसी भी लेंस से कोई भी शॉट लिया जा सकता है; यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप शॉट को कैसा दिखाना चाहते हैं। जब वे बाहर शूटिंग करते थे, तो वे इस तरह से करते थे कि दर्शकों को उस जगह की खूबसूरती दिखाई दे। अगर वे क्लोज-अप लेंस का इस्तेमाल करते, तो बैकग्राउंड धुंधला हो जाता। राज साहब क्लोज-अप शॉट भी कम फोकल लेंथ वाले लेंस से लेते थे ताकि दर्शक बैकग्राउंड का नज़ारा भी देख सकें। उन्हें बहुत सावधानी बरतनी पड़ती थी क्योंकि वाइड लेंस से शॉट खराब हो सकता था।

मानक निर्धारित मापों के अलावा, फोकल लेंथ कई अन्य कारकों पर भी निर्भर करती है जो बदल सकते हैं। अमेरिकन सिनेमैटोग्राफर मैनुअल नामक एक पुस्तिका है, जो सभी सिनेमैटोग्राफर्स (डीओपी) के लिए एक मार्गदर्शक की तरह है। इसमें गणितीय गणना के आधार पर प्रत्येक लेंस की निर्धारित फोकल लेंथ दी गई है। हालांकि, फोकल लेंथ को दो चीजों के आधार पर बदला जा सकता है। पहली चीज है फिल्म नेगेटिव की एएसए रेटिंग। एएसए जितना अधिक होगा, फोकल लेंथ में उतनी ही अधिक गुंजाइश होगी। दूसरी चीज जिस पर फोकल लेंथ निर्भर करती है, वह है एफ-स्टॉप। एफ-स्टॉप एक गणितीय गणना है जो यह बताती है कि लेंस के माध्यम से फिल्म नेगेटिव द्वारा कितनी रोशनी अवशोषित की जा रही है। आने वाली रोशनी की मात्रा के आधार पर फोकस की गहराई को भी बदला जा सकता है, और इसके लिए एफ-स्टॉप को बदलना आवश्यक है। एफ-स्टॉप की खास बात यह है कि इसे बदला तो जा सकता है, लेकिन वर्तमान संख्या और अगली संख्या के बीच का अंतर अधिक होता है। मान लीजिए कि किसी लेंस का एफ-स्टॉप 2.4 है, तो अगला एफ-स्टॉप जो यह प्राप्त कर सकता है वह 4 होगा। 4 के बाद, अगला एफ-स्टॉप 11 होगा। वे गणितीय अनुक्रम में नहीं बदलते हैं।

अपनी पसंदीदा फोकल लेंथ के लिए उपयुक्त एफ-स्टॉप जानने के लिए आप एएससी (अमेरिकन सोसाइटी ऑफ सिनेमैटोग्राफर्स) मैनुअल देख सकते हैं। आमतौर पर लोग फुल

ओपन अपर्चर (लगभग 2.4) पर शूट करना पसंद करते हैं, ताकि उन्हें अधिक डेप्थ ऑफ फील्ड मिल सके। यदि फ्रेम में अधिक डेप्थ की आवश्यकता हो, तो वे एफ-स्टॉप को 4 तक बढ़ा सकते हैं। डेप्थ ऑफ फील्ड की आवश्यकता के अनुसार एफ-स्टॉप को बढ़ाना होगा। उदाहरण के लिए, यदि किसी लेंस के लिए कैमरा से सबसे नज़दीकी दूरी 2 फीट और सबसे दूर की दूरी 8 फीट या 10 फीट हो, तो उस लेंस के लिए आप मैनुअल देख सकते हैं, जिसमें आपको सही एफ-स्टॉप बताया जाएगा। राज साहब को अलग-अलग शॉट्स के लिए लेंस और अलग-अलग डेप्थ के साथ प्रयोग करना बहुत पसंद था। इसीलिए एएससी मैनुअल उनके लिए बहुत महत्वपूर्ण था।

राज साहब को यह खास तकनीक बहुत पसंद थी जिसे वे 'पैन-फोकस शॉट' कहते थे। इस शॉट में एक किरदार कैमरे के बिल्कुल करीब होता था और दूसरा किरदार काफी दूरी पर। नाटकीय प्रभाव पैदा करने के लिए उन्हें दोनों किरदारों को शार्प फोकस में रखना होता था। चूंकि एफ-स्टॉप सामान्य से अलग होता था, इसलिए लाइटिंग में कई बार घंटों लग जाते थे।

मुझे फिल्म 'श्री 420' का वो दृश्य याद है जब वो ताश खेलने के बाद नरगिस जी से मिलने आता है। उसके हाथ में पैसे हैं और वो नशे में है। उस दृश्य में, वो नरगिस से काफी दूर है और उसका पूरा शरीर कैमरे के सामने है, जबकि नरगिस कैमरे के बिल्कुल करीब है और उसका क्लोज-अप शॉट है – यही तो पैन-फोकस शॉट है।

बॉबी में भी ऐसा ही एक दृश्य था; वह मशहूर सीन जब प्राण साहब ने प्रेम नाथ जी को अपने घर बुलाया है। दोनों बात कर रहे हैं और प्राण साहब प्रेम नाथ जी पर समाज के निचले तबके से होने का आरोप लगा रहे हैं और कह रहे हैं कि वे कभी उनके बराबर नहीं हो पाएंगे। प्रेम नाथ जी कैमरे के सामने बहुत करीब से दिख रहे हैं और प्राण साहब काफी दूर खड़े हैं। राज साहब ने ऐसा इसलिए किया ताकि प्राण साहब को प्रेम नाथ जी के मुकाबले बहुत ही खोखला दिखाया जा सके। इस दृश्य से प्रेम नाथ जी की खोखलीपन और उनके चेहरे पर दिख रही पीड़ा दोनों ही दर्शकों को बखूबी समझ में आ गईं। ऐसे दृश्य राज साहब की सोच के अनुसार ही फिल्माए गए थे।

जैसा कि पहले बताया गया है, राज साहब का दृढ़ विश्वास था कि हम एक चलचित्र बना रहे हैं और उसमें गति होनी चाहिए! या तो पात्र गतिमान हों या कैमरा गतिमान हो, या जब पात्रों और

कैमरे की गति स्थिर रखनी हो, तो पात्रों के भाव – आँखों की गति, होंठों की गति आदि – को शामिल किया जाना चाहिए, जिससे पूरी कहानी जीवंत बनी रहती है। वे कहते थे, 'यदि गति नहीं होनी है, तो हमें चलचित्र नहीं बल्कि किताब लिखनी चाहिए।' हालाँकि, जैसा कि उन्होंने सही कहा, कॉमिक पुस्तकों में यह खूबी होती है – भले ही वे अलग-अलग फ्रेम हों, लेकिन कभी-कभी जब कोई उन्हें पढ़ता है, तो उसे ऐसा महसूस होता है कि पात्र फ्रेम के साथ-साथ गतिमान हैं।

राज साहब गति की इस भावना और ट्रॉली के उपयोग से भलीभांति परिचित थे। उन्होंने कहा, 'ट्रॉली पर चलते कैमरे को संभालना एक निर्देशक की सबसे बड़ी जिम्मेदारी होती है, क्योंकि ट्रॉली शॉट दर्शकों के दृश्य परिप्रेक्ष्य को बदल देता है।'

राज साहब ज़ूम शॉट का इस्तेमाल बहुत कम करते थे और एक बात पर वे बिल्कुल स्पष्ट थे कि ज़ूम और ट्रॉली शॉट दो अलग-अलग चीज़ें हैं। ज़ूम शॉट में किरदार दर्शकों के करीब आता है, पूरी कहानी दर्शकों के नज़रिए से सुनाई जाती है। वहीं दूसरी ओर, ट्रॉली शॉट में निर्देशक पूरे दर्शकों को किरदार के करीब ले जाता है, जिससे दर्शकों का अनुभव और भी बेहतर हो जाता है। ट्रॉली शॉट में आप अभिनेताओं की ओर बढ़ते हैं, जिससे किसी एक चीज़ पर ज़ोर पड़ता है। ज़ूम शॉट में किरदार दर्शकों की ओर खिंचा चला आता है, इसलिए ज़ोर किरदार पर ही रहता है।

इसीलिए मैंने ट्रॉली के कई शॉट्स लिए; मुझे नहीं पता कि मैंने ऐसा किया या नहीं। दरअसल, सनी देओल, अनिल कपूर और कई अन्य अभिनेता मेरा मज़ाक उड़ाते थे, 'अरे, एक मिनिएचर शूट करना है, एक ट्रॉली लगाओ, राहुल के लिए एक ट्रॉली भी चाहिए होगी।' वे ऐसा इसलिए करते थे क्योंकि शायद उन्हें ट्रॉली का इस्तेमाल समझ नहीं आता था!

कभी-कभी तो तकनीशियन भी मुझसे परेशान हो जाते थे, एक बहुत वरिष्ठ साउंड इंजीनियर ने एक बार मुझसे कहा, 'क्या, जब देखो तुम ट्रॉली लगाते हो!'

मैंने जवाब दिया, 'अरे भाई, ये मेरी फिल्म है। आपको इस बात पर गुस्सा क्यों आता है?' लेकिन उन्हें हमेशा गुस्सा आता था, भले ही मैंने अपने गुरु से गति का महत्व सीखा था।

ट्रॉली वाले शॉट में अभिनेता की ज़िम्मेदारी भी बढ़ जाती है, क्योंकि जब ट्रॉली चलने लगती है, तो अभिनेता कहीं भी गलती नहीं कर सकता, क्योंकि इससे दर्शक उसके और करीब आ

जाते हैं। मुझे लगता है कि यही एक अच्छे अभिनेता की निशानी है, जो इन सब बातों को बखूबी संभाल सकता है। दरअसल, ट्रॉली कब और कहाँ से शुरू और खत्म होती है, यह निर्देशक तय करता है और उन्हें इसे एक खास तरीके से शूट करवाना होता है।

मुझे याद है जब मैं चिंटू के साथ 'कुछ खट्टी कुछ मीठी' की शूटिंग कर रहा था, तब मुझे कैमरे को उनके क्लोज-अप शॉट में धीरे-धीरे आगे बढ़ाना था, जब उन्हें सोफे पर बैठे हुए डायलॉग बोलना था। मैंने उनसे कहा कि डायलॉग खत्म होते ही ट्रॉली रुक जाएगी। हमने रिहर्सल की थी, लेकिन आखिर में ट्रॉली को इंसान ही धकेल रहे थे, इसलिए वो हर बार बिल्कुल सही जगह पर नहीं रुक सकती थी। हालांकि, जब हमने वो शॉट लिया, तो सेट पर मौजूद सभी लोग बहुत प्रभावित हुए क्योंकि जैसे ही ट्रॉली उनके करीब आ रही थी, ऋषि कपूर, जो निस्संदेह एक महान अभिनेता थे, ने डायलॉग की गति को इस तरह से ढाल लिया कि ट्रॉली का रुकना और उनका डायलॉग खत्म होना बिल्कुल एक ही समय पर हुआ। वो ठीक वही कर रहे थे जो निर्देशक चाहते थे। यह प्रशिक्षण उन्हें राज कपूर से भी मिला था।

ट्रॉली के साथ-साथ एक क्रेन भी होती थी जो कैमरे को ऊपर-नीचे करती थी। उन दिनों फिल्मों पर आधारित 'स्क्रीन' नाम की एक साप्ताहिक पत्रिका आती थी। हर निर्देशक चाहता था कि क्रेन पर बैठे हुए उसकी एक तस्वीर उसमें छपे; क्रेन का इस्तेमाल करना उनके लिए रुतबे की बात थी। मुझे तो क्रेन से बहुत डर लगता था क्योंकि अचानक 20-25 फीट ऊपर जाना और पैर हवा में लटकना आम बात थी। हमने क्रेन से होने वाली दुर्घटनाओं के बारे में भी सुना था और मुझे पता चला कि क्रेन का इस्तेमाल करना हमेशा ज़रूरी नहीं होता। हम राज साहब के साथ बाहर शूटिंग करने जाते थे और कभी क्रेन हमारे साथ नहीं जाती थी। लोग कहते थे, 'अरे, तुम साथ में क्रेन लेकर नहीं आए?'

मैं जवाब देता, 'अरे बाबा, अगर बॉस बोलते हैं कि नहीं ले जाना है, तो हमें अतिरिक्त सामान क्यों ले जाना चाहिए?'

राज साहब शूटिंग के जिस दूसरे पहलू पर विशेष ध्यान देते थे, वो थे सेट। वो किरदारों, कपड़ों, सेट और बैकड्रॉप जैसी छोटी-छोटी बातों को लेकर बेहद सतर्क रहते थे और हर चीज़ को एकदम सटीक बनाना चाहते थे। उन्हें जिस तरह का दृश्य वातावरण चाहिए होता था, उसके अनुसार वो राधू साहब से रंगों और टोन पर चर्चा करते थे। राज साहब अपने सेट का

माहौल बड़ी कुशलता से तैयार करते थे। उस दौर में फिल्में लोकेशन पर नहीं, बल्कि सेट पर ही शूट होती थीं। अगर कोई गली भी होती, तो भी उसका सेट होता था और राज साहब हर छोटी-छोटी बात पर बहुत ध्यान देते थे।

उनकी फिल्म 'श्री 420' को याद कीजिए, तो जिस गली में नरगिस जी और वे 'प्यार हुआ इकरार हुआ' गाने के दौरान चल रहे हैं, वह पूरी तरह से एक सेट है। उन्होंने कला निर्देशक अचरेकर साहब से कुछ छोटी-छोटी बारीकियां जोड़ी थीं, जैसे कि सेट पर गुजरती हुई बिजली की ट्रेन असल में एक छोटी ट्रेन थी, जिसे सेट से थोड़ी दूरी पर जोड़ा गया था। चूंकि यह रात का दृश्य था, इसलिए इसे ज्यादातर ढक दिया गया था, लेकिन यह सब बारीकियों के लिए किया गया था।

फिर, बॉबी फिल्म में भी, हालांकि इसकी शूटिंग लोकेशन पर हुई थी, प्रेम नाथ जी के घर के बाहर का छोटा सा मछली पकड़ने का इलाका एक सेट था और पृष्ठभूमि में समुद्र को चित्रित किया गया था। लहरों का एहसास दिलाने के लिए, लकड़ी का एक उपकरण था जिस पर लहरों के उतार-चढ़ाव को चित्रित किया गया था, जिसे हाथ से घुमाया जाता था। इस तरह, शॉट में दर्शक इसे पीछे देख सकते हैं। यह थोड़ा अजीब था, लेकिन उस माहौल को बनाने के लिए कि ये सब चीजें वहां मौजूद थीं, इसे शामिल किया गया था।

उन्होंने अपने दृश्यों में बहुत बारीकी डाली। राज साहब उन गिने-चुने फिल्म निर्माताओं में से थे जिनके घर के सेट में फर्श भी होता था। कुछ समय पहले तक लोग सेट पर फर्श नहीं बिछाते थे, वे रबर की चटाई या लिनोलियम के टुकड़े इस्तेमाल करते थे और इसकी परवाह नहीं करते थे। राज साहब के सेट में हमेशा फर्श होता था, क्योंकि उन्हें पता था कि यह कभी न कभी दिखेगा ही, और इससे पूरे माहौल और वातावरण में निखार आएगा।

कभी-कभी उन्हें छत की आवश्यकता होती थी और मुझे एहसास हुआ कि इससे सेट पर रोशनी की समस्या हो सकती है, इसलिए मैंने उनसे पूछा, 'हमें कोने से कोने तक छत की क्या ज़रूरत है? क्या यह दिखाई देगी?' उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा, 'लो, तुम फिर से अपने बेवकूफी भरे सवाल पूछ रहे हो। अगर मैं छत पर ज़ोर दे रहा हूँ, तो ज़ाहिर है कि यह बारिश को रोकने के लिए नहीं है, शूटिंग के दौरान यह दिखाई देगी।'

मैंने एक और मूर्खतापूर्ण सवाल पूछ लिया था, लेकिन इसी तरह मैंने सीखा।

ये पहलू उनकी शूटिंग की तैयारी की प्रक्रिया में सहायक थे। लेकिन असली जादू तो शूटिंग के दौरान ही होता था। राज साहब को काम करते देखना मेरे लिए बेहद आनंददायक होता था, क्योंकि न केवल मुझे उनसे सीखने को मिलता था, बल्कि उन्हें उन कलाकारों के अभिनय को जीवंत करते देखना भी संभव होता था। यह देखना अद्‌भुत था कि कैसे वे अकेले ही पूरी टीम, अभिनेताओं और कैमरे को संभालते थे! अब चलिए, मैं आपको सेट पर एक आम दिन के बारे में बताता हूँ।

पाठ 3: गोलीबारी

पूरी फिल्म दृश्यों में विभाजित है, और प्रत्येक दृश्य में कई अलग-अलग शॉट शामिल हैं। राज साहब न केवल पूरी फिल्म को 'देखते' थे, बल्कि दृश्यों को भी 'समझते' थे। यही उनकी खूबी थी।

किसी दृश्य की शूटिंग करते समय राज साहब एक बात पर यकीन रखते थे – हर दृश्य अपने आप में एक कहानी है। हर दृश्य की संरचना फिल्म की तरह तीन भागों में बंटी होती है, यानी हर दृश्य की शुरुआत, मध्य और अंत होता है। निर्देशकों के शूटिंग के अपने-अपने तरीके होते हैं, कुछ लोग स्टोरीबोर्ड बनाते हैं, जिसमें निर्देशक या स्टोरीबोर्ड आर्टिस्ट सभी शॉट्स को तोड़कर स्केच करते हैं। राज साहब ने कभी शॉट्स को तोड़कर नहीं दिखाया; उनका तरीका काफी अनोखा था। उनका मानना था कि किसी दृश्य का सबसे मुश्किल पहलू पहला शॉट होता है। पहले शॉट को सही जगह पर लेने के लिए दर्शकों को कई बातें समझानी पड़ती थीं, ताकि दृश्य की नींव रखी जा सके।

उनका मानना था कि किसी दृश्य की शुरुआत में तीन पहलुओं को स्थापित करना आवश्यक है। पहला है स्थान; दृश्य कहाँ पर आधारित है? यह बताया नहीं जाता, बल्कि दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए, एक संवाद, 'अरे, हम रतन जी के घर आ गए?' लेकिन यह संवाद निरर्थक साबित होता है क्योंकि इसे बोलने की क्या आवश्यकता है? दर्शकों को यह समझने में सक्षम होना चाहिए कि पात्र एक स्थान पर है, और यह दृश्य की शुरुआत में ही दिखाया जाना चाहिए। दूसरा पहलू है यह जानना कि दृश्य में कौन-कौन से पात्र मौजूद हैं। निर्देशकों को इसे एक या दो शॉट्स में स्थापित करना चाहिए; दो शॉट्स के भीतर, उन्हें यह स्पष्ट करना होगा कि दृश्य में कौन-कौन से पात्र हैं। उनका यह भी मानना था कि यदि किसी दृश्य में तीन प्रमुख पात्र हैं, लेकिन शॉट के लिए केवल दो अभिनेताओं की आवश्यकता है क्योंकि वे ही शॉट में योगदान दे रहे हैं, तो तीसरे अभिनेता को वहाँ खड़े रहने और कुछ न करने देने के बजाय हटा देना चाहिए। उन्होंने कहा, 'यदि वे शॉट में हैं तो दर्शक उनसे कुछ बोलने और शॉट में योगदान देने की अपेक्षा करते हैं।' तीसरा और अंतिम पहलू है पात्रों का स्थान निर्धारण। कौन कहाँ होगा? किरदारों का अपनी अंतिम स्थिति तक पहुंचना पूरी तरह से इस

बात पर निर्भर करता था कि राज साहब उस दृश्य को किस तरह से प्रस्तुत करना चाहते थे। उन्हें यह कल्पना करनी पड़ती थी कि कौन बाईं ओर है और कौन दाईं ओर। उनके मन में ये बातें स्पष्ट थीं और वे जानते थे कि उन्हें विशेष स्थानों पर क्यों रखा जा रहा है।

जब राज साहब शॉट की तैयारी कर रहे होते थे, तो उनके मन में यह बात स्पष्ट हो जाती थी कि शॉट कैसे फिल्माया जाना चाहिए। यह एक बहुत अच्छी आदत थी; वास्तव में, मैंने इस आदत को इतना अपना लिया था कि मैं बिना किसी सामग्री को देखे ही स्क्रिप्ट सुना देता था। उनके साथ काम करते हुए ही मेरी यह आदत बनी क्योंकि जब वे मुझसे किसी दृश्य के संवाद सुनाने को कहते थे, तो हर बार कागज़ों से खेलने के बजाय संवाद सुनाने में निपुण होना बेहतर होता था और राज साहब इसकी सराहना करते थे। वे मुझसे या किसी अन्य सहायक से अभिनेताओं को स्क्रिप्ट सुनाने के लिए भी कहते थे। हालाँकि उन्हें ऐसा करने की आवश्यकता नहीं थी और आमतौर पर कोई अभिनेता उनसे ऐसा करने के लिए नहीं कहता था, लेकिन वे अभिनेताओं को अपने दृश्य और संवाद के बारे में सोचने और तैयारी करने का समय देना चाहते थे।

शूटिंग शुरू होने से पहले, राज साहब सेट या लोकेशन का जायजा लेते और मुझसे या किसी अन्य सहायक से संवाद सुनाने को कहते। इस तरह, जब मैं संवाद सुना रहा होता, तो वह ध्यान से सुनते और उनकी निगाहें सीधे मेरे चेहरे पर टिकी रहतीं।

मुझे इस बात की जिज्ञासा थी, इसलिए एक दिन मैंने उससे पूछा, 'तुम मुझे घूरते क्यों रहते हो?'

क्योंकि दृश्य पढ़ते समय आपके मन में कुछ चल रहा होता है, जैसे कि आप दृश्य की व्याख्या कैसे कर रहे हैं या वह आपके मन में कैसे चल रहा है। वर्णन करते समय यह आपके चेहरे पर दिखाई देता है। जिस तरह से आप संवाद सुनाते हैं, उससे मुझे पता चलता है कि आप इसे किस नजरिए से देख रहे हैं, आप किसी एक बिंदु पर जोर देना चाहते हैं या नहीं। हालांकि यह निर्णय लेना मेरा काम है, लेकिन मुझे इस बात का अंदाजा हो जाता है कि आपने इस दृश्य को किस नजरिए से देखा है।

जब मैं दृश्य सुनाना समाप्त कर देता, तो राज साहब सेट पर चारों ओर देखते और फिर खड़े होकर कहते, 'ठीक है, इसे फिर से सुनाओ।' जब मैं दूसरी बार सुनाता, तो वे सेट या लोकेशन

पर चारों ओर देख रहे होते और फिर कहते, 'एक बार फिर सुना दो।' जब मैं उन्हें तीसरी बार सुनाता, तो वे लोकेशन पर इधर-उधर घूम रहे होते।

यह सिलसिला पहले शॉट से ही शुरू हो जाता था; वह एक जगह से दूसरी जगह जाते और फिर कहते, 'ठीक है!', जैसे उन्होंने अपना मन बना लिया हो, और राधू साहब को शॉट समझाते हुए कहते, 'यह शॉट यहाँ से शुरू होता है, अभिनेता [x] स्थान पर खड़े हैं।' उदाहरण के लिए, वह कहते, 'चिंटू यहाँ से हिलेगा, प्रेम नाथ यहाँ बैठेगा और डिंपल यहाँ बैठेगी। फिर चिंटू डिंपल के पास जाएगा और इस तरह पहला शॉट लिया जाएगा।'

फिर वो हमें पूरे दृश्य की अपनी कल्पना के बारे में बताने लगते। कहते, 'ठीक है, इसके बाद कहीं मैं इस शॉट पर आता हूँ और यहाँ एक क्लोज-अप है और...' ये सिलसिला दृश्य के अंत तक चलता रहता। वो राधू साहब के साथ बेहतरीन तालमेल से काम करते थे। जब तक वो शॉट और पोज़िशन का ब्यौरा पूरा करते, राधू साहब उस शॉट के लिए उसी हिसाब से 'लाइटिंग' शुरू कर चुके होते।

राज साहब ने एक बार टिप्पणी की थी, 'लोग अलग-अलग तरीकों से शूटिंग करते हैं। मैं इस पर टिप्पणी नहीं कर रहा कि क्या सही है और क्या गलत। मैं केवल वही बता सकता हूँ जो मुझे सही लगता है। आमतौर पर निर्देशक सभी शॉट्स एक ही कोण से लेना चाहते हैं, ताकि लाइट की स्थिति बार-बार न बदलनी पड़े। वे कैमरे के एक अक्ष का अनुसरण करते हैं, एक दृश्य के सभी शॉट्स उसी अक्ष से लेते हैं। फिर वे दूसरे अक्ष पर जाते हैं और नई कैमरा स्थिति के अनुसार प्रकाश व्यवस्था करते हैं। शूटिंग का यह गैर-रेखीय तरीका निस्संदेह उनका बहुत समय बचाएगा, लेकिन मेरा दृढ़ विश्वास है कि काम करने की यह प्रणाली निर्देशक की रचनात्मकता से समझौता करती है।'

इसलिए, राज साहब पहले दृश्य की मानसिक रूपरेखा तैयार करते और पहले भाग की शूटिंग लगभग एक सीधी रेखा में करते। चूंकि इसमें हमेशा एक मोड़ होता था, इसलिए राज साहब अभिनेताओं को यह बताने का अवसर देते थे कि अगले भाग में उनका अभिनय किस प्रकार आगे बढ़ना चाहिए। वे उनके सुझावों को परिष्कृत करते और उनके अभिनय के आधार पर दूसरे भाग की एक नई रूपरेखा तैयार करते। अब यही प्रक्रिया दोहराई जाती,

ताकि दृश्य अपने अंजाम तक पहुंचे और इसके लिए वे फिर से लगभग एक सीधी रेखा वाली प्रणाली अपनाते।

प्रत्येक एक्ट के अंत में दृश्य को अपनी इच्छानुसार ढालने की छूट न केवल अभिनेताओं को बल्कि सभी तकनीशियनों को भी दी गई थी। राज साहब में एक खास गुण था कि वे सबकी बात सुनते थे, 'आप मुझे जो चाहें बताइए, लेकिन सुनना है या नहीं, यह मेरा फैसला है।' यही गुण उन्हें दूसरों से अलग बनाता था।

शॉट लेते समय वह सभी पहलुओं पर ध्यान देता था, जैसे कि जूनियर कलाकारों की स्थिति, विशेष प्रॉप्स कहाँ रखे जाएंगे, और दृश्य को बेहतर बनाने के लिए विभिन्न कलाकृतियों को कैसे जोड़ा जाएगा।

आजकल ज्यादातर निर्देशक एक ही शॉट को कई कोणों से बार-बार शूट करते हैं और फिर संपादक को सामग्री देते हैं ताकि वह तय कर सके कि किस कोण का उपयोग किया जाना चाहिए और उसे अन्य कोणों के साथ कैसे जोड़ा जाना चाहिए। राज साहब के लिए यह बिल्कुल अस्वीकार्य था। उन्होंने हमें सिखाया कि आपको न केवल यह तय करना होता है कि आपका शॉट कहां से शुरू होता है और कहां खत्म होता है, बल्कि उस विशेष शॉट के लिए सबसे उपयुक्त कोण भी तय करना होता है। 'आप यूं ही मनमाने ढंग से सभी कोणों से शॉट नहीं ले सकते! जब आपने दृश्य को पहले ही अपने मन में देख लिया है, तो आप अचानक यह कैसे कह सकते हैं कि चलो इसे इस कोण से भी शूट कर लेते हैं! यह दर्शाता है कि आपको अपने दृष्टिकोण पर भरोसा नहीं है।'

कुछ खास मौकों को छोड़कर, जब राज साहब एडिटिंग में क्यू को बढ़ाने के लिए कह सकते हैं, उनके टेक तय होते थे; एक डायलॉग से शुरू होकर दूसरे डायलॉग पर खत्म होता था और इसी एंगल से शूट करना होता था। और यह कभी नहीं बदलता था। कैमरामैन भी सिर्फ एक कैमरे से शूटिंग करने में ज्यादा सहज महसूस करते हैं ताकि लाइटिंग सिर्फ उसी एक कैमरे के हिसाब से हो सके। कई कैमरों से लाइटिंग में बहुत ज्यादा समझौता करना पड़ता है क्योंकि एक कैमरे के दूसरे कैमरे में दिखने की काफी संभावना रहती है। इससे लाइट की सही जगह पर लगाने में दिक्कत आ सकती है।

कई निर्देशक पैचवर्क करते हैं, जिसमें सीन शूट हो जाने के बाद उसमें एक क्लोज-अप या कोई और शॉट जोड़कर उसे बेहतर बनाना होता है। राज साहब ऐसा कभी नहीं करते थे। वे कभी-कभी सीन में किसी किरदार का एक अतिरिक्त साइलेंट क्लोज-अप शॉट ले लेते थे। उनके अनुसार, यह उनकी सुरक्षा का उपाय था, लेकिन वह साइलेंट क्लोज-अप शॉट अनजाने में ही सीन में शामिल हो जाता था। अगर वे पैचवर्क करते, तो इसका मतलब होता कि उन्हें पूरा नया सीन शूट करना पड़ता, न कि सिर्फ उसमें पैच जोड़ने से काम चल जाता।

बॉबी फिल्म के एक सीन में कुछ ऐसे पल थे जब राज साहब अभिनेताओं की हरकतों को बिल्कुल वैसा ही करने पर ज़ोर देते थे जैसा उन्होंने सोचा था। वो कभी-कभी मुझसे कहते थे, 'राहुल, ये जो सीन कल शूट करेंगे ना, मुझे वो पल चाहिए जिसमें चिंटू डिंपल का हाथ इस तरह पकड़े।' वो उस पल के बारे में पूरी बारीकी से सोचते थे; हालांकि, वो उसे कहाँ इस्तेमाल करेंगे, ये किसी और को पता नहीं होता था। एक बार सीन शूट हो जाने पर, वो कहते, 'ठीक है, हम उस पल तक पहुँच गए हैं।' तब वो बहुत खुश होते थे क्योंकि उन्हें वो पल ठीक उसी तरह मिल जाता था जैसा उन्होंने कल्पना की थी।

गति एक ऐसी चीज थी जिसका वे बहुत अधिक और बड़ी समझदारी से इस्तेमाल करते थे, और यही बात मैंने उनसे सीखी। राज साहब की एक अनोखी तकनीक थी, 'ध्यान भटकाने के लिए गति या ध्वनि का प्रयोग करना।' किसी दृश्य में, वे चाहते थे कि ध्वनि से ही स्थान का पता चले; उस स्थान का माहौल कैसा है? मान लीजिए कि वे किसी खेत में शूटिंग कर रहे हैं; ध्वनि और गति का उपयोग यह बताने के लिए किया जाता था कि दृश्य खेत के किस हिस्से में हो रहा है। फिर, अगला दृश्य कहीं भी हो सकता था, यह कालानुक्रमिक क्रम में होना जरूरी नहीं था, यह 20 दृश्यों के बाद का दृश्य भी हो सकता था। इसलिए, उन्हें फिर से शुरू करना पड़ता था और यह एक ऐसी चीज है जो मुझे निर्देशक के रूप में सीखनी पड़ी। आमतौर पर, निर्देशकों के पास पूरी पटकथा लिखी होती है, लेकिन राज साहब के पास नहीं थी। जैनेंद्र जैन संवाद लिखते थे, लेकिन सटीक दृश्य, गति कैसी होगी, यह सब राज साहब के दिमाग में होता था।

संगम में एक ऐसा दृश्य था जिसने मुझे सचमुच झकझोर दिया। राज साहब ने जब गलतफहमी वाला सीन शुरू किया, तो उनका पूरा ध्यान तीन मुख्य किरदारों के बीच बने एक

'त्रिकोण' पर केंद्रित हो गया। त्रिकोण से मेरा मतलब है तीन लोग तीन कोनों में खड़े थे, और त्रिकोण का आभास देने वाला यह संयोजन क्लाइमेक्स तक बरकरार रहा। शॉट्स की एक श्रृंखला जिसे हम 'त्रिकोणीय शॉट' कहते थे। मेरे विचार से संगम का क्लाइमेक्स अब तक फिल्माए गए सबसे शानदार दृश्यों में से एक है।

अगर राज साहब कमरे में किसी स्थान पर होते, तो वैजयंतीमाला जी उनके ठीक सामने तिरछे खड़ी होतीं और राजेंद्र कुमार सर उनके ठीक सामने तिरछे खड़े होते, जिससे एक त्रिभुज बनता था। तीनों पूरे दृश्य में इसी त्रिभुजाकार आकृति में खड़े रहे। बोलते समय, अगर वैजयंतीमाला जी राज साहब की ओर बढ़तीं, तो वे जवाब देते और उनसे दूर चले जाते। यह त्रिभुजाकार आकृति को बनाए रखने के लिए किया गया था और उन्होंने इसे लगभग नौ मिनट तक जारी रखा! वे नौ मिनट वाकई अद्भुत थे; वे शानदार थे और तब से मेरे मन में बसे हुए हैं। यह वह महत्व था जो वे गति और स्थिति को देते थे।

दृश्य प्रस्तुति का अभिन्न अंग अभिनेता होता है, जिसकी गति, प्रतिक्रिया और अभिव्यक्ति निर्देशक द्वारा नियंत्रित होती है। इस पहलू पर, जिस पर राज साहब का पूर्ण नियंत्रण था, और जिसके बारे में विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता है।

‘

पाठ 4: अभिनेता और उनके प्रदर्शन

'सबसे खतरनाक चीज मेकअप है। जिस क्षण कोई अभिनेता, जिसमें मैं भी शामिल हूं, अपने चेहरे पर मेकअप लगाता है, हम खुद को डॉ. जेकिल से मिस्टर हाइड में बदल लेते हैं; "सौम्य" से "अहंकारी जानवर" में बदल जाते हैं, जो मानता है कि वह श्रेष्ठ प्राणी है और बाकी सब उससे नीचे हैं।'

उन्होंने आगे कहा, 'फिल्म में अभिनय करने के बावजूद, मैंने भारी भरकम रकम की मांग की और मुझे वह मिली भी, जबकि मेरा मानना है कि अभिनेताओं को इतनी रकम नहीं मिलनी चाहिए! अभिनेताओं को यह भी लगता है कि फिल्म को किस तरह पेश किया जाना चाहिए, इस बारे में वे निर्देशक से ज्यादा जानते हैं। यहां तक कि मैंने निर्देशक राज कपूर और अभिनेता राज कपूर के बीच कई बार बहस भी की है। हालांकि, सही मायने में और हमेशा की तरह, जीत निर्देशक की ही होती है!'

उनके अनुसार, यह धारणा गलत थी कि कोई भी अच्छा निर्देशक किसी को भी 'अभिनय' करवा सकता है। 'निर्देशक कोई जादूगर नहीं होता जो जादू की छड़ी घुमाए और कोई भी व्यक्ति अभिनय करने लगे। निर्देशक केवल अभिनेता को उनके अभिनय को सही दिशा देने और चरित्र के अनुरूप बारीकियां जोड़ने में मदद कर सकता है। मूल प्रयास और चरित्र में विश्वास अभिनेता से ही आना चाहिए।'

'जो व्यक्ति बातचीत में माहिर होता है, वह आम तौर पर एक अच्छा अभिनेता भी होता है।' अभिनेता के गुणों के बारे में राज साहब का यही नज़रिया था। उनका मानना था, 'अभिनय करना कोई आसान काम नहीं है, यह एक बेहद जटिल और कठिन कार्य है। अभिनेता को उस व्यक्ति के गुणों को समझने की क्षमता होनी चाहिए जिसे वह निभाने जा रहा है। अभिनेताओं का दिमाग बहुत तेज़ होना चाहिए; हर शॉट के लिए उन्हें अपनी गति, अपनी सटीक स्थिति का ध्यान रखना होता है, और कुछ शॉट्स में अभिनेता को सिनेमैटोग्राफर के निर्देशानुसार बिल्कुल सही जगह पर जाना होता है। उनके शारीरिक हाव-भाव, हरकतें और स्थितियाँ किसी अन्य अभिनेता को दी गई रोशनी में बाधा नहीं डालनी चाहिए और निर्देशक

के निर्देश के बिना उनके संवाद शॉट में मौजूद अन्य अभिनेताओं के संवादों को प्रभावित नहीं करने चाहिए।'

राज साहब का मानना था कि अभिनेताओं का अभिनय फिल्म का सबसे अहम हिस्सा होता है, क्योंकि वे कहानी कहने का माध्यम होते हैं। उनके मन में किरदार की हर विशेषता गहराई से बसी होती थी। उनका पालन-पोषण, उनके जीवन की परिस्थितियाँ, माता-पिता का प्रभाव, समाज का वर्ग, दूसरों के प्रति प्रेम या घृणा, और जीवन दर्शन। वे अभिनेता को किरदार की बारीकियों को विस्तार से समझाते थे और उनसे अपेक्षा करते थे कि वे उन बारीकियों को याद रखें और उन्हीं के अनुरूप अभिनय करें।

राज साहब, किसी दृश्य की शूटिंग के दौरान, अभिनेता को कुछ हद तक रचनात्मक स्वतंत्रता देना पसंद करते थे, बशर्ते वह उन्हें स्वीकार्य हो। उनका मानना था, 'अभिनेता मूलतः असुरक्षित और स्वार्थी प्राणी होते हैं; जब वे कोई स्क्रिप्ट या दृश्य सुनते हैं, तो वे केवल अपने बारे में सोचते हैं और स्क्रिप्ट के प्रवाह या फिल्म पर अपने अभिनय के प्रभाव की परवाह नहीं करते।' एक अभिनेता को हमेशा अपने किरदार की कहानी और अन्य सभी किरदारों पर उसके प्रभाव, और अंततः स्क्रिप्ट पर भी, को ध्यान में रखना चाहिए।

राज साहब एक शानदार किस्सा सुनाया करते थे। सर लॉरेंस ओलिवियर महानतम अभिनेताओं में से एक थे। उन्होंने डस्टिन हॉफमैन के साथ 'मैराथन मैन' नाम की फिल्म में काम किया था। सर लॉरेंस ओलिवियर ने एक दंत चिकित्सक का किरदार निभाया था, जो एक पूर्व नाज़ी अधिकारी था और द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में भागने से पहले नाज़ियों के लूटे हुए खजाने से कीमती हीरे चुरा लिए थे। डस्टिन हॉफमैन के मृत भाई को पता था कि दंत चिकित्सक ने हीरे कहाँ छिपाए हैं। फिल्म में एक महत्वपूर्ण दृश्य है, जिसमें हॉफमैन को दंत चिकित्सक की कुर्सी पर बांध दिया जाता है और सर लॉरेंस उनसे वह जानकारी निकलवाने की कोशिश करते हैं जो उनके मृत भाई के पास थी। जानकारी निकलवाने की प्रक्रिया रोंगटे खड़े कर देने वाली थी और दर्शकों के रोंगटे खड़े कर देती थी। दंत चिकित्सक ड्रिल से डस्टिन हॉफमैन के दांतों में छेद करके नसें निकालता है और फिर उनमें एक हंसिया जैसी नुकीली चीज घुसाता है!

इसके बाद, इस भयानक यातना के बाद का एक दृश्य फिल्माया जाना था, जिसमें डस्टिन हॉफमैन होश में आते हैं। इसकी तैयारी में, हॉफमैन, जो एक 'मेथड एक्टर' थे, ने खुद को अत्यधिक शारीरिक और मानसिक यातना दी। वे पाँच दिनों तक बिना रोशनी वाले कमरे में रहे और बहुत कम भोजन और पानी पर जीवित रहे। इन प्रयासों से डस्टिन हॉफमैन ने फिल्म में अपने मनचाहे 'रूप' को प्राप्त कर लिया और सेट पर पहुँच गए, लेकिन जैसे ही कैमरा चालू हुआ, वे बेहोश हो गए और उन्हें अस्पताल ले जाना पड़ा। सर लॉरेंस फूलों का गुलदस्ता लेकर उनसे अस्पताल में मिलने गए और कहा, 'बेटे, अगली बार बस 'अभिनय' करना।'
सर लॉरेंस ओलिवियर के इस कथन पर राज साहब पूरी तरह से विश्वास करते थे।
मेथड एक्टिंग में उनका कोई विश्वास नहीं था, वे सहजता में विश्वास करते थे। 'एक अभिनेता वह होता है जो "अभिनय" करता है, न कि वह जो घर जाकर दिनों तक यातना सहते हुए भूमिका के लिए तैयारी करता है। एक अभिनेता वह होता है जो शॉट खत्म होते ही किरदार में ढल सकता है।' राज साहब स्वयं एक सहज अभिनेता थे। उनके अभिनय के दिनों का एक किस्सा दिलीप साहब ने मुझे एक बार सुनाया था। 'आपको पता है, जब मैंने राज कपूर के साथ फिल्म अंदाज़ की थी, तो हमारी शूटिंग सुबह 10 बजे होती थी। मैं सुबह 7 बजे ही सेट पर पहुँच जाता था क्योंकि मैं सीन को पढ़ना, समझना और शॉट तैयार होने तक खुद को उसके लिए तैयार करना चाहता था। राज, जो बूट पॉलिश के लिए रात भर, शाम 7 बजे से सुबह 6 बजे तक शूटिंग करते थे, शूटिंग के बाद स्टूडियो आते और मेकअप रूम में सो जाते थे। फिर, जब शॉट तैयार हो जाता, तो एक सहायक उन्हें जगाता था।' वो उठते, चेहरा धोते और धोते समय असिस्टेंट से कहते कि वो सीन को ज़ोर से पढ़कर सुनाए। वो तैयार हो रहे होते और इस दौरान उन्हें सीन एक-दो बार सुनाया जाता। मुझे लगता था कि एक कलाकार के तौर पर मेरे लिए उन्हें पीछे छोड़ना बहुत आसान होगा। लेकिन जैसे ही वो अभिनय शुरू करते और शॉट पूरा होता, पूरी यूनिट खड़ी होकर उनके लिए ताली बजाती और मेरे लिए कोई ताली नहीं बजाता, जबकि मैंने शॉट की रिहर्सल में बहुत मेहनत की थी। यही फर्क है एक "मेथड एक्टर" और एक "स्पॉन्टेनियस" एक्टर के बीच।
राज साहब के प्रभाव और प्रशिक्षण से चिंटू फिल्म इंडस्ट्री के सबसे कम आंके जाने वाले लेकिन प्रतिभाशाली अभिनेताओं में से एक बन गए। काजोल, संजीव कुमार, शाहरुख खान

और कई अन्य अभिनेताओं की तरह, एक सहज अभिनेत्री हैं। चिंटू और मैं अलग-अलग लोगों के बारे में किस्से साझा करते थे। मैं किसी का नाम नहीं लूंगा, लेकिन कुछ ऐसे अभिनेता थे जो कहते थे, 'ओह, इस खास शॉट को करते समय मैं भावनात्मक रूप से बहुत थक गया था।'
फिर, कुछ लोग कहते हैं, 'ओह, वह स्क्रिप्ट इतनी डरावनी थी कि मैं शाम छह बजे के बाद शूटिंग नहीं करता था क्योंकि यूनिट के लोग बहुत डरे हुए थे!'
एक बार एक अभिनेता ने एक फिल्म में बहरे का किरदार निभाया था और मैंने फिल्म के प्रीमियर पर वह फिल्म देखी थी। वहाँ मैंने उनसे पूछा कि क्या उन्हें बहरे का किरदार निभाना मुश्किल लगा? उन्होंने जवाब दिया, 'जी हाँ, आप जानते हैं, मैं अपने कानों में रुई भर लेता था ताकि मैं किसी की बात न सुन सकूँ और बहरेपन का भाव स्पष्ट हो जाए।' मैंने झट से पलटकर उनसे कहा, 'भगवान का शुक्र है कि आप फिल्म में समलैंगिक का किरदार नहीं निभा रहे हैं!'
एक और अभिनेत्री ने बताया कि वह एक फिल्म में भिखारी का किरदार निभा रही थी और क्लोज-अप शॉट्स के दौरान, वह धूप में नंगे पैर खड़ी रहती थी ताकि गर्मी महसूस करने के साथ उसके चेहरे के भाव सही लगें!
राज साहब का मानना था कि हर अभिनेता की अपनी खूबियाँ और कमियाँ होती हैं। खूबियाँ जन्मजात आदतें होती हैं जिनसे व्यक्ति सहज महसूस करता है, जबकि कमियाँ उनकी कुछ ऐसी असहज आदतें होती हैं जिन्हें वे बदल नहीं सकते। वे कहते थे, 'एक निर्देशक के रूप में, आपको अभिनेता की कमियों को ध्यान में रखते हुए काम करना होता है और यह सुनिश्चित करना होता है कि पर्दे पर वह कमी एक खूबी के रूप में सामने आए।' उनके अनुसार, एक निर्देशक का दायित्व यह देखना है कि अभिनेता किन चीजों से सहज नहीं है और इस तरह से फिल्मांकन करना है कि जब दर्शक प्रदर्शन देखें, तो वे बेहद प्रभावित हों।
राज साहब का अपने अभिनेताओं पर रसपुतिन जैसा दबदबा था; वे उन्हें अपने वश में कर लेते थे और अभिनेता पूरी ईमानदारी और निष्ठा से अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने का प्रयास करते थे। वे अभिनेताओं को छोटी से छोटी बात समझाते थे, जैसे कि उनके हाथ कहाँ हिलने चाहिए या किसी प्रॉप को किस तरह पकड़ना है। साथ ही, अभिनेता को उस विशेष शॉट के लिए तय किए गए भावों का अभ्यास भी करवाते थे। यदि कोई अभिनेता कहता कि उसे राज

साहब द्वारा तय किए गए किसी विशेष हावभाव के साथ संवाद बोलना मुश्किल लग रहा है, तो वे स्वयं उस शॉट को करके दिखाते थे ताकि अभिनेता देख सके कि संवाद और हावभाव एक दूसरे के साथ कैसे मेल खाते हैं, 'अगर मैं कर सकता हूँ, तो तुम भी कर सकते हो।'

इससे मुझे 'मेरा नाम जोकर' की शूटिंग के दौरान की एक घटना याद आ गई, जब राज साहब चाहते थे कि एक अभिनेता ऊपर की ओर जाने वाली सीढ़ियों पर चढ़े, जहाँ ट्रैपीज़ कलाकार खड़े थे, और चढ़ते हुए ही संवाद बोले। अभिनेता ने कहा कि यह उसके लिए संभव नहीं है क्योंकि चढ़ाई बहुत डरावनी थी और साथ ही बोलना भी असंभव था। तो, राज साहब सीधे रस्सी की सीढ़ी पर चढ़ गए और संवाद बोलते हुए चढ़ने लगे। जब अभिनेता तीसरी सीढ़ी पर थे, तो वे दौड़कर उनके पास गए और बोले, 'सर, मैं कर लूँगा, कृपया और ऊपर मत जाइए। मुझे बहुत खेद है कि मैंने पहले ही आपको मना कर दिया था।' राज साहब ने अभिनेता की पीठ थपथपाई और हमारे पास आकर पूछा, 'क्या आप लोगों को सच में लगा था कि मैं चढ़ने वाला हूँ? बिलकुल नहीं, मैं बहुत डरा हुआ था; भगवान का शुक्र है कि अभिनेता ने फैसला किया कि मेरे लिए चढ़ना उचित नहीं होगा।'

प्रेम नाथ जी एक बहुत ही विलक्षण व्यक्ति थे। एक महान अभिनेता होने के बावजूद, वे आत्ममुग्ध थे और मानते थे कि उनका हर शॉट शानदार है और इससे बेहतर नहीं हो सकता। बॉबी फिल्म की शूटिंग के दौरान एक शॉट पूरा होते ही प्रेम नाथ जी भड़क उठे और बोले, 'मैंने कितना शानदार शॉट दिया है! बाकी सभी अभिनेता तो नगर पालिका के हैं!'

राज साहब प्रेम नाथ जी की बात से सहमत थे कि वह एक शानदार शॉट था, लेकिन अचानक उन्होंने मेरी ओर मुड़कर कहा, 'अरे! आपको पसंद नहीं आया, क्यों?' मुझे समझ नहीं आया कि मैं क्या प्रतिक्रिया दूं क्योंकि मैंने कुछ कहा ही नहीं था और प्रेम नाथ जी मुझे ऐसे घूर रहे थे मानो मेरा गला घोंटने को तैयार हों।

राज साहब ने कहा, 'बताइए आपको क्या लगता है समस्या क्या है।' फिर वे मेरे करीब झुके और मुझसे फुसफुसाते हुए बातचीत शुरू कर दी:

‘सर, मैंने ऐसा कभी नहीं कहा!’

'बस चुप रहो और मेरे कान में कुछ भी फुसफुसाओ, ऐसा दिखावा करो जैसे तुम मुझे कुछ समझा रहे हो।'

'सर, प्रेम सर जिस तरह से मुझे देख रहे हैं, वह बेहद डरावना है और मुझे लगता है कि वह मुझे मार ही देंगे!'

इस पूरी बातचीत के दौरान राज साहब के चेहरे पर गंभीर भाव थे और उन्होंने प्रेम नाथ जी की ओर मुड़कर कहा, 'प्रेम, चलिए एक और टेक लेते हैं। राहुल को लगता है कि जब आपने अपनी आखिरी पंक्ति बोली, तो उसमें वो गहराई नहीं थी जो होनी चाहिए थी। हालांकि मैं राहुल से सहमत नहीं हूं, लेकिन चलिए उसे खुश करने के लिए एक और टेक शूट कर लेते हैं।'

'राज, क्या तुम नगरपालिका के सहायक निदेशक की बात सुन रहे हो?'

'अरे प्रेम! वो सीख रहा है और मुझे लगता है कि सीखने का सबसे अच्छा तरीका यही होगा कि जब वो शूटिंग के फुटेज देखेगा और उसे एहसास होगा कि वो कितना गलत था!'

गोली दोबारा चलाई गई, प्रेम नाथ जी ने आखिरी पंक्ति पर जोर दिया और राज साहब ने मेरे कंधे के ऊपर से बंदूक चलाकर अपना मकसद हासिल कर लिया!

राज साहब ने एक और शॉट में यही चाल फिर से चली। प्रेम नाथ जी गुस्से से मेरे पास आए, मेरा कॉलर पकड़कर बोले, 'अरे नगर पालिका, हर बार जब मैं शानदार परफॉर्मेंस देता हूँ, तो तुम्हें किसी न किसी वजह से पसंद नहीं आती। क्यों?' मैं बुरी तरह डर गया था और मुझे लगा कि वो मुझे मारेंगे, लेकिन मेरे पास कोई जवाब नहीं था। प्रेम नाथ जी पूरी तरह से नाराज़ होकर चले गए और राज साहब, बाकी यूनिट के साथ, ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगे।

बॉस ने मुझसे कहा, 'मुझे माफ करना, लेकिन मुझे सही भाव चाहिए था जो मुझे आखिरकार मिल गया। राहुल, तुम्हें पता है, मैं बहुत स्वार्थी निर्देशक हूं।'

राज साहब अपने अभिनेताओं, विशेषकर महिला अभिनेत्रियों के प्रति बहुत ही स्नेही और धैर्यवान थे। उनका मानना था कि सही भावों को उभारने के लिए निर्देशक को अपनी नायिका से प्रेम होना चाहिए, लेकिन कभी-कभी वे उन्हें अपना दृष्टिकोण समझाने के लिए अपरंपरागत तरीके भी अपनाते थे। एक जानी-मानी अभिनेत्री राज साहब के साथ एक फिल्म में काम कर रही थीं; उन दिनों उनका महमूद नाम के एक बेहद सफल अभिनेता के साथ संबंध था। फिल्म में एक दृश्य था जिसमें वह एक किशोर अभिनेता के कमरे में कपड़े बदलते समय घुसती हैं, उसे पीछे से नग्न अवस्था में देखती हैं, चीखती हैं और कमरे से बाहर निकल जाती हैं।

अभिनेत्री को शुरू से ही पता था कि यह दृश्य फिल्म का हिस्सा है, लेकिन अंत में जब इसे फिल्माने का समय आया, तो उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया। राज साहब यह देखकर दंग रह गए कि फिल्म में इतना काम हो जाने के बाद भी वह ऐसा करने से मना कर रही हैं। उन्होंने उन्हें मनाने की पूरी कोशिश की और यहां तक कि उन्हें यह भी समझाया कि वह किशोर लड़का उनके छोटे भाई जैसा है और यह दृश्य दर्शकों को उत्तेजित करने के लिए नहीं है, लेकिन वह अड़ी रहीं और उन्होंने कहा, 'नहीं!'

बॉस ने अचानक कहा, 'क्या तुमने कभी महमूद की गांड नहीं देखी है?' वह महिला चुपचाप बॉस के चेहरे को देखती रही। बॉस आराम से सिगरेट जला रहे थे और मैं, साथ ही आसपास खड़े सभी लोग, अपनी हंसी रोक नहीं पा रहे थे।

महिला उठ खड़ी हुई और बोली, 'मैं शॉट के लिए तैयार हूं, चलिए शुरू करते हैं।' आखिरकार निर्देशक की बात मान ली गई।

जब राज साहब एक साथ अभिनय और निर्देशन कर रहे थे, तब उनमें यह अनूठी क्षमता थी कि वे यह समझ जाते थे कि उनका अभिनय निर्देशक की अपेक्षाओं पर खरा उतरता है या नहीं। जब वे अन्य निर्देशकों के साथ काम करते थे, तब वे निर्देशक की हर बात को ध्यान से सुनते थे और ठीक वैसा ही अभिनय करते थे जैसा अपेक्षित होता था। उनके भीतर का निर्देशक कभी भी निर्देशकों के काम में दखल नहीं देता था।

राज साहब अपनी फिल्म की शूटिंग के दौरान, हर निर्देशक पर बारीकी से ध्यान देते थे, जिसमें अभिनेताओं के हाव-भाव, चेहरे के भाव और चाल-ढाल शामिल थे। वे पृष्ठभूमि में काम कर रहे कनिष्ठ कलाकारों की गतिविधियों, छोटे किरदारों की हरकतों और इन सब का समन्वय करते हुए कभी-कभी तालबद्ध तरीके से मेज पर उंगलियां थपथपाते रहते थे। वे मन ही मन उस खास शॉट के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि संगीत तैयार कर रहे होते थे। वे ताल गिनते, तय करते कि संगीत को कहां तेज करना है और कहां धीमा रखना है, और क्या उन्हें कथन में विराम देना है ताकि संगीत तेज हो सके। वे हमेशा एक कदम आगे की सोचते थे। यह मुझे अगले सबक की ओर ले जाता है, जो है राज कपूर और उनका संगीत।

पाठ 5: राज कपूर का संगीत

राज कपूर के लिए संगीत किसी भी फिल्म का अभिन्न अंग था और फिल्म के दृश्य वर्णन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता था। प्रशिक्षित संगीतकार न होते हुए भी उनमें संगीत की गहरी समझ थी। उन्हें संगीतकार, संगीत रचनाकार या एक कुशल संगीत संचालक कहा जा सकता है। वे अपनी पटकथा में इस तरह परिस्थितियाँ रचते थे कि कोई भी गीत बेमेल न लगे और कहानी को आगे बढ़ाए। उनमें यह सुनिश्चित करने की अनूठी प्रतिभा थी कि उनके संगीत निर्देशक दर्शाए जा रहे वातावरण के अनुरूप सही संगीत तैयार कर रहे हैं। पटकथा सुनते समय, वे अचानक लेखक को वर्णन रोकने का इशारा करते और उनकी निगाहें किसी एक वस्तु पर टिकी होतीं; जब उनसे पूछा जाता कि क्या कोई समस्या है, तो वे जवाब देते, 'देखिए, यह गीत के लिए एकदम सही जगह है।'

जब से वे किसी गाने के लिए स्थिति तय करते थे, तब से उनका मन उस पर काम करने लगता था। कभी-कभी वे मन में रची हुई धुन गुनगुनाते थे और उनकी बेटी रितु पियानो पर उनकी रचना बजाती थी। फिल्म 'मेरा नाम जोकर' का गाना 'जीना यहां मरना यहां' भी उनकी ऐसी ही एक रचना थी।

राज साहब को अपने गानों में अनोखे तत्व शामिल करने की कला आती थी। गीत 'आवारा हूं' में भी ऐसा ही एक तत्व है। गीत के बोल हैं: 'आवारा हूं...आवारा हूं... गर्दिश में हूं, आसमान का तारा हूं।' 'आवारा हूं' के बाद हमेशा दो धुनें बजती हैं, जिन्हें क्लैरिनेट, मिड-फ्लूट और उनके पसंदीदा वाद्य यंत्र, अकॉर्डियन के संयोजन से बजाया जाता है। इस गीत की खासियत यह है कि इसे गुनगुनाने की कोशिश करने वाला कोई भी व्यक्ति इन दो धुनों, 'आवारा हूं, ता तारा तुम...' को गुनगुनाए बिना इसे नहीं गुनगुना सकता।

उनका दृढ़ विश्वास था कि किसी जोशीले गाने की लोकप्रियता का संकेत तब मिलता है जब वह गाना 'नान खटाई बैंड' द्वारा बजाया जाता है, जो भारतीय शादियों में बारातों में बजने वाला पारंपरिक बैंड है। 'नान खटाई बैंड केवल उन्हीं गानों को चुनता है जिनमें त्रिभुज जैसे छोटे वाद्य यंत्र का वादक भी शामिल हो, क्योंकि बैंड उसे उसकी सेवाओं के लिए भुगतान करता है!'

जब मैंने उनके साथ काम करना शुरू किया, 'मेरा नाम जोकर' फिल्म के दौरान, शंकर-जयकिशन संगीत निर्देशक थे। गीत शैलेंद्र जी और हसरत जयपुरी जी ने लिखे थे। राज साहब, शंकर-जयकिशन के साथ महालक्ष्मी स्थित फेमस स्टूडियो के संगीत कक्ष में गीतकारों और राज कपूर की प्रतिष्ठित आवाज मुकेश जी के साथ बैठते थे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था कि गीत हसरत जयपुरी जी ने लिखा है या शैलेंद्र जी ने और मुकेश जी ने गाया है या नहीं, वे सभी राज साहब के मार्गदर्शन में एक प्रतिभाशाली समूह का हिस्सा थे जो मिलकर गीत की रचना करते थे।

मैं उनके साथ संगीत सत्र के लिए संगीत कक्ष में गया और एक ही कमरे में इतने प्रतिभाशाली कलाकारों को देखकर दंग रह गया। मैंने गीत रचना की प्रक्रिया देखी, जिसमें वे आपस में झगड़ते, गाली-गलौज करते और यहाँ तक कि हाथापाई तक कर लेते थे, और यह सब किसी निजी कारण के बिना, केवल एक यादगार गीत बनाने के लिए होता था। वे संगीत के प्रति समर्पित बुद्धिजीवी थे।

फिल्म 'मेरा नाम जोकर' के सर्कस वाले दृश्य के लिए राज साहब रूसी नायिका क्सानिया रियाबिंकिना के साथ एक रोमांटिक गीत चाहते थे (दुर्भाग्यवश फिल्म की लंबाई की सीमा के कारण यह गीत फिल्म में शामिल नहीं हो सका)। गीत की अवधारणा 'दा (रूसी में हां), हां कह दो' शब्दों पर आधारित थी। तुरंत ही शंकर जी और जयकिशन जी ने विभिन्न धुनें गुनगुनाना शुरू कर दिया जो उन्हें लगता था कि स्थिति और गीत के लिए उपयुक्त होंगी। यह सब केवल उन दोनों के बीच ही हुआ, जबकि राज साहब गीतकारों के साथ मुखड़े और अंतरे (छंद) में आवश्यक अवधारणा पर चर्चा कर रहे थे।

अंत में, संगीत निर्देशकों ने कहा कि उन्होंने एक ऐसी धुन तैयार की है जो राज साहब की रोमांटिक भावना के अनुरूप होगी। शंकर जी ने हारमोनियम बजाते हुए, बिना शब्दों के ही वह धुन गाई और मैं लगभग बेहोश हो गया!

The melody had dummy words that were downright obscene, ‘Da haan keh do, ki ch** phat jaye. Da haan keh do, ki l*** ghis jaye.’

Raj Sahab and the others had no adverse reaction to the obscene words and went on to discuss the lyrics for the melody, ‘Yeh jo hissa hai, “ch** phat jaye”,

isko kar do, “dil mil jaye” aur “l*** ghis jaye” ko “gul khil jaye” aise gaa ke sunao.’

इसलिए, शब्दों को तदनुसार बदल दिया गया। प्रतिभाशाली लोगों के उस समूह ने नकली शब्दों पर जरा भी आपत्ति नहीं जताई, बल्कि एक सदाबहार धुन को जन्म देने में तल्लीन हो गए। यह बात आपमें से कुछ लोगों को शायद अनुचित लगे, लेकिन उनके लिए यह विकास की प्रक्रिया थी।

राज साहब का दृढ़ विश्वास था कि कोई गाना तभी कारगर होता है जब वह पटकथा का हिस्सा हो और उसे उचित ढंग से फिल्माया और प्रस्तुत किया जाए। गाने भले ही पार्श्व गायकों द्वारा गाए जाते हों, लेकिन फिल्मांकन के दौरान अभिनेता को गायक की आवाज़ के साथ होंठ मिलाने पड़ते हैं। उनका कहना था कि अभिनेता केवल आवाज़ से होंठ नहीं मिलाते, बल्कि उन्हें सचमुच पूरी ताकत से गाना चाहिए।

कई बार अभिनेता शर्मिंदा हो जाते थे और कहते थे, 'माफ़ कीजिए सर, मैं बहुत बुरा गाता हूँ और बिल्कुल बेसुरा गाता हूँ।'

राज साहब ने अभिनेताओं को समझाते हुए कहा, 'आपकी गायन क्षमता से मुझे कोई लेना-देना नहीं है, लेकिन जब आप वास्तव में गाएंगे तभी कैमरा आपके चेहरे की मांसपेशियों की हलचल और आपके स्वरयंत्रों को गीत गाते हुए देख पाएगा, जिससे प्रदर्शन और भी बेहतर हो जाएगा।'

हमने देखा है और आज भी देखते हैं कि अधिकतर अभिनेता केवल प्लेबैक पर अपने होंठ हिलाते हैं, लेकिन कुशल अभिनेता वास्तव में प्लेबैक के साथ गाते हैं। गाना देखते समय यह अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। हाल ही में, प्लेबैक की सही प्रस्तुति का एक बेहतरीन उदाहरण अनुष्का शर्मा द्वारा फिल्म 'बॉम्बे वेलवेट' में गाया गया गाना था।

किसी गाने की शूटिंग के दौरान राज साहब हमेशा इस बात का ध्यान रखते थे कि कलाकार अपने किरदार से बिल्कुल अलग न दिखें। कई बार हम देखते हैं कि कलाकार का अभिनय उनके द्वारा निभाए जा रहे किरदार से पूरी तरह से मेल नहीं खाता। दरअसल, गाना रिकॉर्ड करने से पहले राज साहब इस बात पर जोर देते थे कि गायक, चाहे वो लता जी हों, मोहम्मद

रफी हों, किशोर कुमार हों, आशा भोसले हों, मुकेश जी हों या उनके साथ काम करने वाले हर पार्श्व गायक, संगीत निर्देशक के घर जाकर धुन सुनें।
इसके बाद वह फिल्म की कहानी, गाने की परिस्थिति, गाना गाने वाले अभिनेता और निभाए जाने वाले किरदार का विवरण विस्तार से समझाते थे।
उन्होंने पार्श्व गायक को गाने को पूरी लगन से गाने के लिए राजी किया और इसलिए उन्होंने अपने अभिनेताओं से भी ऐसा ही करने की अपेक्षा की।
कोरियोग्राफर को तभी फिल्मांकन में शामिल किया जाता था जब गाने में नृत्य की आवश्यकता होती थी। उन्हें स्वयं शास्त्रीय नृत्य का व्यापक ज्ञान था, जो उन्होंने बिना किसी औपचारिक प्रशिक्षण के प्राप्त किया था, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर वे प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य गुरुओं की सहायता लेते थे।

The song, 'Ye pyaar hua, ya kuch aur hua' from Prem Rog was choreographed by Shri Krishan Maharaj. Earlier, in Bobby, the choreography, for the song 'Main shayar to nahin' was assigned to Salome Aaron Kapoor, a renowned dance teacher.

राज साहब का फिल्मों में गाने शामिल करने का दृढ़ विश्वास इस बात से उपजा था कि एक गाना किसी लंबे-चौड़े दृश्य से कहीं अधिक अर्थ व्यक्त कर सकता है। उनमें गीतों को पटकथा में पिरोने की अद्भुत क्षमता थी। वे कभी भी किसी गाने को अनावश्यक तत्व के रूप में उभरने नहीं देते थे। गाने के लिए परिस्थिति का दृश्य से स्वाभाविक जुड़ाव होना आवश्यक था। संगम फिल्म में, गाना 'मैं क्या करूँ राम, मुझे बूढ़ा मिल गया' एक ऐसी स्थिति से स्वाभाविक रूप से निकला है जहाँ पति पेरिस के एक नाइट क्लब में जाना चाहता है, लेकिन पत्नी उसे जाने नहीं देना चाहती और अपने पति को नाइट क्लब जाने से रोकने के लिए, वह खुद अपने होटल के कमरे में एक तरह का नाइट क्लब एक्ट करती है। हनीमून के दौरान एक शरारती गाने के लिए यह एक बेहतरीन परिस्थिति थी।

For Raj Sahab, 'milking' the correct emotion of a situation through a song was a great asset. Jis Desh Mein Ganga Behti Hai had a song, 'Hum bhi hain, tum bhi ho, dono hain aamne samne' in which Pran Sahab, who played the dreaded

dacoit, sings a stanza of the song, ‘Hai aag humare seene mein, hum aag se khelte aaye hain’. It was Raj Kapoor’s way of expressing the emotional turmoil of the character through music.

इसी तरह, संगम में, ‘दोस्त दोस्त ना रहा’ गीत तीन मुख्य पात्रों – सुंदर, राधा और गोपाल – के अंतर्मन की झलक दिखाता है। इसी प्रकार, बॉबी में, ‘घे घे घे घे घे घे रे साहिबा’ गीत का परिवेश प्रेम नाथ जी के मोहल्ले में हो रहे एक विवाह समारोह का है। चिंटू प्रेम नाथ जी को अपने पिता से मिलवाने के लिए अपने घर आमंत्रित करने आया है। समारोह चल रहा है और चिंटू और प्रेम नाथ जी के बीच की बातचीत गीत के साथ सुनाई देती है। प्रेम नाथ जी का अंतिम संवाद उनके गीत, ‘ना चाहूं सोना चंडी, ना मंगुन हीरा मोती’, से सहजता से जुड़ जाता है, जो प्रेम नाथ जी के चरित्र का दर्शन है। यह इस बात का उदाहरण है कि कैसे उस्ताद ने गीत के लिए एक दृश्य को अनुकूलित करके संगीत को कथा में पिरोया।

राज साहब को फिल्म में गानों की संख्या की परवाह नहीं थी। उन्हें तो बस गाने के संदर्भ की चिंता थी। गाने का कहानी से जुड़ाव होना चाहिए था और यही उनके लिए सबसे महत्वपूर्ण था। 'घे घे घे घे घे घे रे साहिबा' और 'झूठ बोले कौवा काटे' दो अलग-अलग गाने थे, लेकिन उन्हें एक साथ पिरोकर एक गाना बना दिया गया। चिंटू और डिंपल द्वारा गाया गया 'झूठ बोले कौवा काटे' चिंटू के पिता के निमंत्रण पर युवा प्रेमियों की खुशी और उत्साह का ही विस्तार था। इस प्रकार, दोनों गाने एक साथ जुड़कर परिस्थिति के अनुरूप बन गए और इससे दर्शकों को कोई परेशानी नहीं हुई और न ही उन्होंने गाने के बहुत लंबे होने की शिकायत की।

I had heard the words ‘Jhooth bole kauwa kaate’ from him in 1968, the time I joined him as an assistant. He had come home for dinner and at that time, I heard him telling my mother, ‘Kali Mai, jhooth mat bolna, jhooth bologe toh kala kauwa katega!’

फिर उन्होंने 'झूठ बोले कौवा काटे' गुनगुनाया। मैंने उन्हें कई बार यही गाना गुनगुनाते सुना, लेकिन आखिरकार यह गाना 'बॉबी' फिल्म में शामिल हो गया, जिसकी कल्पना और शूटिंग 1972 में हुई थी! आखिरकार उन्हें अपने द्वारा रचित इस गाने को इस्तेमाल करने का सही मौका मिल गया था।

इसी तरह, 1972 में जब हम कश्मीर में बॉबी की शूटिंग के लिए गए थे, तो हमें उस हाउसबोट के मालिक ने रात के खाने पर आमंत्रित किया था जिसमें हम ठहरे थे। उन्होंने हमारे मनोरंजन के लिए एक स्थानीय कश्मीरी गायक और तीन संगीतकारों के कार्यक्रम का आयोजन किया था। उस शाम, स्थानीय गायक ने एक लोकगीत गाया जिसके बोल थे, 'सुन साहिबा सुन'।

राज साहब इन तीन शब्दों को सुनकर बहुत उत्साहित हो गए। अगले दिन उन्होंने मुझे फोन किया और कहा, 'पूरी रात ये तीन शब्द "सुन साहिबा सुन" मेरे दिमाग में घूमते रहे और आज सुबह मुझे इन तीन शब्दों से प्रेरित एक गाने की धुन सूझी।' उन्होंने अपनी प्रेरणा से निकले गीत को गाया, 'सुन साहिबा सुन, प्यार की धुन'। 1972 में उनके द्वारा गुनगुनाया गया यह गीत आखिरकार 1983 में फिल्म राम तेरी गंगा मैली में शामिल हो गया!

जब राज साहब ने बॉबी फिल्म लॉन्च की थी, तब वे फिल्म के संगीत निर्देशक के बारे में सोच-विचार कर रहे थे, क्योंकि इस शैली के लिए असाधारण संगीत की आवश्यकता थी। लक्ष्मी जी और प्यारे जी, आनंद बख्शी जी के साथ राज साहब से मिलने आए। उन्होंने कहा, 'हमें मुकेश जी ने बताया था कि आपने बॉबी के लिए अभी तक संगीत निर्देशक और गीतकार का चयन नहीं किया है; हम बहुत उत्साहित थे और हमने मुकेश जी से आपसे मिलने का अनुरोध किया, इसलिए हम यहां अपना रचा हुआ गीत लेकर आए हैं, जो हमें पूरा विश्वास है कि आपकी फिल्म में बिल्कुल फिट बैठेगा।'

राज साहब ने उनसे पूछा, 'जब आपको किरदारों के बारे में कुछ भी पता ही नहीं है, तो आप धुन कैसे बना सकते हैं और गाने के बोल कैसे लिख सकते हैं?'

उन्होंने शर्मिंदा होकर जवाब दिया, 'सर, मुकेश जी ने हमें पूरी कहानी सुनाई और फिल्म के लिए विशेष रूप से एक गाना तैयार करने को कहा, हालांकि हमने यह सोचकर भी एक गाना तैयार किया था कि अगर कभी राज कपूर हमें किसी फिल्म के लिए बुलाते हैं, तो हम उनके लिए यह गाना गाएंगे।'

राज साहब हँसे और बोले, 'तो फिर, पहले मुझे वह गाना सुनाओ जो तुमने खुद बनाया था, बॉबी के लिए नहीं।'

वह गाना था 'ये जो पब्लिक है, ये सब जानती है'। बॉस को गाना पसंद आया और उन्होंने उनसे वो गाना गाने को कहा जो उन्होंने बॉबी के लिए बनाया था। फिर उन्होंने 'हम तुम एक

कमरे में बंद हो' गाया और राज साहब खड़े होकर ताली बजाने लगे। वो गाने के बोल और संगीत से बेहद खुश थे। इस तरह लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल और बख्शी जी को बॉबी के लिए चुना गया।

दुर्भाग्यवश, राज साहब के लिए विशेष रूप से रचित गीत 'ये जो पब्लिक है, ये सब जानती है' को बॉबी फिल्म में इस्तेमाल नहीं किया जा सका क्योंकि इसके लिए कोई उपयुक्त परिस्थिति नहीं थी। अंततः इसे मनमोहन देसाई द्वारा निर्देशित राजेश कुमार-मुमताज अभिनीत फिल्म रोटी में इस्तेमाल किया गया।

'हम तुम एक कमरे में बंद हो' गाने में एक पंक्ति है, 'हम तुम कहीं को जा रहे हो, और रास्ता भूल जाए'। गाने की रिहर्सल के दौरान राज साहब यह कल्पना कर रहे थे कि गाना पर्दे पर कैसा दिखेगा। उन्होंने अचानक लक्ष्मी जी से कहा कि वह इन शब्दों को चौराहे पर फिल्माना चाहते हैं और लता जी से अनुरोध किया कि वह इन शब्दों से पहले के अंतराल में एक आलाप गाएं।

Laxmi ji called Pyare ji and after a small discussion Laxmi ji said, 'Yeh aalap is music ke upar aa nahin sakta hai. Aap chahen to interlude music change kar dete hain.'

Raj Sahab said, 'Nahin music interlude bohot accha hai issi par yeh aalap gavane ki koshish karo.'

Laxmi ji and Pyare ji said, 'Raj Sahab, nahin aa payega.'

Raj Sahab said, 'Main karke suna dun?'

रिहर्सल में मौजूद लता जी ने मुड़कर कहा, 'लक्ष्मी इनको गा के सुनाने दो।'

बीच का संगीत फिर से बजाया गया और तय समय पर राज साहब ने पूरी कुशलता से आलाप गाया। लक्ष्मी जी और प्यारे जी अवाक रह गए और लता जी के चेहरे पर मुस्कान थी। प्यारे जी ने अंत में कहा, 'राज साहब, मुझे एक बहुत ही प्रतिभाशाली संगीतकार माना जाता है, लेकिन आपने जो किया है, उसे देखकर मुझे खुद से नफरत हो रही है कि मैं इतनी आसानी से आलाप नहीं गा पाता।' उन्होंने झुककर राज साहब के पैर छुए और कहा, 'महोदय, मुझे

आपका आशीर्वाद चाहिए और आशा है कि एक दिन मैं संगीत की समझ के मामले में आपके स्तर तक पहुँच सकूँगा।'

एक पियानो धुन है जिसका नाम 'द ब्लू डेन्यूब' है, जिसे राज साहब बहुत पसंद करते थे। यह ऑस्ट्रियाई संगीतकार जोहान स्ट्रॉस द्वितीय द्वारा 1866 में रचित एक सुंदर वाल्ट्ज़ है और पियानो सीखना शुरू करने वाले अधिकांश विद्यार्थी आमतौर पर अपने पहले पाठों में से एक में इसे सीखते हैं। यह विश्व स्तर पर बेहद लोकप्रिय है; वास्तव में, यदि आप ऑस्ट्रिया की सड़कों पर घूमेंगे तो आपको सड़क पर गाने वालों द्वारा इसे बजाते हुए सुना जा सकता है।

राज साहब को यह रचना बेहद पसंद थी। जयकिशन जी द्वारा वायलिन पर बजाए जाने के बाद यह उनके मन में बस गई थी और उन्होंने बरसात फिल्म के गीत 'छोड़ गए बलम' में इसका इस्तेमाल करने पर जोर दिया था।

जब यह गाना बजा तो लोग खड़े होकर तालियाँ बजाने लगे और इसी से प्रेरित होकर राज साहब ने इसे अपनी सभी फिल्मों में बैकग्राउंड स्कोर के रूप में इस्तेमाल किया। लौह परदा देशों, सोवियत संघ और बाल्टिक राज्यों में लोगों ने इसे स्टैंडिंग ओवेशन दिया। 'द ब्लू डेन्यूब' राज कपूर का पर्याय बन गया और इसने उनके सभी कार्यों में अंतर्निहित रोमांस और उदासी को और भी बढ़ा दिया।

राज साहब की फिल्मों में बैकग्राउंड म्यूजिक की अहम भूमिका होती थी। वे बैकग्राउंड स्कोर तैयार करने में काफी समय लगाते थे, क्योंकि उनका मानना था कि सही बैकग्राउंड स्कोर किसी दृश्य के प्रभाव को और बढ़ा देता है। दरअसल, कई बार तो राज साहब किसी खास शॉट की रिहर्सल के दौरान चुपचाप कोई धुन गुनगुनाते रहते थे। फिर वे बहुत ही सटीक निर्देश देते थे, जैसे, 'अब इस बिंदु पर नीचे देखो' या 'यहाँ, इस संवाद पर मैं चाहता हूँ कि तुम उसे गहरी पीड़ा का भाव दिखाओ'। ये वे बिंदु होते थे जहाँ उनके द्वारा मन में रचा गया बैकग्राउंड म्यूजिक बजता था, और कभी-कभी, जैसा कि मैंने पहले लिखा है, उनकी उंगलियाँ ताल बजाती रहती थीं, जिससे इस्तेमाल होने वाले बैकग्राउंड म्यूजिक की शैली तय होती थी।

पहले भी संगीत निर्देशक और उनके संगीत संयोजनकर्ता ही पृष्ठभूमि संगीत तैयार करते थे और आज भी करते हैं। रिकॉर्डिंग स्टूडियो में अंतिम संपादित फिल्म दिखाई जाती है और

पृष्ठभूमि संगीत वहीं पर तैयार किया जाता है। राज साहब इस प्रथा को स्वीकार नहीं करते थे क्योंकि उनके लिए पृष्ठभूमि संगीत फिल्म का एक अभिन्न अंग था।

वे पहले रचना सुनते थे और यदि वह उनकी अपेक्षाओं पर खरी उतरती, तभी उसे रिकॉर्डिंग के लिए मंज़ूरी दी जाती थी। रचना सुनने और रिकॉर्डिंग के लिए अलग-अलग दिन निर्धारित किए गए थे। वे इस बात का भी विशेष ध्यान रखते थे कि यदि किसी रील में बैकग्राउंड स्कोर के साथ कोई गाना हो, तो बैकग्राउंड स्कोर की धुन या सुर गाने के सुर से मेल खाना चाहिए, अन्यथा वह सुनने में असंगत लगेगा। उनके संगीत के विशाल ज्ञान की उनके साथ काम करने वाले संगीत निर्देशकों ने भी सराहना की।

हर संगीत निर्देशक का पृष्ठभूमि संगीत की नींव रखने का अपना तरीका होता था। शंकर-जयकिशन की सभी फिल्मों के पृष्ठभूमि संगीत का काम संभालने वाले जयकिशन जी को रिकॉर्डिंग स्टूडियो में फिल्म दिखाई जाती थी। वे पृष्ठभूमि संगीत के शुरू होने से लेकर खत्म होने तक अपनी उंगलियों से ताल मिलाते हुए गिनती शुरू करते थे। फिल्म पर शुरुआती बिंदु को 'XXX' से चिह्नित किया जाता था।

प्यारे जी, जो लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल की सभी फिल्मों में इंटरल्यूड और बैकग्राउंड संगीत तैयार करते थे, बैकग्राउंड स्कोर की शुरुआत में 'XXX' का निशान लगाने के अलावा, जहां भी बैकग्राउंड संगीत में बदलाव की आवश्यकता होती थी, वहां 'CCC' का निशान लगाते थे और अंत में 'OOO' का निशान लगाते थे। वे स्टॉपवॉच का उपयोग करके सभी बदलावों और उस विशेष बैकग्राउंड स्कोर की अवधि को नोट करते थे।

जब बैकग्राउंड स्कोर रिकॉर्ड किया जा रहा था, जयकिशन जी 'XXX' चिह्न से स्कोर बजाना शुरू करते और उंगलियों से थपथपाना फिर से शुरू हो जाता, और जहाँ आवश्यक होता, वे बदलाव करते। रिकॉर्डिंग के दौरान, प्यारे जी स्टॉपवॉच चालू करते और ऑर्केस्ट्रा का संचालन करते, और स्टॉपवॉच के साथ तालमेल बिठाते हुए बदलावों पर नज़र रखते। उनकी रचना और बदलाव एकदम सटीक होते थे।

जब 'कल आज और कल' के बैकग्राउंड म्यूजिक पर काम शुरू हुआ, तब तक जयकिशन जी का देहांत हो चुका था। डब्बू साहब निर्देशक थे और मैं उनका सहायक था। शंकर जी ने बैकग्राउंड स्कोर तैयार करने में असमर्थता जताई और कहा कि उनके पुराने संगीतकार

सेबेस्टियन यह काम संभालेंगे। राज साहब को यह बात बिल्कुल भी मंजूर नहीं थी और उन्होंने खुद बैकग्राउंड म्यूजिक तैयार करने का फैसला किया (यहीं से राज साहब ने यह भी तय कर लिया कि उनकी अगली फिल्म के लिए एक नया संगीत निर्देशक होगा)। यह उस समय की बात है जब फिल्म की रिकॉर्डिंग उसी दिन शुरू होनी थी और रिलीज की तारीख तय होने के कारण इसे टाला नहीं जा सकता था। इसलिए, राज साहब को बिना किसी पूर्व चर्चा के अपने बेटे रणधीर कपूर को संतुष्ट करने के लिए बैकग्राउंड म्यूजिक तैयार करना ही था।
उन्होंने अपने बेटे से पूछा, 'डब्बू साहब, क्या आपको इससे कोई आपत्ति नहीं है?'
दब्बू साहब ने जवाब दिया, 'पिताजी, यह मेरे लिए बहुत बड़ा सौभाग्य और सम्मान की बात होगी!'
एक संगीतकार बैकग्राउंड स्कोर रिकॉर्डिंग के लिए सिंथेसाइज़र नाम का एक ऐसा वाद्य यंत्र लेकर आया जिसे हमने पहले कभी नहीं देखा था। राज साहब, जो प्रशिक्षित संगीतकार न होते हुए भी किसी भी वाद्य यंत्र को बजाने की अनूठी क्षमता रखते थे, ने सिंथेसाइज़र को देखा और बड़े आश्चर्य से पूछा, 'यह बिजली के पियानो जैसा दिखने वाला उपकरण क्या है?' संगीतकार ने उन्हें मौखिक रूप से उस वाद्य यंत्र और उसकी क्षमताओं के बारे में बताया। उन्होंने उसे देखा और एक-दो सुर बजाने लगे, फिर उन्होंने इधर-उधर बटन दबाए और उससे निकलने वाली विभिन्न ध्वनियों को देखकर आश्चर्यचकित रह गए।
दस मिनट के भीतर ही वह सिंथेसाइज़र को धाराप्रवाह बजाने लगा। उसे पता चल गया कि मनचाही ध्वनि के लिए कौन सा बटन दबाना है और सिंथेसाइज़र की स्वचालन क्षमता क्या है। यहां तक कि सिंथेसाइज़र लाने वाला संगीतकार भी इस वाद्य यंत्र की कुछ ऐसी क्षमताओं के बारे में जानकर आश्चर्यचकित रह गया, जिनके बारे में उसे स्वयं जानकारी नहीं थी।
राज साहब को संगीत से इतना लगाव था कि वे आरके में एक संगीत रिकॉर्डिंग स्टूडियो बनवाना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने अत्याधुनिक रिकॉर्डिंग कंसोल भी खरीद लिया था। लेकिन आरके में रिकॉर्डिंग स्टूडियो स्थापित करने की उनकी महत्वाकांक्षा पूरी नहीं हो सकी, इसलिए उन्होंने नटराज लैब नामक एक स्टार्टअप प्रयोगशाला में निवेश किया, जिसका एकमात्र उद्देश्य संगीत स्टूडियो स्थापित करने के उनके सपने को पूरा करना था।

बॉबी का पहला गाना नए स्टूडियो नटराज लैब्स में रिकॉर्ड किया गया था और राज साहब को इस बात पर बहुत गर्व था। दुर्भाग्यवश, रिकॉर्डिंग के बाद जब उन्होंने गाना सुना तो वे पूरी तरह असंतुष्ट हो गए और उन्होंने फैसला किया कि गाने को पुराने फेमस स्टूडियो में दोबारा रिकॉर्ड किया जाना चाहिए, जहां उनके पहले के सभी गाने रिकॉर्ड किए गए थे।

यह कदम रिकॉर्डिंग स्टूडियो के लिए काफी बड़ा झटका साबित हुआ, क्योंकि खुद बॉस ने अपने गाने की रिकॉर्डिंग पुराने स्टूडियो में ही करवाई थी, क्योंकि स्टूडियो की गुणवत्ता उम्मीद के मुताबिक नहीं थी। उन्होंने इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना को दो वाक्यों में समेटते हुए कहा, 'रिकॉर्डिंग स्टूडियो की विफलता से मैं पूरी तरह टूट गया हूँ, दोबारा गाना रिकॉर्ड करने में होने वाले खर्च की वजह से नहीं, बल्कि इस बात से कि मेरा अपना संगीत रिकॉर्डिंग स्टूडियो मेरी उत्कृष्टता के स्तर को पूरा नहीं कर सका।' बॉस के लिए गुणवत्ता सर्वोपरि थी।

फिल्म 'जिस देश में गंगा बहती है' के गीत 'आ अब लौट चलें' के लिए राज साहब ने संगीत की भव्यता को गाने के अनुरूप ढालने के लिए वाद्ययंत्रों के एक विशाल संग्रह की कल्पना की थी। उन्होंने शंकर-जयकिशन से परामर्श किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उनके इस मनचाहे गीत के लिए 60 गायक, 80 वायलिन, 12 सेलो, 4 डबल बेस, 2 मैंडोलिन, 2 पूर्ण भारतीय रिदम सेक्शन, 2 सितार, 10 ब्रास ट्रम्पेट, 6 साइड रिदम और लता जी और मुकेश जी द्वारा प्लेबैक की आवश्यकता होगी। लेकिन अफसोस, इतने बड़े ऑर्केस्ट्रा को समायोजित करने के लिए कोई रिकॉर्डिंग स्टूडियो इतना बड़ा नहीं था। फेमस स्टूडियो में ऑर्केस्ट्रा के लिए केवल 4 माइक्रोफोन और आवाजों के लिए 2 माइक्रोफोन ही उपलब्ध थे। इसलिए, राज साहब ने अद्वितीय रिकॉर्डिस्ट मिनू कटराक से परामर्श किया और उन्होंने पूरे समूह को एक साथ रिकॉर्ड करने की एक अनूठी विधि विकसित की, क्योंकि उन दिनों मल्टीट्रैक रिकॉर्डिंग का चलन नहीं था।

जगह की कमी के कारण पूरे कोरस को साउंड स्टेज के बाहर बैठाया गया और अंतिम रिकॉर्डिंग सुबह 3 बजे की गई ताकि सड़क पर कोई यातायात न हो। 1961 में बंबई एक शांत शहर था, लेकिन 2021 में मुंबई शांत नहीं है!

उस दिन रचनाकार, गायक, ऑर्केस्ट्रा और तकनीशियनों का जुनून ही सर्वोपरि था।

उनकी संगीत शैली और तकनीक ऐसी थी कि प्रतिष्ठित निर्देशक बिमल रॉय सर ने भी राज साहब के पृष्ठभूमि संगीत में रचित धुनों का उपयोग मधुमती के गीतों में किया, जो बिमल रॉय सर की महानतम फिल्मों में से एक थी।

राज साहब के संगीत ने उनके बाद की पीढ़ियों के गीतों को प्रेरित किया और उनमें झलकता रहा। उनकी संगीत प्रतिभा ने हिंदी सिनेमा के लिए एक मिसाल कायम की है।

पाठ 6: संपादक द्वारा संपादित संस्करण

राज कपूर के लिए फिल्म निर्माण की पूरी प्रक्रिया पवित्र थी और संपादन कक्ष उसका सबसे पवित्र स्थान था। इसलिए संपादन कक्ष में जूते लाना मना था और शराब व सिगरेट का सेवन पूरी तरह प्रतिबंधित था। यह नियम संपादन कक्ष के उनके स्वयं के उपयोग पर भी लागू होता था।

राज साहब की एडिटिंग प्रक्रिया प्रोजेक्शन रूम में शुरू होती थी और फिर एडिटिंग रूम में जाती थी। एक्सपोज़्ड फिल्म को प्रयोगशाला में प्रोसेस किया जाता था जिससे नेगेटिव प्राप्त होता था। शूटिंग के दौरान कंटिन्यूटी शीट्स वाली एक लॉगबुक रखी जाती थी; इन शीट्स में हर शॉट के बारे में अलग-अलग जानकारी होती थी, जिसमें निर्देशक द्वारा स्वीकृत टेक भी शामिल होते थे। नेगेटिव को छाँटा जाता था और सभी स्वीकृत टेक को पॉजिटिव फिल्म पर प्रिंट किया जाता था जिससे पिक्चर पॉजिटिव प्राप्त होता था।

सतह पर धूल या खरोंच से बचने के लिए नेगेटिव को सावधानीपूर्वक संभाला गया। पॉजिटिव प्रिंट प्राप्त होने के बाद, नेगेटिव को एक साफ-सुथरे कमरे में संभाला गया, जहां नेगेटिव संभालने वाला व्यक्ति बिना जूते पहने और दस्ताने पहनकर कमरे में प्रवेश करता था। नेगेटिव का उपयोग किसी भी मशीन पर नहीं किया जा सकता था और यहां तक कि प्रिंटर भी विशेष रूप से नेगेटिव संभालने के लिए डिज़ाइन किए गए थे। इसी प्रकार, चुंबकीय टेप पर रिकॉर्ड किए गए ध्वनि के सही टेप को एक साउंड नेगेटिव पर स्थानांतरित किया गया, और फिर इस साउंड नेगेटिव को संसाधित करके संपादन के लिए एक साउंड पॉजिटिव पर प्रिंट किया गया।

इस प्रकार, ध्वनि और चित्र वाली दो सेल्युलाइड स्ट्रिप्स थीं, जिन्हें क्लैपबोर्ड के अनुसार सिंक्रनाइज़ किया गया था। क्लैपबोर्ड पर चाक से दृश्य संख्या और शॉट संख्या लिखी होती थी, साथ ही इसके ऊपरी भाग में लकड़ी का एक टुकड़ा लगा होता था जिससे ताली बजाने पर ध्वनि निकलती थी। प्रत्येक शॉट के लिए ताली के दृश्य और उससे संबंधित ध्वनि वाले फ्रेम का उपयोग दोनों सेल्युलाइड रोल को सिंक्रनाइज़ करने के लिए किया जाता था।

सिंक्रनाइज़्ड साउंड और पिक्चर को मिलाकर रश प्रिंट तैयार किया गया था। चूंकि शूटिंग कई चरणों में हुई थी, इसलिए हर चरण के अंत में रश प्रिंट को दिखाया जाता था ताकि बॉस फिल्म में शामिल किए जाने वाले प्रत्येक शॉट के सर्वश्रेष्ठ संस्करण का चयन कर सकें।
राज साहब को सबसे अच्छा टेक चुनते हुए देखकर शुरू में मेरे मन में उलझन पैदा हो गई क्योंकि मुझे अलग-अलग टेकों में अंतर करना बहुत मुश्किल लग रहा था। बॉस साहब, जो एक छात्र के लिए सबसे अच्छे शिक्षक साबित हो सकते हैं, ने चयन की अपनी पूरी प्रक्रिया विस्तार से समझाई।
'मेरे चयन में कई कारक शामिल होते हैं। मुझे देखना होता है कि किस शॉट में फोकस सबसे स्पष्ट है, अभिनय सर्वश्रेष्ठ है, कैमरे और/या अभिनेता की गति सही है, फ्रेम, जूनियर कलाकार (यदि कोई हों), उनकी स्थिति और पृष्ठभूमि में होने वाली कोई भी हलचल। ये सभी तत्व सामंजस्य में मिलकर विजेता का निर्धारण करते हैं, लेकिन कुछ भी आदर्श रूप से नहीं होता। ऐसा बहुत कम होता है कि ये सभी तत्व परिपूर्ण हों और आमतौर पर कुछ न कुछ विसंगति होती है, तब मुझे आदर्श को नहीं बल्कि उससे अगले सर्वश्रेष्ठ को चुनने का निर्णय लेना पड़ता है।'
एक बार प्रोजेक्शन के दौरान, जब राज साहब ओके टेक्स का चयन कर रहे थे, तभी एक रूसी प्रशंसक अपने एक भारतीय मित्र के साथ उनसे मिलने आया, जो रूसी भाषा बोलता था। वह मित्र लगातार जोर-जोर से रूसी में बोलकर राज साहब को परेशान कर रहा था। जब लाइटें जलीं, तो रूसी प्रशंसक ने अपने मित्र के माध्यम से पूछा कि इस प्रक्रिया के बाद संपादन कैसे होगा। राज साहब ने धैर्यपूर्वक उन्हें समझाया, 'ओके टेक्स को संपादन कक्ष में ले जाया जाएगा और कालानुक्रमिक क्रम में जोड़ा जाएगा। प्रत्येक शॉट की शुरुआत और अंत को काटकर अगला शॉट जोड़ा जाएगा। सभी शॉट्स जुड़ जाने के बाद, मुझे दृश्य के लिए उपयुक्त गति तय करनी होगी और आवश्यकतानुसार गति के लिए कोई भी शॉट जोड़ना या घटाना होगा।'
भारतीय मित्र ने बीच में टोकते हुए कहा, 'ओह! तो, संपादक एक सर्जन की तरह है।'
राज साहब, जो पहले से ही उससे चिढ़ चुके थे, ने जवाब दिया, 'जब मैं संपादन करता हूँ, तो मुझे किसी भी दृश्य को किसी भी स्थान पर रखने की स्वतंत्रता होती है, एक सर्जन के विपरीत,

जो आपके अंगों को उनके निर्धारित स्थान से नहीं हटा सकता। इसलिए, मुझे उम्मीद है कि आप समझते हैं कि एक सर्जन के विपरीत, मैं आपके दिमाग को आपके नितंब में और इसके विपरीत नहीं रख सकता, हालाँकि मेरी इच्छा यही है कि मैं ऐसा कर सकूँ!'

एडिटिंग रूम में, एक सहायक सही टेक्स को छाँटता और दृश्य की आवश्यकता के अनुसार उन्हें कालानुक्रमिक क्रम में जोड़ता था। राज साहब छाँटे गए टेक्स की रील को एक सीधे खड़े मोवियोला या फ्लैटबेड स्टीनबेक पर देखते थे। कुछ अपवादों को छोड़कर, इन दोनों मशीनों की क्षमताएँ लगभग समान थीं।

मोवियोला एक खड़ी मशीन थी। चित्र और ध्वनि को लगभग 1 फुट की दूरी पर स्थित दो अलग-अलग चैनलों पर मैन्युअल रूप से जोड़ना पड़ता था, जिनके लिए सिंक्रोनाइज़ेशन चिह्न मोवियोला पर निर्धारित स्थानों पर लगे होते थे। दोनों चैनलों को एक साथ सिंक्रोनाइज़ करके चलाया जा सकता था या आवश्यकतानुसार किसी एक को अलग से भी चलाया जा सकता था। रील चलाने के लिए दो विकल्प थे; या तो इलेक्ट्रिक मोटर का उपयोग किया जा सकता था, जो ठीक 24 फ्रेम प्रति सेकंड की गति से चलती थी, या फिर पैडल का उपयोग करके रील को चलाया जा सकता था, ठीक सिलाई मशीन की तरह, जो पैडल को दबाने के दबाव के आधार पर गति बदलती रहती थी।

राज साहब पेडल का इस्तेमाल करना पसंद करते थे क्योंकि इससे उन्हें फ्रेम को सटीक बिंदु पर रोकने का मौका मिलता था। वे हमेशा मोवियोला के बगल में खड़े रहते थे और एक हाथ लीवर पर रखते थे, जिसे दबाने पर फिल्म रुक जाती थी। इससे वे लाल रंग के मार्कर पेंसिल से उस फ्रेम को चिह्नित कर पाते थे जिसका इस्तेमाल वे एडिटिंग में करते थे। कभी-कभी, मोवियोला से जुड़ी एक स्टील की प्लेट पर हाथ रखकर, जो फिल्म चलते समय घूमती रहती थी, वे अचानक चलती हुई प्लेट को अपनी हथेली से पकड़ लेते थे, जिससे फिल्म रुक जाती थी और वे उसे चिह्नित कर लेते थे। 'कभी-कभी, जब मैं किसी खास फ्रेम पर रोकने के लिए लीवर का इस्तेमाल करता हूं, तो मेरे दिमाग को लीवर दबाने का संकेत देने में लगने वाले समय के कारण एक या दो फ्रेम छूट जाते हैं, लेकिन जब मैं प्लेट को पकड़कर रोकता हूं, तो मेरे अनुभव से पता चलता है कि यह हरकत मेरे दिमाग द्वारा भेजे गए "रोकने" के संकेत के साथ तालमेल बिठाती है।'

स्टीनबेक, जो मोवियोला से एक कदम आगे था, शुरू में भारतीय फिल्म उद्योग के केवल तीन लोगों - राज कपूर, बी.आर. चोपड़ा और फिल्म उद्योग के दिग्गज वी. शांताराम - के स्वामित्व में था और उन्हीं के द्वारा इस्तेमाल किया जाता था। इसे चलाना आसान था क्योंकि सभी नियंत्रण अलग-अलग बटनों पर थे। फिल्म को रोकने के लिए मस्तिष्क द्वारा उत्पन्न आवेग और स्टॉप बटन को हल्के से दबाने की क्रिया एक साथ होती थी। अब कोई मोटरयुक्त स्टील प्लेट पकड़ने की ज़रूरत नहीं थी, और यह अधिक आरामदायक था क्योंकि इस मशीन को चलाते समय बैठकर काम किया जा सकता था।

शांताराम जी, जिन्हें अन्ना साहब कहा जाता था, कुर्सी की बजाय गद्दी पर बैठना ज़्यादा पसंद करते थे। इसलिए, स्टीनबेक कैमरे के पैरों को काटकर उसे ज़मीन के स्तर पर लाया गया ताकि वे गद्दी पर बैठकर गद्दी पर तकिया लगाकर अपनी फ़िल्म की एडिटिंग कर सकें। मनोज कुमार सर, जिन्होंने बहुत बाद में स्टीनबेक कैमरा खरीदा, लेटकर उसका इस्तेमाल करना ज़्यादा आरामदायक समझते थे, इसलिए उन्होंने भी स्टीनबेक के पैरों को काटकर उसे इस स्तर पर लाया कि वे बिस्तर पर लेटकर एडिटिंग कर सकें। तीनों ही बेहद प्रतिभाशाली फ़िल्म निर्माता, तीनों ही सनकी!

राज साहब पूरी एकाग्रता से मशीन पर शॉट्स चलाते और हर शॉट के पहले और आखिरी फ्रेम को चिह्नित करते। चिह्नित शॉट्स को एडिटिंग टेबल पर ले जाया जाता था। एडिटिंग टेबल के बीच में 9 इंच चौड़ा और 1 फुट लंबा फ्रॉस्टेड ग्लास लगा था, जिसके नीचे एक ट्यूबलाइट लगी थी। इस लाइट की मदद से वे मैग्निफाइंग ग्लास से किसी खास फ्रेम को देख पाते थे। साउंड और पिक्चर को टेबल के एक किनारे पर लगे सीधे स्टैंड पर लोड किया जाता था और ये फ्रॉस्टेड ग्लास के ऊपर से गुजरते हुए सिंक्रोमीटर नामक उपकरण पर पहुंचते थे। इस उपकरण में एक पहिया और स्प्रोकेट लगे होते थे, और फिल्म को आगे या पीछे करने के लिए पहिये को हाथ से घुमाना पड़ता था। साउंड और पिक्चर के शुरुआती निशान सिंक्रोमीटर पर लोड किए जाते थे ताकि पिक्चर और साउंड को आगे-पीछे करते समय वे पूरी तरह से सिंक में रहें।

प्रत्येक शॉट के आरंभ और अंत बिंदु को एक विशेष ब्लेड से काटा जाता था। बाहर जाने वाले शॉट के अंत को अंदर आने वाले शॉट के आरंभ से जोड़ने के लिए हमें फिल्म सीमेंट नामक

एक पारदर्शी तरल का उपयोग करना पड़ता था। चित्र और ध्वनि सेल्युलाइड बेस पर थे जिसके दो भाग थे - एक तरफ इमल्शन और दूसरी तरफ ग्लेज। शॉट्स को जोड़ने का अर्थ था इमल्शन वाले भाग को ग्लेज वाले भाग से जोड़ना, और यह केवल बाहर जाने वाले शॉट से इमल्शन को खुरचकर ही संभव था। प्रत्येक शॉट के दोनों किनारों पर चार छिद्र (स्पॉकेट) होते थे। इमल्शन को खुरचते समय एक छिद्र खो जाता था। इसके बाद बाहर जाने वाले शॉट को स्प्लिसर के दाहिने भाग पर लगाया जाता था, जो एक दो-भाग वाला उपकरण था जिसका बायां भाग ऊपर की ओर गतिमान होता था और दाहिना भाग स्थिर रहता था। खुरचे हुए भाग पर फिल्म सीमेंट लगाया जाता था और अंदर आने वाले शॉट को स्प्लिसर के बाएं भाग में निर्धारित स्थान पर लगाकर दाहिने भाग पर नीचे उतारा जाता था। दबाव डालने से दोनों भागों के बीच का जोड़ 'जमा' हो गया।

बॉस द्वारा बताए गए तरीके से शॉट्स को काटने और जोड़ने का काम एक सहायक द्वारा किया जाता था। कभी-कभार, बॉस खुद स्प्लिसर चलाना चाहते थे। एक बार उन्होंने मेरी उलझन भरी नज़रों से पूछा, 'क्या तुम इसलिए इतने परेशान दिख रहे हो क्योंकि तुम ग्लेज़ और इमल्शन में अंतर नहीं कर पा रहे हो?'

मेंने सिर हिलाया।

‘राहुल, इमल्शन वाली साइड का पता लगाने का सबसे अच्छा तरीका फिल्म को चाटना है; जो साइड चिपचिपी होगी वही इमल्शन होगी। अभी कोशिश करो और मुझे दिखाओ।’

मैंने फिल्म का एक टुकड़ा उठाया और निर्देशानुसार उसे चाटा, तो उसका एक हिस्सा चिपचिपा था।

मैंने बॉस से कहा, 'आप सही कह रहे हैं, सर! यह तरफ चिपचिपी है और इसलिए यह इमल्शन ही होना चाहिए।'

वह मुस्कुराया, 'आपसे यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि आप इमल्शन ढूंढने के लिए शॉट को चाटते रहें। इसके दो तरीके हैं, एक यह कि चमकदार हिस्सा हमेशा ग्लेज़ होगा और गैर-चमकदार हिस्सा इमल्शन होगा। दूसरा आसान तरीका यह है कि फिल्म प्रिंट में अब साउंडट्रैक नहीं होता और ध्वनि सेल्युलाइड के दूसरे रोल से चलाई जाती है, लेकिन रश प्रिंट के पिक्चर रोल पर अंतिम प्रिंट बनाते समय साउंडट्रैक प्रिंट करने का प्रावधान होता है।

इसलिए, इमल्शन में ध्वनि के लिए एक खाली जगह होती है, और छवि को लंबवत देखने पर वह खाली किनारा हमेशा आपके बाईं ओर होगा।'

राज साहब लॉस एंजिल्स से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'अमेरिकन सिनेमैटोग्राफर' के बड़े शौकीन पाठक थे, जो फिल्म निर्माण प्रक्रिया में सहायक आगामी तकनीकों और उपकरणों की जानकारी देती थी। उन्होंने वहीं टेप स्प्लिसर के बारे में पढ़ा था, एक ऐसा उपकरण जिसमें रश प्रिंट की एडिटिंग के दौरान फिल्म सीमेंट का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती थी, बल्कि सेलोटेप का उपयोग किया जाता था।

राज साहब ने लॉस एंजिल्स में अपने एक दोस्त को फोन किया और एक हफ्ते के अंदर ही उन्हें टेप स्प्लिसर हाथ से पहुँचा दिया गया। एडिटिंग में यह बहुत काम आया – इमल्शन को खुरचने की ज़रूरत नहीं, सीमेंट का इस्तेमाल करने की ज़रूरत नहीं और मेरे जैसे बेवकूफों के लिए तो चाटने की भी ज़रूरत नहीं।

सबसे बड़ा फायदा तब हुआ जब राज साहब एडिटिंग के बाद किसी शॉट की शुरुआत या अंत को बढ़ाना चाहते थे। शॉट बढ़ाते समय हमें इस बात का खास ध्यान रखना पड़ता था कि फिल्म के 1 फुट में 16 फ्रेम होते हैं। चूंकि स्प्लिसर को एक फ्रेम का एक स्प्रोकेट हटाना पड़ता था, इसलिए बढ़े हुए शॉट में सिर्फ एक स्प्रोकेट दोबारा जोड़ना संभव नहीं था। इसलिए बचे हुए तीन स्प्रोकेट को हटाकर उनकी जगह एक सफेद फ्रेम लगाना पड़ता था, जिससे 16 फ्रेम = 1 फुट का नियम बना रहे।

राज साहब जब किसी दृश्य के सभी शॉट्स जोड़ लेते थे, तो संपादित दृश्य को देखने के लिए वे स्टीनबेक कंप्यूटर पर जाते थे। इस पल से राज साहब मानो किसी जुनून में डूब जाते थे! वे दृश्य को बार-बार देखते और शॉट्स के सहज बदलाव के लिए आवश्यक सुधारों की तलाश करते। ये सुधार तुरंत किए जाते, फिर से देखे जाते और यदि आवश्यक हो, तो तब तक सुधार किए जाते जब तक कि एक सहज प्रस्तुति प्राप्त न हो जाए।

राज साहब कमरे से बाहर आते, सिगरेट जलाते और बगल वाले दरवाजे से स्टीनबेक रिकॉर्डर पर बिना किसी रुकावट के पूरा एडिट किया हुआ सीन चला देते। वे बड़ी सावधानी से इस प्रक्रिया को कई बार दोहराते। हमेशा की तरह, दूसरी या तीसरी बार देखने पर उनकी

उंगलियां थिरकने लगतीं या हिलने लगतीं, जिससे हमें यह संकेत मिलता कि उनका दिमाग तेजी से चल रहा है और वे उस सीन के भावनात्मक प्रभाव को आत्मसात कर रहे हैं।

'हर दृश्य, चाहे वह प्रेम दृश्य हो, हास्य दृश्य हो, नाटकीय दृश्य हो या दुखद दृश्य, में एक अंतर्निहित भावना होती है', यह उनका दृढ़ विश्वास था और वे हमसे पूछते थे कि क्या वह दृश्य भावनात्मक रूप से हम पर असरदार रहा या नहीं। राज साहब भाव-भंगिमाओं को समझने में माहिर थे और जब हममें से कोई अपनी राय व्यक्त कर रहा होता, तो वे ध्यान से सुनते थे, साथ ही साथ यह भी जानने की कोशिश करते थे कि उस व्यक्ति की बात पर बाकी सभी की क्या प्रतिक्रिया है। दृश्य का विश्लेषण करने की इस प्रक्रिया में उपस्थित सभी सहायकों की व्यक्तिगत भागीदारी होती थी। सबकी बात सुनने के बाद, वे तय करते थे कि दृश्य में किन तत्वों की आवश्यकता है, कौन से अनावश्यक हैं और क्या दृश्य की गति में बदलाव की आवश्यकता है।

वह स्टीनबेक के पास वापस आता और दिए गए शॉट से फ्रेम जोड़कर या घटाकर सुधार करना शुरू कर देता ताकि आने और जाने वाले शॉट के बीच की गति को सुचारू बनाया जा सके या दृश्य की गति को बढ़ाया या घटाया जा सके।

कभी-कभी वह स्टीनबेक कैमरे को किसी खास बिंदु पर रोक देते और कहते कि उन्हें दृश्य में किसी अभिनेता का मूक क्लोज-अप शॉट चाहिए। हमने दृश्य के विभिन्न स्थानों पर सभी शॉट पहले ही इस्तेमाल कर लिए थे और हमारे पास कोई ऐसा बैकअप शॉट नहीं था जो काम आ सके। तब वह कहते, 'मुझे उस अभिनेता से संबंधित बाकी बचे हुए शॉट दिखाओ जो ठीक थे।' हम उन ठीक शॉट्स का पता लगाने के लिए कंटिन्यूटी शीट देखते। इन्हें एडिटिंग रूम में लाया जाता और मोवियोला में लोड किया जाता क्योंकि स्टीनबेक में पहले से ही वह दृश्य था जिसे हम एडिट कर रहे थे। वह इसे देखते और कभी-कभार, जब यह उन्हें पसंद नहीं आता, तो वह किसी भी दृश्य से उस अभिनेता का कोई भी क्लोज-अप शॉट मांगते। वह मोवियोला पर किसी दूसरे दृश्य का पूरा शॉट चलाते और जब उन्हें कोई मूक हिस्सा मिलता जो उन्हें उपयुक्त लगता, तो वह शुरुआत और अंत को चिह्नित करते, उसे मोवियोला की रील से हटा देते और स्टीनबेक पर केवल उसी बिंदु से तस्वीर वापस लगा देते जिसे उन्होंने चिह्नित किया था।

उन्हें इस बात की कोई परवाह नहीं थी कि हमने यही शॉट पहले भी इस्तेमाल किया था या यह पूरी तरह से अलग सीन का था और अभिनेता ने अलग पोशाक पहनी थी! उनका मानना था, 'दर्शक कभी यह नहीं जान पाएंगे कि कोई शॉट दोहराया गया है या किसी दूसरे सीन का है, बशर्ते कि जो वे देख रहे हैं वह मनोरंजक और विश्वसनीय हो। उनका ध्यान तभी भटकेगा जब आप उन्हें ऐसा करने देंगे। यही सिनेमा का जादू है।'

पूरे दृश्य को ठीक करने और उसे देखने, समझने, आगे के बदलावों पर विचार करने और सहायकों से प्रतिक्रिया लेने की प्रक्रिया पूरी करने के बाद, वह फिर से शुरू करते और सुधारों के दूसरे दौर के लिए स्टीनबेक थिएटर में लौट जाते। सुधारों का सिलसिला तब तक चलता रहता जब तक कि वह दृश्य से पूरी तरह संतुष्ट नहीं हो जाते। फिर अंतिम दृश्य को प्रीव्यू थिएटर में दिखाया जाता ताकि बड़े फॉर्मेट में दृश्य कैसा दिखेगा, इसका अंदाजा लगाया जा सके।

दृश्य का मनचाहा प्रभाव प्राप्त करने की खुशी उनके चेहरे पर साफ झलक रही थी और उनका भाव अवर्णनीय था। उनका पूरा व्यक्तित्व बदल गया था और वे किसी खुश बच्चे की तरह लग रहे थे जिसे चॉकलेट मिल गई हो। उस बेहद खुश मिजाज में वे सिगरेट का पैकेट वहीं छोड़कर वॉशरूम चले जाते और हम चारों सहायक एक-एक सिगरेट जलाकर खुशी-खुशी पी लेते। जब तक हम सिगरेट खत्म करके बुझाते, वे एडिटिंग रूम में लौट आते। हमें इस बात पर बहुत गर्व होता कि हमने उनके आने से पहले ही सिगरेट खत्म कर ली थी और हम कभी पकड़े नहीं गए, जब तक कि हमें यह एहसास नहीं हुआ कि वे हर बार एडिटिंग से इतने खुश होकर जानबूझकर हमें सिगरेट जलाने का मौका देते थे!

फिर वह स्टीनबेक की फिल्म देखने वापस जाता, ताकि संपादन के लिए अगले दृश्य को चिह्नित कर सके और उसके अंदर का बच्चा फिर से उस जुनूनी व्यक्ति में बदल जाता।

राज साहब हमेशा इस बात पर ज़ोर देते थे कि सिनेमा एक ऑडियो-विज़ुअल माध्यम है; इसलिए, न केवल दृश्य को सही ढंग से संरचित करना ज़रूरी है, बल्कि ध्वनि भी एक मोशन पिक्चर का अभिन्न अंग है और इसका सावधानीपूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए। संपादन के दौरान जब भी उन्हें ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता था जहाँ दो शॉट्स का संयोजन सहज नहीं होता था, तो वे ध्वनि का सहारा लेते थे। 'यह प्रवाह बिल्कुल सहज नहीं है, इसलिए

हमें दर्शकों का ध्यान दृश्य से कुछ पल के लिए हटाना होगा। आप कोई भी अटपटा व्यवधान नहीं डाल सकते, क्योंकि इससे उनका ध्यान दृश्य से हट सकता है। यहीं पर आपका साउंडट्रैक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आने और जाने वाले शॉट के जोड़ पर बजने वाली तेज़ ध्वनि इस समस्या का समाधान है। आपको इस बात का बहुत ध्यान रखना होगा कि जिस ध्वनि का आप उपयोग करने की योजना बना रहे हैं, वह दृश्य की प्रकृति के साथ मेल खाए।'
सामान्यतः, यह एक वातावरणीय ध्वनि होती है, लेकिन यदि कोई वातावरणीय ध्वनि दृश्य के अनुरूप न हो, तो आपको वास्तविक ध्वनि से ठीक पहले एक संगीत रचना शुरू करनी होगी। यह स्वाभाविक है कि तेज़ आवाज़ सुनकर दर्शकों की पलकें झपकीं और वे समझ न पाएं कि आवाज़ कहाँ से आई, लेकिन याद रखें, फिल्म में तेज़ आवाज़ वॉल्यूम बढ़ाकर नहीं, बल्कि ध्वनि से पहले क्षणिक मौन रखकर उत्पन्न की जाती है।
उदाहरण के लिए, 'मेरा नाम जोकर' के सर्कस दृश्यों में, वह शेर की दहाड़ की आवाज़ का इस्तेमाल करके दृश्य परिवर्तन को छिपाते थे। यह आवाज़ दृश्य के माहौल का अभिन्न अंग होती थी और बेमेल नहीं लगती थी। मैंने उनसे पूछा था, 'अगर यह सब करने के बाद भी झटका महसूस न हो तो क्या होगा?'
‘तो फिर उस बेवकूफ के साथ ही रहो!’
राज साहब के पास एक अनोखी कला थी; निर्देशक की दूरदृष्टि और संपादक की कुशलता का परिपूर्ण संयोजन। उनकी विशेषज्ञता तब सामने आई जब उन्होंने 'मौन' को संभाला। किसी फिल्म की कहानी में मौन का होना ज़रूरी है ताकि शॉट का प्रभाव बढ़े और पूरे दृश्य पर असर पड़े। संवादों के बीच मौन विराम, या शॉट से पहले या बाद में मौन की अवधि को कम या ज़्यादा करना, दृश्य के सार को बदल सकता है। कुछ दृश्य ऐसे भी होते हैं जिनमें संवाद की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन कहानी में उनका महत्व अपरिहार्य होता है। ऐसे दृश्यों की कल्पना निर्देशक करते हैं और संपादक शॉट्स को इस तरह से जोड़ते हैं कि एक ऐसी प्रभावशाली कहानी बन जाती है जिसमें संवाद की आवश्यकता नहीं होती। यहां तक कि पृष्ठभूमि संगीत का प्रयोग या जानबूझकर उसका न होना भी एक ऐसा निर्णय है जो दर्शकों पर संपादित दृश्य के प्रभाव को बना या बिगाड़ सकता है। इस निर्णय को लेने में निर्देशक राज कपूर और संपादक राज कपूर के बीच मानसिक तालमेल अत्यंत महत्वपूर्ण था।

बॉबी फिल्म में चिंटू और डिंपल के बीच कई ऐसे पल थे – समुद्र किनारे टहलना, चिंटू का डिंपल को बैडमिंटन खेलते देखना, दोनों का गुलमोहर के पेड़ों से सजी खूबसूरत गली से होकर गुजरना, मशहूर 'लाइब्रेरी सीन' और भी बहुत कुछ। ये सभी खामोश पल थे जिनमें प्रेमियों के बीच रोमांस पनपा और दृश्य प्रस्तुति का पूरा श्रेय निर्देशक और संपादक को जाता है। चूंकि इन दृश्यों का स्क्रिप्ट में कहीं जिक्र नहीं था, इसलिए स्क्रिप्ट में सिर्फ 'राजा और बॉबी के बीच रोमांटिक दृश्यों का मोंटाज' लिखा था।

ये सभी दृश्य राज साहब के दिमाग में पनपे थे, और यह एक निरंतर प्रक्रिया थी जिसमें वे मानसिक रूप से ऐसे दृश्य की कल्पना करते और अगले दिन उसकी शूटिंग करते। एक दिन, हम पुणे में स्क्रिप्ट के कुछ खास दृश्यों की शूटिंग कर रहे थे और अचानक उन्होंने कहा, 'मुझे लगता है कि पुणे क्लब की लाइब्रेरी में एक शानदार पल रचा जा सकता है।'

अगली सुबह, हम पुस्तकालय में एक दृश्य की शूटिंग के लिए थे, जिसे राज साहब ने केवल एक रात पहले ही तैयार किया था, और हमारे पास कोई लिखित दृश्य नहीं था। हमें केवल इतना बताया गया था, 'डिंपल पुस्तकालय में एक बुजुर्ग सज्जन के बगल में बैठी पढ़ाई कर रही है, जो पढ़ने में बेहद मग्न हैं। जब चिंटू उससे बात करने आता है, तो बुजुर्ग सज्जन परेशान दिखते हैं और डिंपल चिंटू को यह कहकर बाहर निकाल देती है कि उसे पुस्तकालय में बात नहीं करनी चाहिए। वह बाहर जाता है, एक टूटा हुआ दर्पण ढूंढता है और सूर्य के प्रतिबिंब का उपयोग करके डिंपल को परेशान करता है, जिससे बुजुर्ग सज्जन चिढ़ जाते हैं। हम कल सुबह सबसे पहले इसकी शूटिंग करेंगे।'

मैंने पूछा, 'साहब, उस बुजुर्ग सज्जन के किरदार के लिए, क्या कोई खास अभिनेता है जिसे आप चाहते हैं कि मैं बॉम्बे से लाऊं?'

नहीं! शाम को, शूटिंग के बाद, मैं कुछ दोस्तों के साथ चाय पी रहा था और संयोग से वहाँ एक बोहरी सज्जन, श्री तैयब, मौजूद थे। उनका चेहरा बहुत ही दिलचस्प है और मैंने हमेशा सोचा था कि मैं उन्हें किसी फिल्म में लूंगा क्योंकि मैं उनके चेहरे से मोहित था। मुझे यह भी यकीन था कि वह एक बहुत बुरे अभिनेता होंगे, लेकिन मैं उनके उस स्वाभाविक भाव से मोहित हो गया था जब उनका दांव लगा घोड़ा दौड़ में हार जाता था या उन्हें खुद कोई नुकसान हो जाता था। इस दृश्य की मूल अवधारणा फिल्म में रोमांस को आगे बढ़ाने में योगदान देने वाले एक

क्षण में उनके किरदार का उपयोग करने पर आधारित थी। तो, मैंने एक "गैर-अभिनेता" से "अभिनय" करवाया है और मुझे उम्मीद है कि मैं लोगों को यह विश्वास दिला पाऊंगा कि वह एक अच्छे अभिनेता हैं।

पुस्तकालय वाले दृश्य में, बिना किसी संवाद के एक ही समय में तीन अलग-अलग क्रियाएँ हो रही थीं। डिंपल के चेहरे पर रोशनी पड़ रही थी, चिंटू दर्पण का उपयोग करके रोशनी चमका रहा था और प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच की हरकतों से श्री तैयब परेशान और चिढ़ रहे थे। राज साहब ने श्री तैयब के चेहरे पर परेशान और चिढ़ का भाव लाने के लिए एक मज़ेदार तकनीक का इस्तेमाल किया। कैमरा श्री तैयब की ओर था जबकि राज साहब कैमरे के पीछे बैठे थे और उन्हें बुरी तरह से उपदेश दे रहे थे कि उनके पसंदीदा घोड़े को गधा कहा जाना चाहिए और वह उस घोड़े की वजह से अपना सारा पैसा खो देंगे और कंगाल हो जाएंगे। श्री तैयब को पता नहीं था कि यह सब शूट हो रहा है; हमने एक मिशेल बीएनसी, एक शोर रहित कैमरा, का इस्तेमाल किया और जब राज साहब घोड़े के घिनौने गुणों के बारे में उपदेश दे रहे थे, कैमरा श्री तैयब के अविश्वसनीय और भयानक भावों को कैद करने के लिए चल रहा था!

अंततः, फिल्म में जो संस्करण प्रस्तुत किया गया, वह एक उत्कृष्ट कृति साबित हुआ और अभिनेता श्री तैयब के अभिनय की खूब सराहना हुई। राज कपूर ने बेहद प्रतिभाशाली अभिनेताओं के साथ काम किया था, जो आगे चलकर सितारे बने। उनके पास गैर-अभिनेताओं को भी अभिनेता बनाने की अनूठी क्षमता थी, जो आगे चलकर सितारे बने। यकीन मानिए, ऐसे गैर-अभिनेताओं की एक नस्ल होती है जो कभी सीखते नहीं और हमेशा गैर-अभिनेता ही बने रहते हैं, और वे आज भी मौजूद हैं। ऐसे मूर्ख लोग हमेशा पैदा होते रहेंगे!

निर्देशक राज कपूर ने बिना स्क्रिप्ट या संवाद के कुछ बेतरतीब शॉट्स संपादक राज कपूर को सौंप दिए। अब संपादक को इन बेतरतीब शॉट्स को जोड़कर एक ऐसा सुसंगत रूप देना था जिससे एक प्यारी और हास्यपूर्ण कहानी प्रस्तुत हो सके, साथ ही इस बात का विशेष ध्यान रखना था कि फिल्म की अंतर्निहित भावना को कोई नुकसान न पहुंचे। निर्देशक ने संपादक को केवल दृश्य की शुरुआत और अंत की जानकारी दी थी।

राज साहब ने बिल्कुल शुरुआत से कहानी गढ़ना शुरू किया और उसमें लगातार बदलाव करते रहे। यह प्रक्रिया लगभग दो दिनों तक चली, इस दौरान उन्होंने अपने सहायकों से हर

कहानी पर उनकी राय भी ली। राय स्वीकार करना या अस्वीकार करना उनका अधिकार था, लेकिन अगर वे किसी सुझाव को स्वीकार नहीं करते थे, तो उसका कारण स्पष्ट रूप से बताते थे। यही उनकी महान शिक्षक होने की पहचान थी!

राज साहब के पास आरके स्टूडियो में बनी अपनी सभी पुरानी फिल्मों का बैकग्राउंड म्यूजिक मौजूद था। वे हमेशा अपनी पिछली फिल्मों का बैकग्राउंड म्यूजिक, फिल्म के उस मूक हिस्से में लगाना चाहते थे जिसकी एडिटिंग वे अभी कर रहे थे। उनका कहना था, 'मैं जो बैकग्राउंड म्यूजिक लगाना चाहता हूं, वह अस्थायी है; फाइनल बैकग्राउंड म्यूजिक फिल्म पूरी तरह तैयार होने के बाद ही रिकॉर्ड किया जाएगा। मुझे यह अस्थायी बैकग्राउंड म्यूजिक न केवल एडिट किए गए दृश्यों को बेहतर प्रभाव देने के लिए चाहिए, बल्कि यह उस तरह के बैकग्राउंड म्यूजिक का एक उदाहरण भी होगा जिसकी हमें अंत में आवश्यकता होगी। मूक हिस्सों और मूक दृश्यों की संख्या को देखते हुए, बैकग्राउंड म्यूजिक से फिल्म के प्रभाव का आकलन बहुत हद तक प्रभावित होगा।'

जब हमने रश प्रिंट पर अस्थायी बैकग्राउंड म्यूज़िक ट्रैक लगाया, तो उनकी स्वीकृति अत्यंत आवश्यक थी। स्वीकृति मिलने के बाद, वे रफ बैकग्राउंड ट्रैक के साथ साइलेंट सीक्वेंस को स्टीनबेक पर चलाने के लिए कहते थे। यहाँ, वे सुधार करते थे ताकि दृश्य के आवश्यक जोड़ संगीत परिवर्तन के साथ मेल खाएँ और सही प्रभाव उत्पन्न हो, भले ही बजने वाला संगीत ट्रैक अस्थायी था और बाद में बदल दिया जाना था।

संगीत भी गणित द्वारा नियंत्रित होता है। प्रत्येक बार में संगीत की चार बीट्स होती हैं और धुन में एक निश्चित संख्या में बार होते हैं। मैं यहाँ जो बदलाव कर रहा हूँ, वे अंतिम बैकग्राउंड संगीत रिकॉर्डिंग के लिए एक अतिरिक्त मार्गदर्शन के रूप में काम करेंगे, ताकि बैकग्राउंड स्कोर में बीट्स के बदलाव से तस्वीर में कोई बदलाव न करना पड़े।

यदि अंतिम बैकग्राउंड संगीत सुनने पर संगीत की धुनें या बदलाव ठीक से मेल नहीं खाते हैं, तो हम फिर से इस पर काम करेंगे और रिकॉर्ड किए गए संगीत की धुनों से मेल खाने के लिए चित्र फ्रेम जोड़ेंगे या घटाएंगे, ताकि चित्र में कोई "अचानक रुकावट" या दृश्य व्यवधान न हो। यदि बदलाव करना बिल्कुल आवश्यक हो, चाहे रुकावटें या दृश्य व्यवधान हों या न हों, तो एकमात्र समाधान बैकग्राउंड संगीत ट्रैक पर एक संगीतमय "धमाका" रिकॉर्ड करना होगा,

जिससे दर्शक का ध्यान कुछ पल के लिए हट जाएगा और दृश्य व्यवधान ध्यान देने योग्य नहीं रहेगा।

फाइनल मिक्स के लिए इस धमाकेदार ध्वनि को बैकग्राउंड म्यूजिक के एक अलग लेकिन समानांतर ट्रैक में रखा जाएगा, जिससे राज साहब को अपनी आवश्यकता के अनुसार वॉल्यूम को बढ़ाने या घटाने की सुविधा मिलेगी।

गीत दृश्यों के लिए संपादन भी महत्वपूर्ण है। किसी गीत दृश्य में, यदि कोई पात्र गाते हुए एक शॉट में फ्रेम से बाहर निकल जाता है और राज साहब चाहते हैं कि वह अगले शॉट में फ्रेम में प्रवेश करे, तो वे पात्र के बाहर निकलने को नहीं दिखाते थे, बल्कि केवल गति के माध्यम से निकास का संकेत देते थे और उसे अगले शॉट में प्रवेश करवाते थे। इसका कारण यह था कि संगीत पहले ही रिकॉर्ड हो चुका होता था और अभिनेता एक इंसान था। हर बार जब वह एक फ्रेम से बाहर निकलता है और दूसरे फ्रेम में प्रवेश करता है, तो गति कभी मेल नहीं खाती, और प्रवेश-निकास फ्रेम को मिलाने के लिए संगीत को जोड़ना या घटाना संभव नहीं होता, क्योंकि गीत प्लेबैक पर फिल्माया जाता है जो एक स्थिर कारक है।

मैंने पूछा, 'सर, निकास के बारे में क्या? क्या यह अजीब नहीं लगेगा?' उन्होंने कहा, 'गाने में कुछ भी अजीब नहीं होता। गानों को कई तरह से बदला जा सकता है। एक शॉट किसी खास जगह पर हो सकता है और अगला शॉट कहीं और हो सकता है, या एक शॉट सेट के एक छोर पर हो सकता है और दूसरा शॉट उसी सेट के दूसरे छोर पर, और कोई भी इस बात पर सवाल नहीं उठाएगा कि जगह या सेट पर स्थिति कैसे बदली। यह घटना इसलिए होती है क्योंकि मन लगातार गाना सुन रहा होता है और शॉट बदलने से दर्शक पिछली जगह को भूल जाता है।' यकीन मानिए, कोई ध्यान नहीं देता!

कई बार राज साहब को न केवल गाने की लंबाई कम करनी पड़ती थी, बल्कि दो अंतरों को एक साथ जोड़ना भी ज़रूरी हो जाता था। इसके लिए साउंडट्रैक में बदलाव करना पड़ता था। लंबाई कम करने के लिए या तो ध्वनि को काटना पड़ता था या फिर छंदों की स्थिति बदलने के लिए बिंदु 'A' से बिंदु 'B' तक ध्वनि को जोड़ना पड़ता था। इसमें पूर्ण सटीकता आवश्यक थी क्योंकि साउंडट्रैक में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी बर्दाश्त नहीं की जाती थी। राज साहब यह काम ध्वनि को सुनकर नहीं, बल्कि उसे 'देखकर' करते थे। वे पहले ध्वनि सुनते और लगभग

उन बिंदुओं को चिह्नित करते जहाँ से लंबाई कम करनी होती थी या जहाँ से दो अंतरों को जोड़ना होता था, और फिर अंतिम कट ध्वनि को सुनकर नहीं, बल्कि उसे 'देखकर' करते थे। चूंकि साउंडट्रैक ध्वनि के उतार-चढ़ाव का दृश्य प्रतिनिधित्व था, इसलिए वे सबसे सहज उतार-चढ़ाव को देखकर पहचानते और उसी के अनुसार काटकर जोड़ते थे, जिससे एक सहज संपादित साउंडट्रैक प्राप्त होता था।

एडिटिंग रूम में राज साहब को इस बात का एहसास ही नहीं होता था कि आसपास और लोग बैठे हैं। एडिट किए गए फुटेज देखते हुए जब उन्हें अपनी गलती का एहसास होता, तो वे मन ही मन कहते, 'राज कपूर, तुम बिलकुल बेवकूफ हो!' या फिर और भी अपशब्दों का इस्तेमाल करते। सबसे मजेदार पल तब होता था जब अभिनेता किसी भी शॉट में गड़बड़ कर देते थे, जो होता था, आज भी होता है और हमेशा होता रहेगा। उस समय मौजूद न होने वाले अभिनेता पर गालियों की बौछार हो जाती थी। इसी वजह से मैंने नए अभिनेताओं को एडिटिंग रूम में लाना शुरू किया ताकि वे सुन सकें कि उनके अभिनय की कितनी 'तारीफ' की जा रही है।

संपादन कक्ष की सजावट में बदलाव के साथ ही अंतिम संपादन की शुरुआत हो गई। खिड़कियों को काले कागज से ढक दिया गया और घड़ी हटा दी गई। राज साहब शाकाहारी बन गए, शराब छोड़ दी, ज़्यादा देर तक काम करने लगे और वे संपादन कक्ष में घड़ी पहनकर नहीं आते थे, न ही किसी सहायक को घड़ी पहनने की अनुमति थी। इससे संपादन में शामिल किसी को भी समय का एहसास नहीं होता था, क्योंकि संपादन तब तक चलता रहता था जब तक कि बॉस थक न जाते।

अंतिम संपादन वह प्रक्रिया है जिसमें निर्देशक के रचनात्मक विवेक के अनुसार, लेकिन पटकथा की सीमाओं के भीतर, सभी संपादित दृश्यों को अंतिम क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया में कथा को अंतिम रूप देने के लिए अत्यंत निपुणता की आवश्यकता होती है, ताकि बाद में किसी भी प्रकार के बदलाव की गुंजाइश न रहे।

फिल्म के अंतिम प्रभाव में सबसे बड़ा योगदान पूरी कहानी की गति का था। राज साहब ने इस पर पूरा ध्यान केंद्रित किया और कभी-कभी उन्हें एक शॉट के टेक को बदलना पड़ता था, या शॉट में फ्रेम जोड़ने या घटाने पड़ते थे, या फिर पूरा दृश्य हटाना पड़ता था।

इसी प्रक्रिया के दौरान राज साहब को किसी खास शॉट या मौजूदा शॉट के किसी खास हिस्से की ज़रूरत पड़ती थी। उनकी 'हाथी जैसी याददाश्त' कभी-कभी सहायकों के लिए किसी बुरे सपने से कम नहीं होती थी। वे किसी खास शॉट या हिस्से की मांग करते और हम उसे ढूंढने में घंटों लगा देते, लगभग इस बात से आश्वस्त होते कि ऐसा शॉट मौजूद ही नहीं है, लेकिन आखिरकार जब हम उसे ढूंढ लेते, तो यह एहसास होता कि वे हमेशा सही होते थे!

मेरा नाम जोकर की फाइनल एडिटिंग के दौरान, उन्होंने अचानक पूछा, 'भीड़ वाले दृश्यों में से जो शॉट इस्तेमाल नहीं किए गए हैं, उनमें एक मिड-शॉट है जिसमें सभी लोग कैमरे के दाईं ओर देख रहे हैं, लेकिन नीली शर्ट पहने एक आदमी कैमरे के बाईं ओर देख रहा है। मुझे उस शॉट का डेढ़ फीट, एक सेकंड का कट चाहिए।'

हमारे पास सर्कस के लगभग 50,000 फीट और 6 घंटे लंबे भीड़ के शॉट्स थे, और सर्कस की शूटिंग समाप्त होने के दो साल बाद और संपादित फिल्म को कई बार देखने के बाद, उस व्यक्ति को वह एक छूटा हुआ शॉट विस्तार से याद था!

सभी सहायक उस शॉट को ढूंढने में जुट गए जिसकी उन्हें ज़रूरत थी। हमने लगभग सात घंटे हर एक कटिंग को देखने में बिताए। बॉस ने हमें चाय पीने के लिए बुलाया, फिल्म के अन्य दृश्यों के बारे में बात की लेकिन उस कटिंग का ज़िक्र तक नहीं किया जिसकी हम तलाश कर रहे थे। चाय खत्म होते ही उन्होंने कहा, 'तुम लोग ज़रूर बहुत थके हुए होगे और काफ़ी देर हो चुकी होगी, तो चलो जल्दी करते हैं और शॉट ढूंढते हैं।' लगभग तीन घंटे बाद, वर्लिकर नाम का एक सहायक, जो पूरी प्रक्रिया के दौरान सोता रहा था, चमत्कारिक रूप से शॉट लेकर आ गया!

हम सब हैरान थे और काला जी गुस्से से आग बबूला थे। हमें एहसास हुआ कि उन्होंने बहुत पहले ही वांछित शॉट ढूंढ लिया था, उसे अपनी जेब में रख लिया, सो गए और अपनी मर्जी से शॉट लेकर वापस आ गए।

राज साहब का ध्वनि और रीलों के संबंध में एक नियम था। वह यह था कि कोई भी रील किसी गीत या पृष्ठभूमि संगीत की आवश्यकता वाले हिस्से से शुरू नहीं होगी, और न ही कोई रील किसी गीत के साथ समाप्त होगी या पृष्ठभूमि संगीत बजते हुए समाप्त होगी। उस समय, रीलों को दो अलग-अलग प्रोजेक्टरों पर लोड किया जाता था और रीलों के बीच मैन्युअल बदलाव

होता था। मैन्युअल बदलाव के लिए दो प्रोजेक्टरों के लिए दो अलग-अलग ऑपरेटरों की आवश्यकता होती थी। जैसे ही एक रील समाप्त होती थी, दूसरी रील को दूसरे प्रोजेक्टर पर निर्बाध रूप से शुरू होना होता था। प्रोजेक्टर A से B में बदलाव में अक्सर थोड़ी देरी हो जाती थी, जिसके कारण गीत या पृष्ठभूमि संगीत के समाप्त होने या शुरू होने पर होने वाली लड़खड़ाती ध्वनि दर्शकों को बहुत परेशान करती थी। राज साहब ऐसा होने नहीं देते थे और इसीलिए वे रीलों को लेकर बहुत सतर्क रहते थे।

अंतिम साउंड मिक्सिंग से पहले, दूसरा महत्वपूर्ण काम साउंड इफ़ेक्ट ट्रैक, आकस्मिक और अन्य ध्वनियों को रिकॉर्ड करना था, ताकि विज़ुअल्स के साथ तालमेल बिठाते हुए एक समग्र ऑडियो अनुभव तैयार किया जा सके। संवाद और संगीत के साथ मिलाने पर यह एक समेकित ऑडियो ट्रैक बनता था। इसमें वातावरण की ध्वनियाँ, पक्षियों की आवाज़, हवा की आवाज़, यातायात की आवाज़ आदि, और फिल्म के विज़ुअल से जुड़ी ध्वनियाँ, जैसे कदमों की आवाज़, गुजरती कारों की आवाज़, दरवाजों के खुलने और बंद होने की आवाज़ आदि शामिल थीं। इसमें वातावरण ट्रैक के लिए या दृश्य में दिखाई देने वाले जानवर के साथ जानवरों की आवाज़ें भी शामिल थीं, और 'मेरा नाम जोकर' में इन जानवरों की आवाज़ों की भरपूर आवश्यकता थी।

मैं एडिटिंग रूम में इफेक्ट ट्रैक बिछाने की कोशिश कर रहा था, तभी राज साहब खान साहब के साथ अंदर आए और उन्होंने कहा, "गाने 'ऐ भाई ज़रा देख के चलो' में, जब जोकर शेर की पोशाक पहने एक आदमी के साथ रिंग में आता है और बोल आते हैं, 'क्या है कर्शिमा कैसा खिलवार है', तो मुझे लगता है कि हमें संगीत के ऊपर शेर की दहाड़ की आवाज़ की ज़रूरत है।"

राज साहब ने जवाब दिया, 'शानदार विचार है, खान साहब! इफेक्ट ट्रैक में राहुल की शेर की दहाड़, गाने के सुर के साथ ही होनी चाहिए।'

बॉस के इस निर्देश ने मुझे उलझन में डाल दिया। संगीत में शेर की दहाड़ कैसे ढूँढूँ? मैंने घंटों और रातों की नींद हराम कर दी, बस संगीत में शेर की दहाड़ ढूँढने की कोशिश करता रहा। आखिरकार, मैंने संगीत में दहाड़ ढूँढने की कोशिश छोड़ दी और उसे साउंडट्रैक में शामिल

नहीं किया, और मिक्सिंग के समय बॉस के गुस्से का सामना करने के लिए मन ही मन तैयार हो गया।
जब मिक्सिंग के लिए रील में धागा डाला गया और शेर की आवाज के बिना गाना बजने लगा, तो खान साहब ने रील रोक दी और मुझसे गुस्से से पूछा, 'तुम्हें खास तौर पर शेर की दहाड़ (सुर में) डालने के लिए कहा गया था, लेकिन वह गायब है!'
मैंने शर्मिंदा होकर उनसे कहा, 'सर, मैंने दो दिन और दो रातें एक उपयुक्त संगीतमय गर्जना खोजने की कोशिश में बिताईं, लेकिन मुझे अफसोस है कि मैं ऐसा नहीं कर सका।'
राज साहब ने भी गुस्से में कहा, 'आपने इस गाने में जो प्रभाव पैदा करना चाहता था, उसे पूरी तरह से बर्बाद कर दिया!'
मैं फूट-फूटकर रोने को तैयार थी, लेकिन इसके बजाय मैंने झुंझलाहट भरी हंसी के साथ जवाब दिया, 'सर, मुझे बहुत खेद है, लेकिन मैंने सचमुच अपनी पूरी कोशिश की।'
राज साहब ने खान साहब की ओर मुड़कर कहा, 'अरे, उसे चिढ़ाने की हमारी पूरी योजना धरी की धरी रह गई। वह हंस रहा है, रो नहीं रहा जैसा हमने सोचा था।'
और मैं फूट-फूटकर रोने लगी!

जैसे दंबरा नाइट्स का अंत 'जागो मोहन प्यारे' गीत की धुन के साथ होता था, उसी तरह फाइनल एडिटिंग के दौरान हर सेशन ठीक इसी तरह समाप्त होता था:

राज साहब, 'खिड़की से काला पर्दा हटा दें।'
मास्क हटाते ही तेज धूप दिखाई दी, ‘ओह, सुबह हो गई! हम लगभग 20 घंटे से काम कर रहे हैं। आप सबको इतनी देर तक जगाए रखने के लिए मुझे बहुत खेद है और मैं वादा करती हूँ कि ऐसा दोबारा नहीं होगा। मैं एक ड्राइवर को आप सबको घर छोड़ने के लिए कह रही हूँ, जिसे सबसे आखिर में छोड़ा जाए, कृपया आराम करें, लेकिन एक घंटे से ज्यादा समय न लें क्योंकि आपको बाकी सबको लेना है और स्टूडियो वापस आना है। आप सबको इतना परेशान करने के लिए क्षमा करें।’

फीनिक्स: राख से पुनरुत्थान

संपादन के साथ ही राज कपूर की फिल्म निर्माण तकनीकों पर आधारित पाठ समाप्त होते हैं। ये पाठ तो बस एक झलक मात्र हैं; राज साहब की प्रतिभा के बारे में अभी बहुत कुछ बताया जाना बाकी है। और इसे बताने का इससे बेहतर तरीका क्या हो सकता है कि मैं उस ट्रेंडसेटिंग, प्रतिष्ठित और कल्ट फिल्म बॉबी की शुरुआत से लेकर रिलीज तक के अपने अनुभवों को साझा करूं।

फिल्म 'मेरा नाम जोकर' बॉक्स ऑफिस पर अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाई थी और राज साहब बेहद निराश थे, लेकिन हतोत्साहित नहीं थे।

उन्होंने कहा, 'एक निर्देशक के लिए हर फिल्म एक बच्चे के समान होती है। एक माँ जो बच्चों को जन्म देती है, उन्हें पूरी लगन और उत्साह से पालती है, ताकि हर बच्चा जीवन में सफलता पाने के एकमात्र लक्ष्य के साथ दुनिया में कदम रखे। अगर उसे एहसास होता है कि उनमें से कोई एक बच्चा दूसरों जितना प्रतिभाशाली नहीं है और जीवन में पीछे रह गया है, तो वह उस बच्चे को त्याग नहीं देती बल्कि उसे अपने दिल के सबसे करीब रखती है। मेरा नाम जोकर, एक ऐसी फिल्म जो पूरी ईमानदारी से बनाई गई थी लेकिन दर्शकों से जुड़ नहीं पाई, मेरे लिए वही बच्चा है। मैं इसे कभी नहीं भूलूंगा बल्कि इसे अपने दिल के करीब रखूंगा, अपनी अन्य फिल्मों की तरह, या शायद उससे भी ज्यादा। मुझे राख से फीनिक्स की तरह उठना है और दुनिया को जीतना है!'

राजेंद्र सर, धरम जी, मनोज कुमार सर, पद्मिनी, सिमी गरेवाल और दारा सिंह जी जैसे सितारों ने राज कपूर के साथ काम करने का मौका मिलने पर अपनी व्यस्त कार्यसूची को समायोजित करने के लिए हर संभव प्रयास किया था। राज कपूर द्वारा बनाई गई किसी भी फिल्म में काम करने पर सितारे बेहद खुश होते थे।

हालांकि, उनका मानना था, 'सितारे फिल्म नहीं बनाते, सही अवधारणा और कहानी ही दर्शकों को लुभाती है। 'मेरा नाम जोकर' में हमारे पास सबसे बड़े सितारे थे, लेकिन मैं कहानी और दर्शकों के बीच एक जुड़ाव नहीं बना सका, भले ही अवधारणा और कहानी मेरे दिल से निकली थी। इसलिए, मेरे पास एक और अवधारणा है जो मेरे दिल की गहराइयों से निकली है

और मैं चाहता हूं कि दर्शक इसका अनुभव करें। एक अनोखा, अनछुआ रास्ता, एक किशोर प्रेम कहानी!'

एक दिन उन्होंने वित्त, निर्माण और निर्देशन की अपनी पूरी टीम को कॉटेज में बुलाया। एक उत्साहित बच्चे की तरह, उन्होंने हमें अपनी अगली फिल्म के लिए चुने गए नए रास्ते के बारे में बताया, 'मैं एक उत्कृष्ट प्रेम कहानी बना रहा हूँ। हर प्रेम कहानी में प्रेमियों के बीच स्वाभाविक रूप से एक विरोध की आवश्यकता होती है, और हमारी फिल्मों में हमेशा धन, संपत्ति या धर्म को विरोध का मूल आधार बनाया गया है, लेकिन मेरे किशोर प्रेम में इनमें से कोई भी घिसा-पिटा आधार नहीं होगा; मुझसे यह मत पूछिए कि विरोध का आधार क्या होगा क्योंकि मुझे भी अभी तक इसका पता नहीं है।'

उन दिनों, धनी परिवारों में कैथोलिक दाइयों का होना बहुत आम बात थी, क्योंकि वे अंग्रेजी बोलती थीं और स्वभाव से ही विनम्र थीं। इसीलिए उन्हें बच्चों की देखभाल के लिए नियुक्त किया जाता था, जिससे बच्चों के विकास पर उनका प्रभाव पड़ता था। यह विचार राज साहब को बहुत पसंद आया और यही फिल्म का आधार बना। फिल्म के अनुसार, लड़के के माता-पिता एक बेहद धनी परिवार से होंगे और लड़की उस पूर्व दाई की पोती होगी जिसने लड़के का पालन-पोषण किया था।

काला जी ने टिप्पणी की, ‘राज साहब, तो किशोरों के प्रेम का विरोध धर्म के आधार पर होगा? इससे धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँच सकती है।’ राज साहब ने जवाब दिया, ‘बिल्कुल नहीं! आप जो सोच रही हैं वह घिसा-पिटा मुद्दा है, लेकिन मैं एक अलग तरह के विरोध पर विचार कर रहा हूँ। लड़की का पिता, जो गवर्नेंस का बेटा है, एक बहुत अमीर मछुआरा होगा जो मछुआरों की तरह जीवन जीता है, उसकी बोली थोड़ी रूखी है लेकिन उसमें सादगी अंतर्निहित है, जबकि लड़के के माता-पिता समाज के उस वर्ग से हैं जो बहुत दिखावटी और संभ्रांत है। हालाँकि लड़की के पिता के पास लड़के के पिता के बराबर ही धन-दौलत है, लेकिन उनकी दौलत ने उन्हें अपने साधारण दिनों को भुला नहीं दिया है, इसलिए प्रेमियों के बीच विवाद का कारण धन या धर्म नहीं बल्कि परवरिश होगी!’

राज साहब ने मन बना लिया था कि यह फिल्म चिंटू यानी ऋषि कपूर की पहली फिल्म होगी, और अब उन्हें एक ऐसी नई लड़की की जरूरत थी जो अच्छी अभिनेत्री हो, बेहद खूबसूरत हो और एक कैथोलिक लड़की के व्यक्तित्व में फिट बैठती हो।

तुरंत ही आरके के वित्तीय नियंत्रक रमन साहब उठ खड़े हुए और गुस्से से इस विचार का विरोध करते हुए बोले, 'कंडम, कंडम! बकवास! बहुत बुरा! कहानी अच्छी है, लेकिन इसमें बहुत पैसा खर्च होगा और चिंटू एक नई लड़की के साथ डेब्यू कर रहा है, तो कौन सा वितरक इस प्रोजेक्ट के लिए पैसा देगा? चिंटू के लिए हम बाद में एक छोटी और कम बजट वाली फिल्म की योजना बनाएंगे, लेकिन अभी, मेरा नाम जोकर की असफलता के बाद, हमें तुरंत एक दमदार स्टार कास्ट की जरूरत है ताकि हमें वितरकों से पैसा मिल सके और हम अपना कर्ज चुका सकें। आप धर्मेंद्र और हेमा मालिनी को प्रेमियों के रूप में क्यों नहीं लेते?'

राज साहब ने गुस्से से जवाब दिया, 'धर्मेंद्र और हेमा मालिनी किशोर प्रेमियों की भूमिका निभाएंगे? रमन साहब, लगता है 'मेरा नाम जोकर' की असफलता ने आपको पागल कर दिया है और मैं, जो सबसे ज़्यादा प्रभावित हुआ हूँ, पूरी तरह से होश में हूँ। मैंने फिल्म निर्माता होने के नाते इस स्टूडियो को बनाने के लिए पैसा, प्रतिष्ठा और सम्मान कमाया है, और एक सच्चे फिल्म निर्माता के लिए पैसा सबसे कम मायने रखता है। जब मैं कोई फिल्म बनाता हूँ, तो मैं उसी में मग्न हो जाता हूँ, खाता-पीता हूँ और उसी के बारे में सोचता रहता हूँ, और अभी तो मैं बस इसी किशोर प्रेम कहानी को जी रहा हूँ। इस फिल्म को बनाने के लिए मैं अपनी सारी संपत्ति गिरवी रख दूँगा और बेच दूँगा, और अगर इससे भी काम नहीं बना, तो मैं भीख माँगूँगा, उधार लूँगा और चोरी भी करूँगा। मुझसे लिखित में ले लीजिए कि एक फिल्म में मिली हार ने मेरी प्रतिभा को कम नहीं किया है और न ही उस पर से मेरा विश्वास टूटा है। मैं इस फिल्म को पूरी ईमानदारी और निष्ठा से बनाऊँगा और अगर यह भी असफल रही, तो मैं तीसरी फिल्म बनाने के लिए फिर से पैसा जुटा लूँगा।' तो, आज के बाद, इस कमरे में कोई भी फिल्म के वित्तीय पहलुओं पर चर्चा नहीं करेगा।'

फिल्म के लिए धन जुटाने के लिए, उन्होंने एक बड़े समूह के साथ समझौता किया, जिसने राज कपूर की फिल्मों से शुरुआती कमाई की थी और ब्रिटेन के सबसे अमीर भारतीय परिवारों में से एक के रूप में जाना जाता था। हालांकि, उनके समझौते बेहद कठोर थे और उनमें निर्माता

को अपनी पूरी संपत्ति गिरवी रखनी पड़ती थी। उनकी धूर्त मानसिकता ने यह सुनिश्चित किया कि निर्माता की सारी कमाई उन्हीं के पास हो और फिर भी वे उसके द्वारा उत्पन्न देनदारी से मुक्त न हों। इन खतरों से अवगत होने के बावजूद, राज साहब ने उनसे अत्यधिक ब्याज दर पर ऋण लिया, जिस पर हर तीन महीने में चक्रवृद्धि ब्याज लगता था, और साथ ही अपनी सभी संपत्तियों पर उनके पक्ष में गिरवी भी रख दी! लेकिन इससे उन्हें फिल्म के लिए अपनी इच्छानुसार पैसा खर्च करने से कोई रोक नहीं पाया।

हमने मुख्य भूमिका निभाने के लिए एक लड़की की तलाश शुरू की। हमने इतने सारे स्क्रीन टेस्ट लिए कि हम पागल हो गए; मुझे सही संख्या भी याद नहीं है। हर दूसरे दिन राज साहब कहते, 'राहुल, कल ऑडिशन लेना है।' वह हर लड़की का ऑडिशन लेने के लिए वहाँ मौजूद रहना चाहते थे क्योंकि केवल वही जानते थे कि उन्हें वास्तव में क्या चाहिए।

राज कपूर की करीबी दोस्त मुन्नी धवन आंटी, अपने पारिवारिक मित्र चुन्नीभाई कपाड़िया को उनकी पत्नी बिट्टी बेन और बेटी डिंपल के साथ लेकर आई थीं, ताकि वे राज कपूर से मिल सकें और शहर का भ्रमण कर सकें, क्योंकि चुन्नीभाई 'बॉस' के बहुत बड़े प्रशंसक थे। मुन्नी आंटी उन्हें दरअसल इसलिए लाई थीं ताकि राज साहब उनकी बेटी डिंपल को देख सकें, क्योंकि डिंपल को अभिनय का बहुत शौक था।

जब वे चले गए, तो राज साहब ने मुझसे पूछा, 'उस लड़की के बारे में आपका क्या विचार है?'

मैंने जवाब दिया, 'वह बहुत खूबसूरत है।'

उन्होंने पूछा, 'क्या आपको लगता है कि हमें उसका ऑडिशन लेना चाहिए?'

मेरे पास उससे सहमत होने के अलावा कोई विकल्प नहीं था क्योंकि उसने मुझसे यह पूछा कि क्या हमें उसका ऑडिशन लेना चाहिए या नहीं, यह इस बात का संकेत था कि उसने ऑडिशन आयोजित करने का मन बना लिया था।

राज साहब ने उनका ऑडिशन लिया; तकनीकी टीम और डब्बू साहब भी ऑडिशन में मौजूद थे। हालाँकि वह बहुत उत्सुक लग रही थीं, बॉस को छोड़कर हम सभी को लगा कि वह औसत दर्जे की हैं, लेकिन स्क्रीन पर ऑडिशन देखने के बाद हमारी राय बदल गई – वह दिखने में तो खूबसूरत थीं, लेकिन एक बुरी अभिनेत्री!

राज साहब ने ऑडिशन तीन बार देखा और कहा, 'मुझे बॉबी मिल गया है।'

मैं पूरी तरह से हैरान था, इसलिए मैंने उससे पूछा, 'डिंपल का ऑडिशन देखते हुए, आपने बॉबी नाम की एक और लड़की के बारे में कैसे सोचा और उसे फाइनल कर लिया?'
'मुझे बॉबी मिल गई है, जो फिल्म का शीर्षक होगा और मुख्य भूमिका डिंपल कपाडिया निभाएंगी।'
हम अवाक रह गए और उसे समझाने की पूरी कोशिश की।
'सर, मुझे पूरा यकीन है कि हम किसी और को ढूंढ लेंगे।'
'पापा, वो ठीक है लेकिन हमने ऑडिशन में उससे बेहतर लड़कियों को भी देखा है।'
'Raj Sahab aap ke calibre ki actress bilkul nahin hai.'
उन्होंने शांतिपूर्वक हमारी सभी शिकायतें सुनीं और हमें सरल शब्दों में जवाब दिया, 'जो मैं उनमें देखता हूँ, वह आप लोगों में देखने की क्षमता नहीं है। यही आप सब में और मुझमें अंतर है।'
उनका और विरोध करने का कोई मतलब नहीं था क्योंकि उन्होंने अपना मन बना लिया था और राज कपूर की फिल्मों से मेरा परिचय यह था कि वह एक 'जादूगर' हैं, इसलिए वह निश्चित रूप से हमें वह एहसास दिलाएंगे जो हमने ऑडिशन में नहीं देखा था।
फिल्म में डिंपल को लॉन्च करने की प्रक्रिया में राज साहब द्वारा निर्देशित हर फिल्म को देखना शामिल था ताकि वह समझ सकें कि राज साहब अपनी नायिकाओं से क्या अपेक्षा रखते हैं। बॉबी की पटकथा राज साहब के.ए. अब्बास और वी.पी. साठे के सहयोग से पूरी कर रहे थे। चिंटू और डिंपल को तकनीकी टीम के साथ कार्यशालाओं और परिचय सत्रों से गुज़ारा जा रहा था।
राज साहब ने अपनी तकनीकी टीम और अभिनेताओं को बॉबी की प्रारंभिक कहानी सुनने के लिए बुलाया। कहानी बहुत अच्छी लगी और हमें पूरा यकीन था कि राज साहब द्वारा पटकथा में किए गए सभी सुधारों के साथ, उन्हें एक शानदार कृति मिल जाएगी।
After the narration, when Chintu and Dimple had left, Khan Sahab said, 'Raj Sahab, yeh film Chintu ka launching pad hai aur Dimple ka role bahut jyada behtereen hai, aur phir title bhi ek feminine word hai, Bobby. Aap ko lagta hai, yeh Chintu ke saath sahi ho raha hai?'

राज साहब ने जवाब दिया, 'खान साहब, मैं एक फिल्म बना रहा हूँ और आप मेरे सबसे पुराने साथियों में से एक होने के नाते यह भली-भांति जानते हैं कि जब मैं फिल्म बनाता हूँ, तो मेरे लिए कोई परिचित, मित्र या रिश्तेदार मायने नहीं रखते। फिल्म मेरे लिए सर्वोपरि है। चिंटू मेरा बेटा होने के नाते मुझे पटकथा या शीर्षक के स्वाभाविक प्रवाह में कोई बाधा नहीं डाल सकता, लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि चिंटू, जो एक असाधारण अभिनेता है, अब तक की किसी भी नवोदित फिल्म से कहीं बेहतर प्रदर्शन करेगा।'

राज साहब एक ऐसे संवाद लेखक की तलाश में थे जो पटकथा के लिए उनके द्वारा परिकल्पित नए दृष्टिकोण के अनुरूप काम कर सके। राज साहब ने कई इच्छुक लेखकों से मुलाकात की और अंततः माधुरी पत्रिका के पत्रकार और फोटोग्राफर जैनेंद्र जैन साहब को चुना। उन्हें कुछ नमूना दृश्य दिखाए गए और राज साहब जैन साहब के लेखन शैली और भाषा के प्रयोग से बहुत प्रभावित हुए।

इस तरह हम फिल्म की अंतिम कास्टिंग तक पहुंचे। प्राण साहब का व्यक्तित्व और उनके दमदार अभिनय ने उन्हें चिंटू के पिता, श्री नाथ की भूमिका के लिए स्वाभाविक पसंद बना दिया। उनकी पत्नी के लिए, बॉस को एक ऐसी महिला की ज़रूरत थी जिसका चेहरा और व्यवहार एक संभ्रांत सामाजिक महिला के किरदार में फिट बैठता हो, जो घर की जिम्मेदारियों से ज़्यादा किटी पार्टियों में हिस्सा लेती हो। कई मुलाकातों और ऑडिशन के बाद, सोनिया साहनी जी को श्रीमती नाथ की भूमिका के लिए चुना गया। श्रीमती नाथ की एक युवा किटी पार्टी दोस्त, नीमा के किरदार के लिए, जिसे बेहद आकर्षक होना ज़रूरी था, बेहद प्रतिभाशाली अभिनेत्री अरुणा ईरानी राज साहब द्वारा चाही गई चरित्र संरचना में बिल्कुल फिट बैठती थीं। अनुभवी अभिनेत्री दुर्गा खोटे जी एक ऐसी अभिनेत्री थीं जिन पर राज साहब को पूरा भरोसा था। उन्होंने हमें बताया कि जब बॉबी की अवधारणा उनके मन में आई, तो वे केवल उन्हें ही श्रीमती ब्रागांज़ा, चिंटू की गवर्नेस और डिंपल की दादी की भूमिका में देख सकते थे। इससे केवल श्री ब्रागांज़ा, डिंपल के पिता और दुर्गा खोटे जी के बेटे, ही बचे। अब राज साहब ने कहा कि मिसेज ब्रागांजा की तरह उन्होंने भी डिंपल के पिता की भूमिका के लिए प्रेम नाथ जी को तब फाइनल कर लिया था जब इस कॉन्सेप्ट की शुरुआत हुई थी।

बॉबी फिल्म में चुने गए सभी कलाकार स्टूडियो आए और राज साहब से मिले, जिन्होंने उनके साथ किरदारों की रूपरेखा पर चर्चा की और सभी कलाकार अपनी भूमिकाओं को लेकर खुश और उत्साहित थे। प्रेम नाथ जी एकमात्र अपवाद थे। राज साहब द्वारा उन्हें किरदार के बारे में बताने के बाद, उन्होंने कहा, 'बहुत अच्छा, लेकिन मुझे और विस्तार से सुनने की ज़रूरत है क्योंकि मुझे अपने किरदार को और निखारना है। इसके लिए, आप कल शाम पांच बजे 'नगरपालिका' के लेखक को वर्सोवा स्थित मेरी झोपड़ी में भेज दें।'

राज साहब ने मुझे जैन साहब के साथ कहानी सुनाने के लिए कहा, लेकिन यह कहते हुए वे लगातार हंसते रहे। 'मेरे जीजा प्रेम नाथ तो सनक और पागलपन की कगार पर पहुंच गए हैं!' दिल खोलकर हंसते हुए उन्होंने आगे कहा, 'मुझे उम्मीद है कि प्रेम से हुई इस मुलाकात से जैन घबराएंगे नहीं और सही सलामत वापस आएंगे।' राज साहब ठहाकों से लोटपोट हो गए।

उनके घर जाते समय जैन साहब ने मुझसे एक अजीब सवाल पूछा, 'बब्बू साहब, प्रेम जी ठीक हैं ना?'

मुझे सवाल सुनकर हैरानी हुई और इसलिए मैंने उनसे पूछा, 'ठीक है मतलब?'

He replied awkwardly, 'Maine suna hai ki wo thode se jhakki hain.' I had great difficulty controlling my laughter in light of what Raj Sahab had said. Jain Sahab carried on, 'Aaj milunga pehli baar. Maine itna suna hai ki unko zyada sawaal nahi puchna chahiye nahi toh who kabhi haath paanv bhi ghuma dete hain.'

उन्हें और डराने के लिए, अपनी हंसी को मुश्किल से रोकते हुए, मैंने कहा, 'मैंने भी यही सुना है, जैन साहब।'

'Babbu, agar woh mere saath violent ho gaye, zara mujhe sambhal lena!'

जैसे ही हम उनकी झोपड़ी में दाखिल हुए, उन्होंने जैन साहब से कड़े शब्दों में कहा, 'कहानी सुनाने से पहले, मैं जानना चाहता हूँ कि मेरा किरदार क्या है।' यह बातचीत प्रेम नाथ जी के सोफे पर बैठे होने, उनके बगल में एक अजीब से दिखने वाले वर्दीधारी अंगरक्षक के खड़े होने और हमारे दरवाजे पर खड़े होने के बीच हो रही थी! जैन साहब ने कहा, 'वह एक मछुआरा है, लेकिन बहुत अमीर आदमी है। वह मछुआरों की बस्ती में एक झोपड़ी में सादा जीवन जीता है,

बहुत दयालु है और अपनी दौलत का दिखावा पसंद नहीं करता। बहुत ही सीधा-सादा आदमी है, जो भी सोचता है बोलता है और लोग उसे इसी वजह से पसंद करते हैं। उसे रम बहुत पसंद है और...' प्रेम नाथ जी ने तुरंत कहा, 'बॉन्ड! शराब की दुकान जाओ और रम की दो बोतलें ले आओ।' बॉन्ड ने अपने मालिक को सलाम किया और प्रेम नाथ जी के साथ बाहर निकल गया, प्रेम नाथ जी मुँह से संगीत की नकल कर रहे थे!

दुबले-पतले शरीर वाले बॉडीगार्ड का नाम 'बॉन्ड' होना बहुत मज़ेदार था। इस आदमी के सीने पर कई बैज और एक नेमप्लेट लगी थी जिस पर लिखा था, 'जेम्स बॉन्ड, प्रेम नाथ का एडीसी'। इसमें कोई हैरानी नहीं कि वह सूट पहनता था, जो निश्चित रूप से सैविल रो में सिला हुआ नहीं था, और वह एस्टन मार्टिन जैसी महंगी कार के बजाय दोपहिया स्कूटर पर घूमता था!

झोपड़ी वाले दृश्य पर वापस आते हुए, प्रेम नाथ जी हारमोनियम बजा रहे थे और कोई राग गा रहे थे (जैन साहब खड़े थे क्योंकि उन्हें बैठने के लिए नहीं कहा गया था) तभी फोन की घंटी बजी। प्रेम नाथ जी अपने बेसुरी गायकी और हारमोनियम वादन में इतने मग्न थे कि मैंने फोन उठाया और संयोग से राज साहब का फोन था।

‘Kya hua, Prem ne sun liya?’

‘Nahin, shuru nahin hua.’

‘Shuru nahin hua?’ It had been a long time.

‘Sir, wait kar rahe hain. Kyuki unhone basic character suna aur James Bond se rum mangwaya hai.’

‘Kya? Rahul kahin iss pagle ke saath tum bhi toh pagal nahi ho gaye? Aur Jain zinda hai, behosh ho gaya ya usne khudkhushi kar li?’ As usual, Boss was in peals of laughter and disconnected the phone.

जब मैं टेलीफोन रूम से बाहर आया, तो प्रेम नाथ जी और जैन साहब वहाँ नहीं थे, लेकिन जेम्स बॉन्ड वापस आ गया था और उसने कहा, 'सर, वे बाथरूम में आपका इंतज़ार कर रहे हैं।' जैसे ही वह मुझे बाथरूम की ओर ले गया, वह मार्च कर रहा था, लेकिन इस बार खुद ही तुरही बजा रहा था। यह एक अजीबोगरीब स्थिति थी, लेकिन मुझे कभी एहसास नहीं हुआ था कि स्थिति और भी अजीब होने वाली है। प्रेम नाथ जी पूरी तरह से कपड़े उतारकर रम की

बोतल के साथ नल के नीचे बैठे थे। जैन साहब बाथरूम की दहलीज पर बैठे थे, जेम्स बॉन्ड सावधान मुद्रा में खड़ा था, हाथ से सलामी दे रहा था, और मैं एक स्टूल पर बैठा था। बाथरूम के लिए यह बहुत ही अवास्तविक सा माहौल था।

प्रेम नाथ जी ने फिर नल चालू किया जिससे पानी उनके नंगे शरीर पर गिरने लगा और वे रम पीते रहे। उनके अनुसार, उन्होंने ब्रागांज़ा के किरदार के लिए सही माहौल बना दिया था और जैन साहब को ज़ोर से आदेश दिया, 'हथियार पेश करो!'

बेचारे जैन साहब को समझ नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है और मैंने उनके कान में फुसफुसाकर कहा, 'सर, कृपया वर्णन करना शुरू कीजिए।'

जब कहानी खत्म हुई, तो प्रेम नाथ जी अचानक उछल पड़े, क्योंकि वे रम की दूसरी बोतल पी चुके थे, और घर के अंदर और बाहर लॉन में इधर-उधर दौड़ने लगे। वे अपने किरदार में जो बारीकियां लाएंगे, उसके चलने और बोलने के अंदाज के बारे में बड़बड़ा रहे थे। जैन साहब ने धीरे से कहा, 'बाबू, जब भी प्रेम साहब को नया सीन सुनाना होगा तो हर बार यही चीज होगी क्या?' वे सचमुच बहुत डरे हुए थे और अगर मैंने 'हां!' कह दिया होता, तो राज साहब ने जो पूछा था, वही असल जिंदगी में हो जाता, वे फिल्म छोड़ देते, बेहोश हो जाते या आत्महत्या कर लेते!

जब मैं स्टूडियो वापस गया और राज साहब से मिला, तो मैंने उन्हें कहानी सुनाने से लेकर उनके किरदार का 'जश्न मनाने' तक का सारा अजीबोगरीब वाकया बताया। राज साहब हँसे नहीं, बल्कि आह भरते हुए बोले, 'खैर, हम सबको उनके इस अजीब व्यवहार को बर्दाश्त करना ही पड़ेगा, लेकिन आपको यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वह एक बेहद प्रतिभाशाली अभिनेता हैं, और जिस तरह माता-पिता शरारती लेकिन बेहद प्रतिभाशाली बच्चों को संभालते हैं, मुझे भी उनके साथ नरमी से पेश आना होगा।' तो, निर्देशक, जो नए कलाकारों के लिए पिता समान थे, अब एक शरारती लेकिन प्रतिभाशाली बच्चे के पिता की भूमिका भी निभाने वाले थे।

कलाकारों का चयन पूरा हो चुका था, नए प्रतिभाशाली मुख्य कलाकार चुन लिए गए थे और पटकथा भी लिख ली गई थी, जिसके बारे में हम जानते थे कि बॉस के उर्वर मस्तिष्क को जब

भी और प्रेरणा मिलेगी, उसमें बदलाव होते रहेंगे। फिल्म अब शूटिंग शुरू करने के लिए तैयार थी।

बॉबी*: एपिसोड 1*

‘मैं शायर तो नहीं’ गाना बॉबी की शुरुआती शूटिंग के शेड्यूल में शामिल था। मुख्य अभिनेत्री की तलाश तो पूरी हो चुकी थी, लेकिन चिंटू के किरदार के लिए सही आवाज की तलाश जारी थी। राज साहब का मानना था, और यह बिल्कुल सही था, कि नए चेहरे के लिए एक नई आवाज का होना जरूरी है, क्योंकि इससे नवोदित अभिनेता को एक नया और अनूठा रूप मिलेगा। लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने कई आवाजों का ऑडिशन लिया, लेकिन संगीत की गहरी समझ रखने वाले राज साहब को संतुष्ट करना बहुत मुश्किल था। आखिरकार, फिल्म और टेलीविजन संस्थान (एफआईआर) के छात्र शैलेंद्र सिंह की आवाज को राज साहब ने चुना, हालांकि कुछ लोगों को यह पसंद नहीं आया। राज साहब को पूरा यकीन था कि शैलेंद्र सिंह की आवाज चिंटू के व्यक्तित्व और राजा के किरदार में एकदम फिट बैठेगी।

फिल्म की शूटिंग श्री नाथ के घर के एक हिस्से के भव्य सेट पर शुरू हुई, जहां राजा का अठारहवां जन्मदिन मनाया जा रहा था। राज साहब चाहते थे कि पूरा माहौल 'समाज के प्रतिष्ठित' जन्मदिन समारोह जैसा हो।

राज साहब ने मुझे मैकरोनेल्स से शूटिंग के लिए केक मंगवाने को कहा, 'शूटिंग में इस्तेमाल होने वाली सभी चीजें असली लगनी चाहिए, इसलिए मुझे एक चॉकलेट केक चाहिए जो 1 फुट लंबा, 1 फुट चौड़ा और 1 फुट ऊंचा हो। हम शॉट के लिए केक काटेंगे और फिर उसे सभी जूनियर कलाकारों को खाने के लिए बांट देंगे।'

राज साहब बिना किसी झिझक के खर्चे बढ़ाते रहे। उन्होंने कहा, ‘मुझे 300 जूनियर आर्टिस्ट चाहिए, जिनमें से 200 लड़कियां और 100 लड़के होंगे, सभी ‘सुपर ए’ कैटेगरी के।’ इसका मतलब था कि लड़कियों को बेहद स्टाइलिश कपड़े पहनने होंगे और लड़कों को टाई और सूट पहनना होगा। इसमें तो बहुत ज्यादा खर्च आएगा! उन्होंने आगे कहा, ‘अगर उनके पास स्टाइलिश कपड़े, साड़ियां, सलवार-कमीज या टाई और सूट नहीं हैं, तो कॉस्ट्यूम डिपार्टमेंट में जाकर पिछली फिल्मों के कपड़े ले आओ और जरूरत पड़ने पर सिलवा लो।’ इससे तो बहुत ज्यादा खर्चा हो जाएगा!

जब वह सेट पर आया, तो उसने मुझे छह खाली शैंपेन की बोतलों के साथ देखा, जिन्हें मैं लिम्का और सोडा के मिश्रण से भर रहा था ताकि वह असली शैंपेन जैसा दिखे।
'ये क्या कर रहे हो? क्या राज कपूर की पार्टी में शैम्पेन की जगह यही परोसा जाएगा? अगर पैसे बचाने हैं तो लिम्का पर भी क्यों खर्च कर रहे हो? यूनिट से बोतलों में पेशाब करवा लो! कंजूस!'
इसलिए, सबसे सस्ती गुणवत्ता वाली छह शैम्पेन की बोतलें एक अवैध विक्रेता से मंगवाई गईं, जिसके कारण मुझे लगभग फिर से नौकरी से निकाल दिया गया, 'राज कपूर केवल मैग्नम बोतलों में बेहतरीन गुणवत्ता वाली शैम्पेन परोसते हैं।'
पार्टी वाले सीन के लिए हमें स्नैक्स लगाने थे और मैंने वही किया जो ज़्यादातर लोग करते हैं। मैंने चांदी के छोटे-छोटे कटोरे रखे जिनमें वेफर्स और मूंगफली भरी हुई थी। देखने में तो ये परफेक्ट पार्टी स्नैक्स लग रहे थे, लेकिन बॉस को ऐसा नहीं लगा। 'मैंने तुम्हें बार-बार कहा है, ये एक अमीर आदमी की पार्टी है। मुझे ये मूंगफली और वेफर्स नहीं चाहिए, मैं चाहता हूँ कि पार्टी में आए मेहमानों को पिस्ता और बादाम परोसे जाएँ।'
'सर, पिस्ता और बादाम बहुत महंगे हैं,' मैंने झट से कह दिया।
'मुझे यह चाहिए! फिल्म के लिए खर्च करना मेरा अधिकार है, इससे आपको क्या लेना-देना है?'
आम तौर पर, पार्टी सेट पर परोसे जाने वाले खाने-पीने की चीजों को कोई न खा ले, इसके लिए निर्माता उन पर कीटनाशक का छिड़काव कर देते थे। इससे खाने-पीने की चीजों को दोबारा मंगवाने की जरूरत नहीं पड़ती थी और पैसे की भी बचत होती थी। यह एक घिनौना काम था और राज साहब इस तरह के अमानवीय व्यवहार का कभी समर्थन नहीं करते थे। (दरअसल, श्री पृथ्वीराज कपूर फिल्म 'रुस्तम सोहराब' के एक शॉट की शूटिंग के दौरान अपनी परफॉर्मेंस में मग्न होकर ऐसी बुरी प्रथाओं से अनजान थे और मिलावटी चिकन खा लेने के कारण बीमार पड़ गए थे।)
I was aware of the fact that Raj Sahab would want to see the junior artists nibbling at snacks in the party scene. I reluctantly laid out the pista and badam and added some kaju also. I quietly instructed the junior artists, 'Dekho, agar

khana hai na, sirf thoda sa, bahut thoda, zyada se zyada do daane kaju khana, lekin pista aur badam ko haath mat lagana.'

शूटिंग के दौरान, मेरा ध्यान केवल इस बात पर केंद्रित था कि जूनियर कलाकार किसी भी प्रकार का पिस्ता या बादाम न खाएं और काजू का सेवन केवल दो टुकड़ों तक सीमित रहे। मेरी चेतावनी के बावजूद, दो जूनियर कलाकार बड़ी सहजता से बैठकर आपस में बातें कर रहे थे और बड़ी सावधानी से सिर्फ पिस्ता और बादाम खा रहे थे। मैं उन्हें जान से मार सकता था! आज भी जब मैं बॉबी देखता हूँ, और वो खास दृश्य आता है, तो मेरे सामने सारी तस्वीरें धुंधली हो जाती हैं और मुझे सिर्फ पिस्ता और बादाम खाते हुए दिखाई देते हैं।

राज साहब ने कहा, 'जो केक का ऑर्डर किया है, आज शाम को ले आना, कल उसका शॉट लेंगे।' मैं रात को मैक रोनेल्स केक लेने गया और बिल देखकर हैरान रह गया, जो 700 रुपये था। उन दिनों यह बहुत बड़ी रकम थी। इसलिए मैंने राज साहब को फोन किया और उन्हें केक के लिए हमसे लिए जा रहे इस अत्यधिक शुल्क के बारे में बताया। वे बहुत क्रोधित हुए और बोले, 'रोनी [मैक रोनेल्स के मालिक] को बता देना कि वह राज कपूर को लूट रहा है और मैं अपनी जिंदगी में कभी भी उसकी बेकरी में कदम नहीं रखूंगा!'

अगले दिन सेट पर, विशाल चॉकलेट केक देखने में बहुत ही स्वादिष्ट लग रहा था और जूनियर कलाकार, पूरी यूनिट के साथ, केक का एक टुकड़ा खाने के लिए बेताब थे। दुर्भाग्यवश, कुछ अप्रत्याशित परिस्थितियों के कारण शूटिंग उस दिन स्थगित करनी पड़ी और केक को बॉस के वातानुकूलित कार्यालय में रात भर रखा गया। अगले दिन जब केक का डिब्बा खोला गया, तो सेट पर मौजूद सभी लोगों को निराशा हुई, क्योंकि चूहों ने उसका अधिकांश हिस्सा खा लिया था! हमें फ्रेम में दिख रहे उस शानदार केक के केवल एक छोटे से हिस्से के साथ ही शूटिंग पूरी करनी पड़ी, और शॉट के तुरंत बाद उसे फेंकना पड़ा। पैसों की कितनी बर्बादी!

केक बर्बाद होते देख राज साहब की पहली प्रतिक्रिया थी, "राहुल, मैकरोनेल्स को फोन करो और कल के लिए बिलकुल वैसा ही केक मंगवा लो। जूनियर आर्टिस्ट और पूरी टीम केक का स्वाद चखने के लिए बेताब थे और मैं उन्हें निराश नहीं करना चाहता। इसलिए, कल शाम शूटिंग के बाद हम सब मिलकर पार्टी करेंगे और केक भी बांटेंगे।" उन्हें दोबारा 700 रुपये खर्च करने में कोई हिचक नहीं थी।

इससे उन्हें यह सीख मिली कि फिल्म पर खर्च होने वाला पैसा उनके लिए कोई मायने नहीं रखता था, बशर्ते खर्च फिल्म के माहौल और कहानी के सार के अनुरूप हो, और साथ ही फिल्म निर्माण से जुड़े सभी लोगों के प्रति उनके मन में प्रेम और सम्मान हो। वे फिल्म निर्माण दल से पूर्णता और आत्मीयता चाहते थे, क्योंकि उनका मानना था कि ये दो महत्वपूर्ण पहलू हैं जो फिल्म निर्माण में योगदान देते हैं। आम तौर पर, एक फिल्म निर्माता जिसे भारी वित्तीय नुकसान हुआ हो और जिसके स्थायी वितरकों ने उसे छोड़ दिया हो, वह खर्च को लेकर सतर्क रहता है। लेकिन राज कपूर एक अद्वितीय और दुर्लभ व्यक्ति थे, जो अच्छी कहानी होने पर बिना पैसों की परवाह किए हर लड़ाई लड़ते थे। वे एक सच्चे फिल्म निर्माता थे।

बॉबी के बनने से 35 साल पहले का एक पल राज साहब की यादों में हमेशा के लिए बस गया था। जब वे नरगिस जी को बरसात में भूमिका देने के लिए उनसे मिलने गए, तो नरगिस जी से उनका परिचय एक ऐसा क्षण था जिसे वे कभी नहीं भूल पाए। नरगिस जी को देखते ही वे दंग रह गए और वे हमेशा से उस अविस्मरणीय दृश्य को एक फिल्म में फिर से जीवंत करना चाहते थे और आखिरकार उन्हें बॉबी में यह अवसर मिल गया।

दृश्य में राजा, ब्रागांज़ा के घर आता है, बहाना बनाकर कि वह अपनी प्यारी गवर्नेस से मिलना चाहता है, लेकिन असल में वह बॉबी से मिलना चाहता था, जिसे उसने 'मैं शायर तो नहीं' के शुरुआती संगीत में देखा था। चिंटू दरवाजे पर आता है, घंटी बजाता है और बेहद खूबसूरत बॉबी दरवाजा खोलती है, जिसके हाथ बेसन से सने हुए हैं क्योंकि वह खाना बना रही थी। राजा को देखते ही, उसके माथे पर गिरे बालों की एक लट हट जाती है और इस प्रक्रिया में बेसन उसके बालों पर लग जाता है। उसने एक ही शॉट के लगभग 27 टेक लिए, जिसका मतलब था कि हर बार शॉट को दोबारा शूट करने पर डिंपल को अपने बाल धोने पड़ते थे, और वह धैर्यपूर्वक उसे तब तक प्रोत्साहित करता रहा जब तक कि उसे वह हासिल नहीं हो गया जो वह चाहता था - उसके चेहरे की अनूठी मासूमियत, जो उसके बालों पर लगे बेसन की सादगी से और भी निखर गई थी। इस शॉट का प्रभाव मैंने फिल्म की रिलीज के पहले दिन, पहले शो में देखा। लोग डिंपल को देखने के लिए बेताब थे क्योंकि वो राज कपूर की खोज होने के साथ-साथ राजेश खन्ना की पत्नी भी थीं। जब वो पहली बार फिल्म 'मैं शायर तो नहीं' में नज़र आईं, तो दर्शकों में हलचल मच गई; 'वाह!', 'वो कितनी खूबसूरत हैं!', 'कितनी प्यारी हैं!'

लेकिन जब वो उस यादगार दृश्य में नज़र आईं, जिसमें उनके बालों में बेसन की लकीरें थीं, तो 1,000 लोग खड़े हो गए और काफी देर तक तालियां बजती रहीं। यही राज कपूर की दृश्य प्रस्तुति की ताकत थी।

इस कार्यक्रम के दौरान, प्रेम नाथ जी को पहली बार हमारे साथ शूटिंग करनी थी, और जैन साहब के साथ जो कुछ हुआ था उसे याद करके बेचारा व्यक्ति प्रेम नाथ जी से दोबारा मिलने की आशंका से भयभीत हो गया था।

राज साहब, जैन साहब और यूनिट के कुछ लोग शूटिंग स्टेज के बाहर बैठे थे, तभी प्रेम नाथ जी अंदर आए। वे एक कन्वर्टिबल बुइक कार में बैठे थे, नारंगी रंग की धोती-कुर्ता पहने हुए थे जिस पर अजीबोगरीब धार्मिक अलंकरण थे। उनके साथ चार साधु थे और उनके द्वारा रचित तथाकथित धार्मिक श्लोकों की तेज़ आवाज़ आ रही थी। यहां तक कि उनके श्लोकों का संगीत भी उन्हीं की रचना था। उनकी आंखें गहरी भक्ति में डूबी हुई थीं, और इस अनोखे दृश्य में चार चांद लगा रहे थे जेम्स बॉन्ड, जो वर्दी में उनके ठीक पीछे खड़े थे, एक हाथ से सलामी दे रहे थे और दूसरे हाथ में छाता था। जैसे ही वे रथ से उतरे, वे और साधु प्रार्थना करने लगे और फिर वे राज साहब से मिलने के लिए आगे बढ़े, बॉन्ड मार्च करते हुए और तुरही बजाते हुए आगे बढ़ रहे थे!

आरके में राज साहब का अपना एक बड़ा निजी मेकअप रूम था, जिसमें उनके अलावा सिर्फ उनका परिवार ही रहता था। मैं और जैन साहब प्रेम नाथ जी के साथ मेकअप रूम गए, जहाँ उस समय चिंटू मौजूद था। सबसे पहले उन्होंने चिंटू का मेकअप का सामान और दूसरी चीजें उठाकर चिल्लाते हुए कमरे से बाहर फेंक दीं, 'बॉन्ड, हमारे कमरे में सिर्फ हम आएंगे, और कोई म्युनिसिपैलिटी नहीं दिखनी चाहिए!'

Bond instantly threw Jain Sahab and me out of the make-up room, ‘Bhagwan ke room mein koi bhi bina permission liye nahi aa sakta.’

जैन साहब के चेहरे पर भय और हास्य का अजीब सा मिश्रण था। मैंने बॉन्ड से कहा, 'श्रीमान 007, कृपया भगवान को बता दीजिए कि दो मनुष्य उन्हें संवाद सुनाने आए हैं।' बॉन्ड ने अनुमति मांगी और हमें अंदर आने दिया।

हम दोनों वहीं खड़े रहे, हालांकि जैन साहब की निगाहें डर से बाथरूम के दरवाजे पर टिकी हुई थीं। प्रेम नाथ जी, जो ज़मीन पर बैठे थे, ने जैन साहब को दृश्य पढ़ने का आदेश दिया। जैसे ही वर्णन समाप्त हुआ, वे हमारी ओर मुड़े और बोले, 'अभी क्या मेरे सर पर खड़े रहोगे?' और उन्होंने मुझे ज़ोर से नीचे खींच लिया। उन्होंने दृश्य की एक प्रति ली और उसे संगीत नोटेशन शीट पर दोबारा लिखा, लेकिन एक पंक्ति में नहीं, शब्द पंक्तियों में ऊपर-नीचे उछल रहे थे, जैसे संगीत में स्वर होते हैं, और वे संगीत निर्देश जोड़ते रहे, फ्लैट, शार्प, ट्रेबल, आदि। उन्होंने हारमोनियम बजाना शुरू किया और हारमोनियम पर बज रहे स्कोर के साथ दृश्य का पाठ करने लगे। जाहिर तौर पर, वे दृश्य के सुर को ठीक करने की कोशिश कर रहे थे और संगीत निर्देश उनके लिए स्वर के विराम चिह्नों का काम कर रहे थे! एक काफ्का जैसा दृश्य, जिसमें गद्य का पाठ और संगीत शीट पर नोटेशन के माध्यम से संगीत बजाया जा रहा था!

शूटिंग के दौरान राज साहब प्रेम नाथ जी की हरकतों को लेकर बहुत धैर्यवान थे, लेकिन कई बार वे चिढ़ जाते और हमसे कहते, 'मैं इतना परेशान हूँ कि उसे सबक सिखाने के लिए मैं उसकी बहन कृष्णा को, जो मेरी पत्नी भी है, उसके मायके वापस भेज दूँगा।' कृष्णा आंटी प्रेम नाथ जी की बड़ी बहन थीं और प्रेम नाथ जी को सबसे ज्यादा डर उन्हीं से लगता था।

एक बार एक पार्टी में, वह एक दिग्गज निर्माता के गंजे सिर पर तबला बजा रहे थे, तभी किसी ने घोषणा की, 'राज साहब और कृष्णा जी आ गए हैं।' उन्होंने झटपट अपने पड़ोसी की खाने से भरी थाली छीन ली और खुद खाने लगे। कृष्णा आंटी, जिन्हें पहले ही उनके तबला बजाने के बारे में पता चल चुका था, बोलीं, 'प्रेम, मैंने सुना है कि तुम ठीक से व्यवहार नहीं कर रहे हो।' नहीं, नहीं, ये सब झूठे हैं जो मुझे बदनाम करना चाहते हैं। देखिए, मैं चुपचाप अपना खाना खा रहा हूँ और अभी जा रहा हूँ।' उन्होंने अपनी प्लेट नीचे रखी, आदरपूर्वक हाथ जोड़कर सबको शुभ रात्रि कहा, अपने 'मानव तबला' को गले लगाया और मुस्कुराते हुए फुसफुसाया, 'नगरपालिका, जब हम फिर मिलेंगे, तो मैं फिर से तुम्हारे गंजे सिर पर तबला बजाऊँगा।'

बॉबी की शूटिंग के दौरान राज साहब को नए कलाकारों पर विशेष ध्यान देना पड़ा, क्योंकि वे फिल्म की जान थे। चिंटू को संभालना उनके लिए आसान था, क्योंकि अभिनय उनके जीन में था, जिसने उन्हें एक बेजोड़ स्वाभाविक अभिनेता बना दिया था। वह निर्देशक की अपेक्षाओं

को भी बखूबी समझते थे। यह गुण राज साहब को बेहद प्रसन्न करता था, जिन्हें अपने बेटे पर बहुत गर्व था।

डिंपल को अधिक ध्यान और देखभाल की आवश्यकता थी। वह उसके प्रदर्शन का बारीकी से निरीक्षण करता था, उसे संवादों, भावों और शारीरिक हाव-भाव की बारीकियों के बारे में सिखाता था, यहाँ तक कि उसे यह भी निर्देश देता था कि किसी दृश्य में संवाद बोलते समय उसके हाथ कैसे हिलने चाहिए। उसने उसे सर्वश्रेष्ठ बनाने का संकल्प लिया था।

बॉबी की शूटिंग के दौरान, उन्हें इस बात का पूरा एहसास था कि यह एक किशोर प्रेम कहानी है और इसमें उन सभी पलों की आवश्यकता है जिनसे किशोर वास्तव में गुजरते हैं।

वह अक्सर मुझे अंग्रेजी फिल्म देखने के लिए शहर ले जाते थे और उसके बाद वार्डन रोड पर बॉम्बेली कैफे में हाई टी का आनंद लेते थे। बॉम्बेली मुंबई का इकलौता स्विस कैफे था और वहां अक्सर युवा आते थे। मुझे धीरे-धीरे एहसास हुआ कि इन मुलाकातों का मकसद उस समय के युवाओं के व्यवहार, बोलने के तरीके और हाव-भाव को देखना था। एक बार उन्होंने मुझसे एक रोमांटिक दृश्य लिखने को कहा जिसमें राजा बॉबी को सैंडविच और कोक के लिए कैफे ले जाता है। मैं लेखक नहीं था, लेकिन वह चाहते थे कि मैं इसे लिखूं और भले ही वह उस सामग्री का उपयोग न करें, दृश्य के प्रति मेरा दृष्टिकोण शायद उन्हें फिल्म में एक रोमांटिक दृश्य बनाने के लिए प्रेरित कर सकता था। राज साहब की सबसे बड़ी खूबियों में से एक यह थी कि वे अपनी फिल्मों में जिस जीवन को चित्रित करना चाहते थे, उसके बारे में प्रासंगिक जानकारी को आत्मसात करते थे और उसे अपनी शैली के सिनेमा में बेहतरीन तरीके से इस्तेमाल करते थे।

बॉबी: एपिसोड 2

हमें कश्मीर में 15 दिनों की शूटिंग के लिए रवाना होना था। निर्देशक की कल्पना को साकार करने के लिए बड़े पैमाने पर तैयारियां चल रही थीं। पूरी फिल्म इंडस्ट्री के लिए आश्चर्य की बात यह थी कि राज साहब के सभी स्थायी वितरकों ने उनका साथ छोड़ दिया था, फिर भी वे हमेशा की तरह लगन से अपना काम कर रहे थे।

एक दिन सरदार वकील सिंह जी कमर पर रिवाल्वर बांधे स्टूडियो में दाखिल हुए। वे कभी थिएटर प्रतिनिधि हुआ करते थे और बेहद साधारण परिवार से थे। वे पूर्वी पंजाब के लिए फिल्म 'बॉबी' के वितरण अधिकार हासिल करने आए थे। राज कपूर की फिल्म के वितरक के रूप में नियुक्त होना जीवन में एक बहुत बड़ा और प्रतिष्ठित कदम था। वकील सिंह जी ने मनोज कुमार सर से संपर्क किया था और उनसे सलाह मांगी थी कि क्या राज कपूर उन्हें मौका देंगे या नहीं।

मनोज कुमार सर ने पूछा, 'सरदार जी, आप बंबई में कहाँ रह रहे हैं?'

‘Tip Top Hotel, near Naaz Cinema,’ Vakil Singh ji replied.

'अगर आप टिप टॉप होटल का नाम लेते हैं, तो वितरक नियुक्त होने की उम्मीद छोड़ दीजिए, वह चौकीदारों को बुलाकर आपको स्टूडियो से जबरदस्ती बाहर निकलवा देगा। आपको उससे झूठ बोलना होगा कि आप ओबेरॉय होटल में ठहरे हुए हैं।'

वकील सिंह जी ने हैरानी से कहा, 'यह तो बहुत महंगा होटल है! अगर वह मुझसे मिलने वहां आने का फैसला कर ले तो क्या होगा?'

‘चिंता मत कीजिए सरदार जी, यह उनके स्टूडियो से बहुत दूर है और वे इतनी दूर यात्रा नहीं करेंगे।’

वकील सिंह जी ने राज साहब से मुलाकात की और उनके वितरक नियुक्त होने की इच्छा व्यक्त की। राज साहब ने उनसे सबसे पहले पूछा, 'आप कहां रह रहे हैं?'

‘ओबेरॉय में, महोदय।’

अब एक ‘बाउंसर’ वकील सिंह जी को बाहर निकालने के लिए आया और बोला, ‘बहुत खूब, मैं एक मीटिंग के लिए शहर आ रहा हूँ और शाम करीब 7 बजे ओबेरॉय होटल में आपसे मिलने आऊँगा, हम वहाँ विवरण पर चर्चा कर सकते हैं।’

वकिल सिंह जी, जो अभी भी उस 'बाउंसर' के गुस्से से उबर नहीं पाए थे, ने फिर झूठ बोला, 'सर, मैं एयरपोर्ट से सीधे स्टूडियो आया हूं और अभी तक चेक-इन नहीं किया है। मैं अभी वहीं के लिए निकल रहा हूं।'

वकील सिंह जी ओबेरॉय होटल पहुंचे, एक कमरा बुक किया और बॉस के लिए ब्लैक लेबल व्हिस्की की एक बोतल खरीदी।

अगले दिन दोपहर चार बजे वकिल सिंह जी की राज साहब से मुलाकात थी। वे एक बैग लेकर आए और कुटिया में दाखिल हुए। राज साहब ने पूछा, “आज सुबह मैं जल्दी उठ गया और आपसे मिलने का समय बदलने के लिए फोन किया, लेकिन मुझे बताया गया कि आप कल रात ही चेक आउट कर चुके हैं। मुझे यकीन था कि हमारी शर्तें आपको रास नहीं आईं और आप देर रात शहर से निकल गए होंगे। मुझे थोड़ी निराशा हुई क्योंकि मैं आपको एक अच्छे इंसान के रूप में पसंद करता हूं और आपको एक ईमानदार व्यक्ति मानता हूं।”

वकील सिंह जी ने उत्तर दिया, 'राज साहब, मैं ईमानदार नहीं हूँ और कल से आपसे झूठ बोल रहा हूँ, लेकिन मुझे लगता है कि अब मुझे आपके साथ ईमानदार होना पड़ेगा। दरअसल, जब मैं बॉम्बे आया, तो नाज़ सिनेमा के पास टिप टॉप होटल में रुका था, लेकिन मनोज कुमार सर ने मुझे चेतावनी दी थी कि अगर आप पूछें तो सच न बताऊँ। इसलिए, जब आपने पूछा, तो मुझे झूठ बोलना पड़ा। मैं शाम 4 बजे होटल पहुँचा, शाम 6:30 बजे कमरे में चेक-इन किया, क्योंकि आप शाम 7 बजे पहुँचने वाले थे, और जैसे ही आप रात 10 बजे निकले, मैंने चेक-आउट कर लिया। इस तरह मुझे कमरे के इस्तेमाल के लिए केवल 30 प्रतिशत शुल्क देना पड़ा।'

राज साहब क्रोधित नहीं हुए, जैसा कि वकील सिंह जी को उम्मीद थी, बल्कि उनके चेहरे पर भावुकता झलक रही थी। उन्होंने कहा, 'आपका यह बयान आपकी ईमानदारी का प्रमाण है।' और इस तरह बॉबी के पहले वितरण समझौते पर सहमति बनी।

हमारी यूनिट श्रीनगर से रवाना हुई और मामा जी, मोहन बाली ने यूनिट के सफर की जिम्मेदारी संभाली थी। हालांकि वे खुद वहां मौजूद नहीं थे, लेकिन उन्होंने हमें बहुत मुश्किलों का सामना करवाया – हंसिया लिए ग्रामीणों ने हमारा पीछा किया, हमने एक रात सड़क किनारे बिताई और कुप्रबंधन के कारण हमें लगभग गिरफ्तार कर लिया गया था। हमें अपने प्रोडक्शन कंट्रोलर, ओम जी की बहुत याद आई, जिनका हाल ही में निधन हो गया था।

श्रीनगर पहुँचने पर, थकी-हारी यूनिट को बुलेवार्ड नामक होटल में ठहराया गया, और राज साहब, चिंटू, डिंपल और राधू साहब खूबसूरत डल झील पर बने आलीशान हाउसबोट में ठहरे हुए थे। खान साहब मुंबई में कुछ निजी काम में व्यस्त थे और वैसे भी, बाहर जो भी शूटिंग करनी थी, उसकी डबिंग तो करनी ही थी। मुझे हाउसबोट में चिंटू के कमरे में रहने का सौभाग्य मिला, क्योंकि बॉस चाहते थे कि मैं यूनिट के साथ बेहतर संवाद के लिए मौजूद रहूँ। मैंने उन्हें अपनी भयानक यात्रा के बारे में बताया और राज साहब बेहद सहानुभूति जता रहे थे, लेकिन मामा जी पर उन्हें बहुत गुस्सा आ रहा था। उन्होंने पूरी यूनिट को ड्रिंक्स और डिनर के लिए बुलाया और घोषणा की कि अगला दिन छुट्टी का दिन होगा ताकि हम सब आराम कर सकें और परसों से काम शुरू कर सकें।

अगले दिन जब हम उठे, जो कि छुट्टी का दिन था, तो चिंटू पूरी तरह तैयार था और बोला, 'चलो चलते हैं। हम बंटी और सादिका [पीरभॉय] के साथ दोपहर का भोजन कर रहे हैं।'

बंटी पीरभॉय मेरे और चिंटू के बचपन के दोस्त थे और हनीमून के लिए श्रीनगर आए हुए थे, लेकिन उन्होंने यह नहीं सोचा था कि चिंटू की वजह से उनका हनीमून कैसा गुजरेगा। दोपहर का खाना खाने के बाद, हनीमून मनाने आए जोड़े ने कहा कि वे घूमने जाना चाहते हैं और चिंटू उनके साथ जाने के लिए तैयार हो गया। तो, हनीमून मनाने आए जोड़े के साथ दो बेवकूफ भी थे, और चिंटू ने बेचारी सादिका से ज्यादा समय बंटी के साथ बिताया। शाम को, हम होटल वापस आ गए और मुझे बॉस के साथ अगले दिन के शूटिंग शेड्यूल पर चर्चा करनी थी। उन्होंने मुझसे कहा, 'देखो, तुम दोनों बेवकूफों जैसा व्यवहार करना बंद करो। बंटी अपनी पत्नी के साथ हनीमून पर आए हैं और जोड़े को एक-दूसरे को जानने की जरूरत है, न कि उन्हें तुम दोनों को जानने की। इसलिए, आज रात उन्हें परेशान मत करना!'

मुझे कहना पड़ा, 'सर, चिंटू मेरे साथ हाउस बोट पर वापस नहीं आया, वह बंटी और सादिका के साथ अपनी हाउस बोट पर चला गया और मुझसे कहा कि जब मैं आपके साथ काम खत्म कर लूं तो मैं भी उनके पीछे आ जाऊं।'
रात के खाने पर बंटी ने बताया कि वह और सादिका गुलमर्ग और पहलगाम घूमने जा रहे हैं। 'वाह!' चिंटू ने खुशी से कहा, 'हम भी श्रीनगर के बाद शूटिंग के लिए इन्हीं जगहों पर जा रहे हैं और राहुल हमारा कार्यक्रम इस तरह तय करेगा कि हम चारों एक साथ अच्छा समय बिता सकें।' यह सुनकर बंटी और सादिका के चेहरे के भावों को शब्दों में बयान करना नामुमकिन है।
बंटी ने मुझे सुबह 5 बजे फोन करके पूछा कि हम पहलगाम कब जा रहे हैं, क्योंकि उसे तीन दिन बाद निकलना था। मैंने उसे बताया कि ये वही तारीखें हैं जब हमें जाना था, और उसकी तुरंत प्रतिक्रिया थी, 'तो फिर हम गुलमर्ग के लिए निकलेंगे।'
अगले दिन, हमने शूटिंग शुरू की; मुझे लगता है कि यह निशात बाग में थी, जहाँ अचानक हमारी मुलाकात बंटी और सादिका से हुई! राज साहब को लगा कि उनके साथ नाइंसाफी हो रही है और उन्होंने उन्हें सलाह दी कि वे किसी और खूबसूरत जगह पर जाएँ जहाँ ज्यादा भीड़ न हो, और चिंटू तो वहाँ बिल्कुल भी न हो!
खैर, हमने पूरे दिन शूटिंग की और शाम को चिंटू ने फिर कहा, 'चलो, बंटी से मिलने चलते हैं।' मैंने कहा, 'चिंटू, बस करो! उन्हें अकेला छोड़ दो।'
उसने जवाब दिया, 'नहीं नहीं, हमें जाना होगा वरना बंटी हमसे बहुत नाराज हो जाएगा।'
तो हम दोनों, कबाब में हड्डियाँ, बंटी के हाउस बोट पर पहुँच गए। वह बहुत खुश था क्योंकि वह अगले दिन गुलमर्ग के लिए रवाना हो रहा था और हम उसके अगले दिन से पहलगाम में होंगे। हमारे बचपन के दोस्त और उसकी नई पत्नी, आखिरकार हमसे छुटकारा पाकर बहुत खुश थे।
अगले दिन की शूटिंग अनियमित रही क्योंकि श्रीनगर में बारिश शुरू हो गई और हमें यह भी बताया गया कि पहलगाम में बहुत तेज बारिश हो रही है, जिससे हमारे पास गुलमर्ग जाने और बंटी और सादिका पर चिंटू को उतारने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था।

कड़ाके की ठंड में गुलमर्ग जाते समय, हम तंगमर्ग में रुके ताकि गाड़ी में ठंड से बचाव के लिए ओवरकोट और दस्ताने लगाए जा सकें। मैं एक कोने में खड़ा था और सिगरेट जला रहा था। राज साहब पीछे से मेरे पास आए और बोले, 'उम्मीद है कल गुलमर्ग में मौसम साफ होगा।'

ठंड के कारण मेरा दिमाग काम करना बंद कर चुका था और होठों से लटकती सिगरेट के साथ मैं उसकी ओर मुड़ा और कहा, 'मुझे यकीन है कि ऐसा ही होगा, महोदय।'

वह मुझसे मुंह फेरकर बातचीत में लग गया। उसकी समझदारी यही थी कि वह समझ गया कि मैं सिगरेट के बारे में भूल गया था और वह मुझे शर्मिंदा नहीं करना चाहता था। मैं, अपनी अज्ञानता के कारण, यह महसूस ही नहीं कर पाया कि मैं उसकी मौजूदगी में सिगरेट पी रहा था।

हम गुलमर्ग के हाईलैंड पार्क होटल में ठहरे हुए थे। बंटी और सादिका भी वहीं ठहरे हुए थे और जब हम देर रात गुलमर्ग पहुँचे, तो चिंटू गर्व से उनके कमरे की ओर दौड़ा, दरवाजा खटखटाया और चिल्लाया, 'सरप्राइज! सरप्राइज!'

अगली सुबह शूटिंग पर बंटी और सादिका राज साहब से मिलने आए, जो अपने बेटे और सहायक के व्यवहार से बहुत शर्मिंदा थे। उन्होंने बंटी और सादिका को कहीं और भेजने के लिए तरह-तरह के बहाने ढूंढे ताकि वे अकेले में कुछ अच्छा समय बिता सकें, लेकिन वे शूटिंग पर हमारे साथ ही बैठे रहे। मैंने बंटी से पूछा, 'देखो, बॉस भी तुम्हें और सादिका को हमसे दूर करना चाहते हैं। तुम खुद क्यों नहीं चले जाते?'

वह गुस्से से मुड़ा और बोला, 'तुम दोनों मुझसे ऐसे चिपके हो जैसे जोंक और तुमने मेरा हनीमून खराब कर दिया। मैं तुम दोनों को छोड़कर जाना नहीं चाहता क्योंकि तुम दोनों को जानते हुए, मुझे पता है कि तुम मुझे ढूंढ लोगे। इसीलिए मैं पूरा दिन तुम्हारे साथ बिताऊंगा और सुबह चला जाऊंगा, और कृपया मुझसे यह मत पूछना कि हम कहां जा रहे हैं क्योंकि मैं तुम्हें नहीं बताऊंगा।'

राज साहब ने उन दोनों को अपने सुइट में यूनिट के साथ ड्रिंक्स और डिनर के लिए आमंत्रित किया। राज साहब उनसे बातचीत करते हुए अपने पसंदीदा विषय, फिल्मों पर आ गए। बंटी और सादिका उनकी बातचीत में मग्न हो गए और उनसे बेहद प्रभावित हुए।

बंटी ने इस घटना को अपनी डायरी में दर्ज किया:
यह सितंबर *1972* की बात है। मेरी अभी-अभी शादी हुई थी और मैं और मेरी पत्नी सादिका हनीमून के लिए कश्मीर में थे।
वहां बॉबी की शूटिंग हो रही थी और मेरे बचपन के दोस्त, फिल्म के हीरो चिंटू और राज अंकल के सहायक निर्देशक राहुल भी वहां मौजूद थे।
कहने की जरूरत नहीं है, हमने अपना लगभग सारा समय एक साथ बिताया, मैं और मेरी नवविवाहित पत्नी नहीं बल्कि दो बचपन के दोस्त जिन्होंने अनजाने में मेरा हनीमून खराब कर दिया*!*
हम गुलमर्ग में राज अंकल से मिले और उन्होंने हमें बधाई दी और तुरंत ही हमें अपने सुइट में रात के खाने के लिए आमंत्रित किया।
उनके सुइट में पहुँचने पर, जहाँ राज अंकल सोफे पर शान से बैठे थे, उनके चारों ओर चिंटू और राहुल समेत पूरी कास्ट और क्रू के लोग घेरा बनाकर बैठे थे। जैसे ही उन्होंने हमें देखा, उन्होंने हमें आगे आने का इशारा किया और हमें अपने ठीक सामने बैठा दिया। यह बहुत ही असहज करने वाला अनुभव था।
राज अंकल बेहद मिलनसार और मेहमाननवाज थे। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि हम कुछ पिएं। मैं थोड़ा हिचकिचा रहा था क्योंकि मैंने उनके सम्मान में कभी उनकी मौजूदगी में शराब नहीं पी थी और न ही सिगरेट पी थी, लेकिन उन्होंने ज़िद की और खुद मेरे लिए व्हिस्की और सादिक़ा वाइन डाली, और उसके बाद एक अविश्वसनीय और अद्भुत शाम की शुरुआत हुई।
उस पूरी शाम, देर रात तक, उन्होंने सादिका और मुझसे इस तरह बात की मानो कमरे में कोई और मौजूद ही न हो और हम ही उस शाम उनके जीवन के सबसे महत्वपूर्ण लोग हों।
उन्होंने अपनी पिछली फिल्मों के बारे में बात की और एक ऐसी फिल्म बनाने के अपने सपने के बारे में बताया जिसमें एक खूबसूरत महिला का चेहरा जल गया हो, जिससे उसका चेहरा विकृत हो गया हो, जो शरीर के मुकाबले आत्मा की सुंदरता को दर्शाता हो। इस फिल्म की प्रेरणा उन्हें लता मंगेशकर की आवाज के प्रति उनके जुनून से मिली। यही फिल्म अंततः सत्यम शिवम सुंदरम के रूप में सामने आई।

उन्होंने तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' पर आधारित एक विचार के बारे में भी बात की और 'सुन साहिबा सुन, प्यार की धुन' नामक एक गीत की रचना भी की!

सिनेमा के बारे में उनके विचार सुनना और भविष्य की फिल्मों के लिए उनके दो विचारों का वर्णन सुनना सचमुच जादुई था।

बिल्कुल जादुई। हम पूरी तरह से मंत्रमुग्ध हो गए थे। मेरे जीवन के सबसे अद्भुत अनुभवों में से एक।

गुलमर्ग में शूटिंग के दौरान मुझे यह सीखने को मिला कि राज साहब अपने विचारों को दृश्यों में कैसे रूपांतरित करते थे, चाहे इसमें कितना भी समय, मेहनत या पैसा क्यों न लगे। 'हम तुम एक कमरे में बंद हो' गाने में, 'हम तुम कहीं को जा रहे हों और रास्ता भूल जाएं' शब्दों के बाद बॉबी की आवाज़ में एक 'पुकार' सुनाई देती है। यह पुकार गाने की शूटिंग से काफी पहले रिकॉर्ड की गई थी, लेकिन शब्दों को सार्थक बनाने के लिए उन्हें एक खूबसूरत पृष्ठभूमि के साथ सही चौराहा चाहिए था। उन्होंने इसे खोजने में आधे दिन से अधिक समय बिताया और आखिरकार एक आदर्श स्थान पर पहुँच गए।

गुलमर्ग में जितनी भी शूटिंग हुई, उन्होंने इस बात का खास ध्यान रखा कि उस जगह की प्राकृतिक सुंदरता हमेशा उभरकर सामने आए।

फिल्म के अंत में बॉबी उस झोपड़ी के बाहर था जहाँ राजा और बॉबी बंद थे, और वे पृष्ठभूमि में बज रहे गीत की धुन पर हाथ में हाथ डालकर बाहर निकलते हैं। प्रेमी एक-दूसरे का हाथ थामे, दुनिया से बेखबर, आगे आने वाली चुनौतियों से अनभिज्ञ होकर बाहर निकलते हैं। यह दृश्य निस्संदेह पूरी फिल्म के सबसे प्रभावशाली दृश्यों में से एक था, या यूँ कहूँ कि सबसे प्रभावशाली दृश्य था, और राज कपूर द्वारा इस दृश्य की शानदार कल्पना को पर्दे पर उजागर करने के लिए इसे प्रस्तुत करना बिल्कुल उचित था।

राज साहब ने जिस जगह को चुना था, वह हाईलैंड पार्क होटल के एक कमरे का बाहरी हिस्सा था, जो सीधे बॉस के कमरे की खिड़की के सामने था। राज साहब समझाने लगे, 'ठीक है राधू, कई शॉट्स होंगे जिनमें चिंटू और डिंपल को दूर जाते हुए दिखाया जाएगा, और इसके लिए मुझे सबसे पहले एक 'मास्टर शॉट' चाहिए जिसमें कैमरा एक ट्रॉली पर हो और उनके समानांतर चल रहा हो। मुझे 100 फीट का ट्रॉली ट्रैक चाहिए और जैसे-जैसे ट्रैक खत्म होता

जाएगा, कैमरा पैन करेगा और हम उन्हें कैमरे की तरफ पीठ करके चलते हुए देखेंगे, जिससे ऐसा लगेगा कि वे अनंत की ओर चल रहे हैं। फ्रेम में उनके धीरे-धीरे गायब होते जाने पर 'इंटरवल' शीर्षक सुपरइम्पोज़ किया जाएगा। मैं दृश्य अनुभव को बेहतर बनाने के लिए तीन इंटरकट का उपयोग करूंगा।'

ट्रॉली बिछाई जा चुकी थी और बापू दादा को पटरी बिछाने और उसे समतल करने के लिए समय चाहिए था। राधू साहब शॉट के लिए रिफ्लेक्टर और आर्क लाइट लगा रहे थे। जैसे ही सारी व्यवस्था पूरी हुई, राज साहब ने चिंटू और डिंपल को निर्देश दिए और कुछ रिहर्सल करवाने के बाद, उन्हें लगा कि वे दोनों ठीक वैसे ही हाथ पकड़े हुए हैं जैसा वे चाहते थे और हाव-भाव और हरकतें उनकी संतुष्टि के अनुरूप थीं। हमेशा की तरह, वे कैमरे के लेंस से रिहर्सल देखना चाहते थे, ताकि वे खुद संतुष्ट हो सकें कि अभिनेताओं के बीच तालमेल और हरकतें उस दृश्य से मेल खाती हैं जो वे दर्शकों को दिखाना चाहते थे। वे बार-बार रिहर्सल देखते रहे और अंत में बोले, 'राधू, एक चीज़ की कमी है...रंग! शॉट में रंगों का विस्फोट होना चाहिए। पूरा माहौल ऐसा लगना चाहिए जैसे पूरी दुनिया प्रेमियों पर मुस्कुरा रही हो। दृश्य को और रंगीन बनाने की ज़रूरत है।' चलिए कुछ फूल लेते हैं और जैसे ही कैमरा आगे बढ़ता है, हमें सामने की ओर फूलों की एक श्रृंखला इस तरह से सजानी चाहिए कि वे रंगों से घिरे हुए दिखाई दें, जो उनके प्रेम के बुलबुले का प्रतीक है, लेकिन जब वे कैमरे की ओर पीठ करके अनंत की ओर चलते हैं, तो रंग फीके पड़ जाते हैं, जो बदले में यह दर्शाता है कि अब वे अपनी प्रेम कहानी में उथल-पुथल की ओर बढ़ रहे हैं।

हम गुलमर्ग में ताजे फूलों की तलाश में निकले, लेकिन हमें बताया गया कि यहाँ कोई नर्सरी या बाजार नहीं है जहाँ रंग-बिरंगे फूल बिकते हों और सबसे अच्छा यही होगा कि हम श्रीनगर जाकर वहाँ के फूल बाजार से फूल खरीदें।

राज साहब ने श्रीनगर के लिए तुरंत रवाना होने का फैसला किया और वे खुद ही आवश्यक रंगों के फूल जुटाने का इरादा रखते थे। यह दोपहर के लगभग 12 बजे का समय था। श्रीनगर दो घंटे की दूरी पर था और हमारे स्थानीय ड्राइवर ने कहा, 'सर, फूल लेने जाने का सबसे अच्छा समय सुबह 6 बजे होता है, जब फूलों का बाजार खुलता है और फूल सबसे ताजे होते हैं।' तो राज साहब ने कहा, 'ठीक है। राहुल, तुम और मैं कल सुबह चलेंगे। हम यहां से सुबह 4

बजे निकलेंगे, सुबह 6 बजे वहां पहुंचेंगे, फूल लेंगे और दोपहर तक वापस आकर सीधे शूटिंग शुरू कर देंगे।'

तो मैं उनके साथ गया और उन्होंने खुद फूल चुने। हमें बताया गया कि अगर फूलों पर नियमित अंतराल पर पानी छिड़का जाए तो वे दो दिन तक ताजे रहेंगे। हम ताजे चुने हुए फूल लेकर गुलमर्ग वापस आ गए।

वापस आने पर राज साहब फूलों को सजाने लगे। एक लकड़ी का तख्ता लंबी ट्रॉली पटरी के समानांतर रखा गया। अब राज साहब कैमरे से देखते हुए एक-एक फूल को अलग-अलग, उचित दूरी पर, रंगों के अनुसार और कैमरे के लेंस से सबसे अच्छे दिखने वाले कोण पर रखने लगे। 'तो, यह लाल फूल है, इसके बाद कार्नेशन, फिर लिली...' उन्हें इस बात का ध्यान रखना था कि फूल दर्शकों का ध्यान अभिनेताओं के चेहरों से न भटकाएँ। उन्होंने तब तक ऐसा किया जब तक कि हर एक फूल अपनी सही जगह पर नहीं लग गया। इस प्रक्रिया में लगभग तीन घंटे लगे और सूरज डूब चुका था, इसलिए शूटिंग के लिए रोशनी कम हो गई थी।

राज साहब ने कहा, 'कोई बात नहीं, हम कल सुबह शूटिंग करेंगे। कृपया यूनिट को सुबह 10 बजे तक लोकेशन पर तैयार रखें और एक सेटिंग बॉय को पूरी रात जागकर फूलों पर पानी छिड़कने के लिए कहें ताकि उनकी ताजगी बरकरार रहे।'

राधू साहब ने कहा, 'राज साहब, यह तस्वीर बहुत खूबसूरत लग रही है; इसे खींचने का सबसे अच्छा समय सुबह 6:30 से 7:00 बजे के बीच है, जब सूर्य सही कोण पर होता है। यही वह समय है जब इन फूलों का असली रंग सामने आता है।'

अब, हमने दो दिनों से शूटिंग नहीं की थी और यह बहुत बड़ा खर्चा था। ज़ाहिर है, इससे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ा और उनकी एकमात्र प्रतिक्रिया थी, 'राधू का दिमाग खराब हो गया है! सुबह 6:30 बजे शूटिंग? यह पागलपन है, लेकिन मुझे करना ही पड़ेगा। अब आप सभी जानते हैं कि हमने इस शॉट का कई बार अभ्यास किया है। राहुल, सभी को सुबह 6 बजे लोकेशन पर होना चाहिए। चिंटू और डिंपल से फिर से अभ्यास करवाओ और जब वे पूरी तरह तैयार हो जाएं, तो मुझे जगा देना।'

तो, सुबह ठीक 6 बजे हमने रिहर्सल की और शूटिंग के लिए तैयार हो गए। मैं सुबह करीब 6:30 बजे उनके कमरे में गया और वो सो रहे थे। मैं उनके बिस्तर के पास गया और डर के मारे मैंने उन्हें जगाया। उन्होंने अंगड़ाई ली और पूछा, 'ओह...क्या हम तैयार हैं?'
मैंने कहा, 'हां, रिहर्सल पूरी हो चुकी है।'
वह अभी भी लेटा हुआ था और बड़बड़ा रहा था, 'राधू कर्माकर पागल हो गया है। शूटिंग करने का कोई समय है क्या?' वह बिस्तर पर उठ बैठा और खिड़की खोल दी। लोकेशन ठीक उसकी खिड़की के बाहर थी। बिस्तर पर बैठे-बैठे उसने बाहर देखा और कहा, 'चलो, रिहर्सल दिखाओ।'
रिहर्सल के दौरान उन्होंने कुछ छोटे-मोटे बदलाव किए और एक टेक के लिए कहा। उन्होंने कुछ टेक लिए और अंत में संतुष्ट होकर, मुस्कुराते हुए कहा, 'शानदार शॉट! बिल्कुल वैसा ही जैसा मैं चाहता था। तो, अब पैकअप करो, आज के लिए इतना ही काफी है', और वे वापस सो गए! दो दिन सिर्फ एक शॉट की तैयारी करना और तीसरे दिन सुबह 7 बजे पैकअप करना, केवल उसी व्यक्ति के लिए संभव था जिसके अंदर अपनी फिल्म के लिए जुनून, एक दिव्य दीवानगी थी।

बॉबी: एपिसोड 3

गुलमर्ग में अपना शेड्यूल पूरा करने के बाद, हम श्रीनगर वापस आ गए और पहलगाम जाने से पहले तीन दिन की शूटिंग की। पहलगाम जाने से एक रात पहले, राज साहब ने मुझे अपने कमरे में बुलाया और उनका मूड बहुत खराब था। उन्होंने कहा, 'तुम्हें पता है कि यूनिट को सुबह 6 बजे निकलने के लिए तैयार रहना है और समय पर तैयार न होने के लिए मैं कोई बहाना नहीं सुनूंगा, क्योंकि आजकल मैं देख रहा हूं कि तुममें जिम्मेदारी की भावना बिल्कुल नहीं है और तुम्हारी अक्षमता के कारण मेरा पूरा शेड्यूल लेट हो रहा है।'
मुझे समझ नहीं आया कि वह ऐसा क्यों महसूस कर रहा था, लेकिन मुझे एहसास हुआ कि वह किसी और बात पर गुस्सा था और अपना गुस्सा मुझ पर निकाल रहा था। उसे जानते हुए, मुझे लगा कि इसका संबंध उसके कलाकारों से ही होगा।
'तुम अपने काम पर ध्यान नहीं दे रहे हो और तुम्हारी वजह से चिंटू और डिंपल को अपने डायलॉग याद नहीं आ रहे हैं!'
मैंने जवाब दिया, 'माफ़ कीजिए, महोदय, मैंने अपनी पूरी कोशिश की है, लेकिन मैं उन्हें संवाद याद करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता।'
'तुम्हारा क्या मतलब है कि तुम उन्हें मजबूर नहीं कर सकते?' और फिर उन्होंने बताया कि पिछले सीन की शूटिंग के दौरान चिंटू और डिंपल ने कितना गैरजिम्मेदाराना व्यवहार किया था। मैं बलि का बकरा बन गया था, जिस पर उनके गुस्से का सारा बोझ पड़ा और मुझसे उम्मीद की जा रही थी कि मैं चिंटू और डिंपल दोनों को उनकी नाराजगी साफ-साफ बता दूं। मैं बस वहीं खड़ा रहा, नज़रें झुकाए हुए, और आखिरकार सुबह 5 बजे, वह चिल्लाए, 'अब मेरे कमरे से निकल जाओ! मुझे आराम करने दो!'
मैंने तुरंत बुलेवार्ड होटल के दफ्तर में फोन किया और उन्हें बताया कि बॉस अभी-अभी सो गए हैं, इसलिए हम सुबह 6 बजे नहीं निकल पाएंगे। मैं अपने कमरे में आया, चिंटू अभी-अभी जागा था। मैंने चिंटू पर अपना गुस्सा निकाला, 'तुम्हारे और डिंपल के गैरजिम्मेदाराना रवैये की वजह से उन्होंने मुझे नौकरी से निकाल दिया है। सुबह के 5:15 बज रहे हैं, उन्होंने मुझे कमरे से बाहर निकाल दिया और सो गए।'

अपनी गैरजिम्मेदारी या अपने 'बचपन के दोस्त' से रात भर पूछताछ किए जाने पर जरा भी पछतावा न दिखाते हुए चिंटू ने अजीब तरीके से जवाब दिया, 'अच्छा, इसका मतलब है कि हम छह बजे नहीं निकल रहे हैं।' इतना कहकर वह वापस अपने कंबल में घुसकर सो गया।

Even I dozed off and suddenly, Revati ji came bursting into the room, 'Arre, Rahul Sahab, aap log so rahe hain? Raj Sahab Pahalgam ke liye nikal gaye.'

मैं कमरे से भागकर डेक पर गई और उसे शिकारा में बुलेवार्ड होटल की ओर जाते देखा। चिंटू और मैं अचंभित रह गए; हमने डिंपल को जगाया और जल्दी से बाहर निकल गए। मैं बहुत जल्दी में थी क्योंकि मैं उसे मुझ पर गुस्सा करने का एक और मौका नहीं देना चाहती थी।

जब हम बुलेवार्ड होटल पहुंचे, तो मैंने राज साहब को एक बस में देखा, जो हमें और काला जी सहित अन्य यूनिट सदस्यों को छोड़कर जा रहे थे, जो तैयार नहीं थे।

"कलाकारों समेत यूनिट के जो सदस्य तैयार नहीं हैं, वे आरके की फिल्म में काम करने के लायक नहीं हैं और मैं अभी उनकी सेवाएं समाप्त कर रहा हूं। मैं उनके बिना ही फिल्म पूरी करूंगा।" यह बात उन्होंने होटल के मैनेजर से कही थी।

यह सुनकर मेरे मन में सबसे पहला विचार यही आया कि मैं डल झील में कूदकर खुद को डुबो लूं क्योंकि मैंने बहुत बड़ी गलती कर दी थी जब मैंने यूनिट को बता दिया था कि वे आराम कर सकते हैं क्योंकि बॉस सुबह 6 बजे जाने के लिए तैयार नहीं होंगे।

मुझे पता था कि उसने पहलगाम जाते समय अवंतीपुर के खंडहरों में शूटिंग करने की योजना बनाई थी। मैंने अपने टैक्सी ड्राइवर को पकड़ा और उससे विनती की कि वह यह सुनिश्चित करे कि हम बॉस से पहले अवंतीपुर पहुँच जाएँ, जो पहले ही हमसे 15 मिनट आगे निकल चुके थे। ड्राइवर ने इतनी तेज़ गाड़ी चलाई जितनी तेज़ रफ़्तार से लोग F1 रेसिंग प्रतियोगिताओं में गाड़ी चलाते हैं, लेकिन सफ़र का डर बॉस के गुस्से के डर से कम था। अवंतीपुर पहुँचने से ठीक पहले हमने बस को ओवरटेक कर लिया। जब बॉस बस से उतरे, तो वे चिंटू, डिंपल और मुझे इंतज़ार करते देख चौंक गए।

उसने मुझे घूरकर देखा और पूछा, 'तुम यहां कब आए?'

'आपसे तीस मिनट पहले, महोदय।'

वह अविश्वास भरी निगाहों से घूरता रहा और एक बहुत ही कमजोर बहाना बनाया, 'मैं काला के बिना शूटिंग नहीं कर सकता। दरअसल, मैं फिल्म छोड़ दूंगा और फिल्में बनाना बंद कर दूंगा क्योंकि मैं खुद काला को चट्टान से नीचे फेंक दूंगा!'

जैसे ही हम पहलगाम में दाखिल हुए, हमें एक अद्भुत नज़ारा देखने को मिला। काला जी एक नाई की दुकान से बाहर आ रहे थे, उनकी दाढ़ी साफ़ थी और उनके चेहरे पर बड़ी सी मुस्कान थी। बस रुकी, राज साहब बाहर आए, काला जी को घूरकर देखा, फिर मेरी, चिंटू और डिंपल की तरफ मुड़े। बिना कुछ कहे, वे गुस्से में होटल की तरफ चल पड़े। मैंने काला जी से पूछा, 'आप बस से पहले कैसे पहुँच गए?'

काला जी, जिनके मुंह से शराब की बदबू आ रही थी (जो उन्होंने पिछली रात पी होगी), विजयी मुस्कान के साथ बोले, 'श्री राहुल रावेल, एस. कालाचंद्र के पास ऐसी महाशक्तियां हैं जो राज कपूर के पास भी नहीं हैं।'

खैर, उस दिन कोई शूटिंग नहीं हुई और अगले दिन भी यही सिलसिला जारी रहा, उसके अगले दिन भी। तीन दिन बीत गए थे और हमने एक भी सीन शूट नहीं किया था। फिर चौथे दिन राज साहब ने मुझसे कहा, 'क्या तुम्हें शर्म नहीं आती? इतने बड़े खर्च पर तीन दिन शूटिंग नहीं हुई। मुझे तैयार होने में करीब दो घंटे लगेंगे; बस में वो छोटा सा सीन है, तुम उसे शूट कर लो जब तक मैं तैयार हो रहा हूँ।' मुझे ये ज़िम्मेदारी मिलने पर बहुत खुशी और उत्साह हुआ, और कहीं न कहीं उम्मीद थी कि बाकी का शेड्यूल मैं ही संभालूंगा और मैंने तो बाकी के सीन शूट करने की कल्पना भी कर ली थी। ये तो 'अंडे से चूजा निकलने से पहले ही उसे गिनने' का जीता-जागता उदाहरण है!

वापस लौटने पर (मुझे ऐसा महसूस हो रहा था जैसे सिकंदर ने दुनिया जीतने पर किया होगा), हमने बाज़ार में शूटिंग शुरू की; मैं अपने सहायक निर्देशक के काम पर लौट आया था, इसलिए मुझे ज़मीन से जुड़े रहना पड़ा। मनमोहन देसाई सर अचानक आए और राज साहब से मिलकर उन्हें श्रद्धांजलि दी। उन्होंने कहा, ‘मैं अपनी फिल्म ‘रोटी’ के लिए लोकेशन देखने आया हूँ। मैं पहलगाम होटल में ठहरा हूँ।’

राज साहब ने जवाब दिया, 'मैं भी वहीं ठहरा हुआ हूँ। क्या आप मुझे होटल तक छोड़ सकते हैं, क्योंकि मुझे अपनी दवाइयाँ लेनी हैं जो वहीं रखी हैं?'

उन्होंने हमारी तरफ मुड़कर कहा, ‘मैं बस जा रहा हूँ, झटपट वापस आ जाता हूँ।’ वे गए तो सही, लेकिन लौटे नहीं! करीब 45 मिनट बाद, मुझे समझ नहीं आया कि आखिर क्या बात है; किसी को कुछ पता नहीं था और मैं उनके बारे में चिंतित था। राधू साहब और मैं दौड़कर होटल पहुँचे। हमने उन्हें मनमोहन देसाई सर के साथ एक लाउंजिंग चेयर पर बैठे हुए, शैम्पेन पीते हुए पाया। उन्होंने मेरा हैरान चेहरा देखा और कहा, ‘आप हैरान क्यों हैं? मैं मनमोहन के यहाँ आने का जश्न मना रहा हूँ। वे मेरे पुराने दोस्त हैं और मैंने उनकी पहली फिल्म, छलिया में काम किया था।’ शैम्पेन पीते हुए, उन्होंने छलिया का मशहूर गाना, “दम दम दिग्गा दिग्गा, मौसम भीगा भीगा, बिन पिए मैं तो गिरा...” गाना शुरू कर दिया।’ इस समय तक, भारतीय फिल्म उद्योग के ये दो दिग्गज शैम्पेन के नशे में चूर होकर, होटल के कुछ मेहमानों की तालियों की गड़गड़ाहट से बेखबर, बेतहाशा नाच रहे थे; और जैसे ही उन्होंने ‘बिन पिए मैं तो गिरा’ गाया, वे दोनों सचमुच गिर पड़े!

फिर से, उस दिन की शूटिंग रद्द हो गई। अगले दिन अचानक बर्फबारी शुरू हो गई, जिसका मतलब था कि फिर से 'शूटिंग नहीं'। लेकिन राज साहब बहुत खुश थे, उन्होंने कहा, 'देखो, यूनिट के ज़्यादातर सदस्यों ने शायद बर्फबारी के बारे में सिर्फ सुना ही होगा, कभी देखी नहीं होगी। राहुल, मुझे खुशी है कि मैं उन्हें इस अद्भुत नज़ारे का गवाह बना पा रहा हूँ। कितना अच्छा लग रहा है, चलो पार्टी करते हैं!'

एक पार्टी का आयोजन किया गया जहाँ पूरी यूनिट ने जमकर मौज-मस्ती की और खूब आनंद उठाया, ऐसा नहीं है कि उन्होंने अन्य 'शूटिंग न होने वाले' दिनों में भी इसी तरह का आनंद नहीं उठाया था!

रात में उसने पूछा, 'क्या अभी भी बर्फ गिर रही है?'

‘हां,’ मैंने जवाब दिया, ‘क्या हम बर्फ में गाने का एक छोटा सा हिस्सा शूट नहीं कर सकते? हम इतना समय बर्बाद नहीं कर सकते। हमने कितने दिन शूटिंग नहीं की है? यह बहुत महंगा है।’ उन्होंने समझाया, ‘देखो राहुल, जब मैंने शूटिंग रद्द की है, तो इसका मतलब यही था कि मेरा शूटिंग करने का मन ही नहीं था। मैं सिर्फ उन्हीं दिनों शूटिंग करता हूँ जब मेरा मन करता है। अगर मेरा शूटिंग करने का मन नहीं है, तो मैं शूटिंग नहीं करूँगा। यही मेरा फिल्म बनाने का तरीका है। सिनेमा एक रचनात्मक प्रक्रिया है और रचनात्मकता दिन, तारीख या पैसे से

नियंत्रित नहीं होती। यह हर निर्देशक के लिए एक सबक होना चाहिए, अगर आपका दिमाग काम नहीं कर रहा है, तो आप अपनी फिल्म बर्बाद कर देंगे।'

हमने बर्फ में शूटिंग की, और जब बर्फ थम गई, तो हमने लगातार दो दिनों तक फिर से शूटिंग की। तीसरे दिन, जब मैं राज साहब को जगाने गया, तो वे उठे और बोले, 'क्या आज दशहरा नहीं है?'

'हां, ऐसा ही है,' मैंने पुष्टि की।

He said, 'Tum Dussehre pe mujhse kaam karva rahe ho? Dussehre pe kaam thodi karte hain! It's an auspicious day, we should be celebrating.' So, we celebrated Dussehra and once again 'no shooting'!

नतीजा यह हुआ कि हमने कश्मीर में 34 दिन बिताए, लेकिन शूटिंग सिर्फ 16 दिन ही कर पाए। खराब मौसम की वजह से 3 दिन शूटिंग नहीं हुई, और बाकी 15 दिन हमने पार्टी की। खर्च बजट से कहीं ज्यादा हो गया, लेकिन बॉस को आर्थिक बातें समझाने का कोई फायदा नहीं था।

कश्मीर में शूटिंग खत्म होने के बाद, मुझे सारे बिल चुकाने के लिए दो दिन रुकना पड़ा और मुझे फ्लाइट से मुंबई वापस आने का सौभाग्य मिला। जनता एक्सप्रेस की थर्ड क्लास में सफर करने और उससे पहले की कष्टदायक सड़क यात्रा के बाद, यह सफर बेहद सुखद था। राज साहब और कृष्णा आंटी को दिल्ली वापस जाना था, लेकिन वे कटरा स्थित वैष्णो देवी मंदिर में दर्शन करने के लिए रुकना चाहते थे।

कटरा और दिल्ली की यात्रा के बाद जब वे बॉम्बे लौटे, तो उन्होंने कहा, "वैष्णो देवी की यह मेरी पहली यात्रा थी और गर्भगृह में प्रवेश करने के लिए एक चट्टान के नीचे से रेंगना पड़ता है, जिससे मैं बहुत भयभीत हो गया क्योंकि रेंगना बहुत घुटन भरा अनुभव था। गर्भगृह में प्रवेश करते ही मैं एक अलौकिक अनुभूति से भर गया और श्रद्धापूर्वक सिर झुकाते हुए मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। यह एक अत्यंत गहन अनुभव था। मैं बहुत धार्मिक व्यक्ति नहीं हूँ, लेकिन मैं जाति या धर्म की परवाह किए बिना सभी धार्मिक स्थलों पर जाकर दर्शन करता हूँ। आमतौर पर, ऐसे पवित्र संस्थानों के दर्शन का मुझ पर हमेशा गहरा प्रभाव पड़ता है।"

‘वैष्णो देवी में मुझे बस एक ही समस्या हुई, वो थी घुटन का अनुभव जिसने मुझे जकड़ लिया और कई अन्य तीर्थयात्रियों को भी निराश किया, जो गुफा के प्रवेश द्वार और उस छोटे से क्षेत्र को देखकर वापस लौट आए जहाँ से उन्हें रेंगकर जाना पड़ता है। मैंने श्रीमती गांधी (उस समय प्रधानमंत्री थीं) से बात की और उनसे अनुरोध किया कि वे एक ऐसा प्रवेश द्वार बनवाएं जिससे श्रद्धालु आराम से चल सकें, और जो श्रद्धालु रेंगने को अपनी तीर्थयात्रा का एक अनिवार्य हिस्सा मानते हैं, वे मौजूदा प्रवेश द्वार का उपयोग कर सकते हैं।’

राज साहब के साथ हुई इस बातचीत के परिणामस्वरूप सरकार ने गर्भगृह तक जाने का एक सुगम मार्ग प्रशस्त किया था।

यह उनके इस दर्शन के अनुरूप था, 'सिनेमा एक धर्म के समान है; यह आपको शांति और संतोष देता है और उतनी ही भक्ति की मांग करता है। हालांकि, किसी को भी इस आशीर्वाद को प्राप्त करने के मार्ग में बाधा नहीं डालनी चाहिए। यही कारण है कि मैंने हमेशा यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि मेरी फिल्में दर्शकों के मन पर एक सुखद प्रभाव छोड़ें और जब भी उन्हें सुकून की आवश्यकता हो, वे फिल्म को दोबारा देखने के लिए प्रेरित हों।'

कश्मीर में फिल्माई जाने वाली शूटिंग के बाद, उधार लिया गया पैसा और उस पर लगने वाला बेतहाशा चक्रवृद्धि ब्याज एक अकल्पनीय राशि तक बढ़ गया था और फिल्म अभी आधी ही पूरी हुई थी, इसलिए यह राशि और भी बढ़ने वाली थी।

मैं ऐसे लोगों को जानता था, मैं उनके नाम बता सकता हूँ लेकिन बताना नहीं चाहता क्योंकि वे ऐसे प्राणी हैं जिन्हें सहानुभूति की जरूरत होती है, जिन्होंने इस बात पर खुशी मनाई थी कि 'मेरा नाम जोकर' बॉक्स ऑफिस पर अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाई, 'अरे मुबारक हो यार, राज कपूर की फिल्म फ्लॉप हो गई।'

‘Wo zindagi mein film nahin bana sakega!’

वही लोग, जिन्होंने राज कपूर द्वारा फिल्म की आधी शूटिंग पूरी कर ली थी और अगले शेड्यूल की योजना बना रहे थे, अब नए सिरे से उन पर निशाना साधने लगे। यह वही बीमार मानसिकता है जो आज भी मौजूद है, जिनके डीएनए में एक अजीब तरह की क्रूरता समाई हुई है। वे अपनी सफलता से ज्यादा दूसरों की असफलता से खुश होते हैं।

‘राज कपूर एक क्षेत्र के लिए 12 लाख रुपये की मांग कर रहे हैं!’

‘वह बूढ़ा हो गया है और उसकी सोचने-समझने की क्षमता खत्म हो गई है!’
‘वह एक असफल फिल्म निर्माता है और उसे कभी भी उस तरह की रकम नहीं मिलेगी!’
उनकी हैरानी के बावजूद, 'उसे वह मिल गया'!
उनके पुराने वितरक – जो मेरी राय में बेशर्म थे – उनकी फिल्मों से खूब पैसा कमा चुके थे। जब 'मेरा नाम जोकर' बॉक्स ऑफिस पर फ्लॉप हो गई, तो उन्होंने राज कपूर का साथ छोड़ दिया, लेकिन वितरण अधिकार हासिल करने के लिए नए-नए लोग आगे आने लगे। 'वकील सिंह जी' के बाद शशि कपूर आए, जिन्हें राज कपूर के जादू पर पूरा भरोसा था, और उन्होंने 'बॉबी' के दिल्ली और उत्तर प्रदेश के वितरण अधिकार खरीद लिए। अन्य उद्यमी लोग भी शेष क्षेत्रों के लिए वितरक बनने के लिए राज कपूर के पास उमड़ पड़े।
कृष्णा आंटी इस बात से बेहद खुश थीं कि भारत के सभी क्षेत्रों में वितरक मिल गए थे और उन्होंने इस चमत्कार का श्रेय अपने पति को वैष्णो देवी की तीर्थयात्रा के कारण प्राप्त हुए आशीर्वाद को दिया।
राज साहब मुस्कुराए और बोले, 'यह उनका विश्वास है और यही विश्वास बहुत से लोगों की उम्मीद की बुनियाद है। मैं लोगों के अपने धर्म में विश्वास का पूरी तरह सम्मान करता हूं, लेकिन मेरे लिए, वह धर्म जो मेरे विश्वास को ठुकराता है, वह है "सिनेमा"।'

बॉबी: एपिसोड 4

वापसी पर हमारा कार्यक्रम 'हम तुम एक कमरे में बंद हो' गाने के बचे हुए हिस्से की शूटिंग करना था, जिसे एक सेट पर फिल्माया जाना था। 'हम तुम एक जंगल से गुजरें और शेर आ जाए' पंक्तियों के लिए, बॉस को चिंटू और डिंपल के साथ एक बाघ की आवश्यकता थी, ताकि गीत के बोलों को सार्थक बनाया जा सके! जेमिनी सर्कस से एक बाघ लाया गया और शॉट तैयार होते ही उसे पिंजरे से बाहर निकाला जाना था। बाघ को पिंजरे से बाहर निकाला गया; स्पीकर पर गाना बज रहा था। शॉट के अंत में एक सीटी बजाई गई, जो गाने को बंद करने का संकेत था, लेकिन अचानक बाघ बैकग्राउंड स्क्रीन के पीछे कूद गया और गायब हो गया, जबकि गाना बजता रहा।

हम सब भय से जम गए थे। सर्कस के कर्मचारी पीछे की स्क्रीन के पीछे कूद गए और उन्होंने देखा कि बाघ प्लेबैक मशीन के सामने शांति से बैठा है, और उससे कुछ ही दूरी पर एक डरा हुआ प्लेबैक ऑपरेटर खड़ा है, जिसने सचमुच अपनी पैंट में पेशाब कर दिया था! सर्कस के कर्मचारियों ने बाघ को पकड़ा और कहा, 'सब ठीक है!'

अचानक, हमें राज साहब की दूर से आती हुई आवाज सुनाई दी, 'क्या आप लोग वाकई आश्वस्त हैं?'

हमने उसकी आवाज़ की तरफ देखा और उसे सीढ़ियों के ऊपर, लाइटों के पास, हाथ में रिवॉल्वर लिए हुए पाया। उसी क्षण हमें एहसास हुआ कि वह रिवॉल्वर जेब में रखकर सेट पर आया था। इससे मुझे 'मेरा नाम जोकर' की शूटिंग के दौरान का एक दिन याद आ गया, जब हम सब शेर के पिंजरे के चारों ओर खड़े होकर शेरों की तस्वीरें खींच रहे थे, तभी एक छोटा शावक पिंजरे पर चढ़ गया और कूद गया। हमें समझ नहीं आया कि क्या करें और शावक सर्कस के पीछे भाग गया और हमने राज साहब को सबसे ऊपर वाले स्टैंड पर हाथ में रिवॉल्वर लिए बैठे देखा। मुझे लगता है कि ये दो ही ऐसे मौके थे जब उन्होंने 'अपनी बंदूक निकाली' थी!

प्रेम नाथ जी के परिचयात्मक दृश्य की शूटिंग खुले समुद्र में एक ट्रॉलर पर की जानी थी। हमने वर्सोवा से माढ द्वीप तक जाने के लिए एक ट्रॉलर का इंतजाम किया था ताकि हम परिचयात्मक दृश्य की शूटिंग ट्रॉलर पर और बाकी दिन की शूटिंग माढ द्वीप पर ही कर सकें। बस एक दिक्कत थी; हमें सुबह 6 बजे ही रवाना होना था, क्योंकि सुबह 7:30 बजे ज्वार आ जाता जिससे ट्रॉलर को स्थिर रखना मुश्किल हो जाता।

राज साहब को इतनी जल्दी शूटिंग शुरू करने का विचार बिल्कुल पसंद नहीं था और उन्होंने इस बात पर अफसोस जताया कि हमने प्रेम नाथ जी के किरदार को मछुआरा बना दिया, हमें तो उन्हें ट्रक ड्राइवर बनाना चाहिए था!

समय बचाने और चेंबूर से वर्सोवा तक की लंबी ड्राइव से बचने के लिए, उसने फैसला किया, 'मैं एक काम करता हूँ, मैं प्रेम की झोपड़ी में रात बिताऊँगा। इस तरह मुझे सोने के लिए आधा घंटा ज़्यादा मिल जाएगा। झोपड़ी पहुँचने से 10 मिनट पहले रेवती को फोन कर देना, मैं और प्रेम दोनों तैयार रहेंगे।'

जैसे ही हम झोपड़ी के पास पहुँचे, मैंने रेवती जी को फोन करने की कोशिश की, लेकिन लाइन खराब थी। मुझे चिंता होने लगी कि कहीं हमें देर न हो जाए और शूटिंग का समय न निकल जाए, लेकिन 'मनुष्य की योजना, भगवान की योजना'।

द्वार पर राज साहब सिर पर शॉल ओढ़े खड़े थे, और प्रेम नाथ जी अपने हारमोनियम पर सुर मढ़ते बैठे थे! राज साहब का चेहरा लाल था और वे अस्वस्थ लग रहे थे। मैंने पूछा, 'क्या आपको सर्दी-जुकाम है, साहब?'

उसका गरजता हुआ जवाब था, 'मैं खुशकिस्मत हूँ कि मरा नहीं। कल रात, प्रेम और मैं हॉल में बैठकर ड्रिंक कर रहे थे और अचानक बारिश शुरू हो गई। उसने तुरंत उस बेवकूफ जेम्स बॉन्ड को भारी बारिश में मेज पर दो कुर्सियाँ लगाने का आदेश दिया और ज़िद की कि हम पूरी रात बारिश में बैठे रहें। जब मैंने उससे अंदर आने की विनती की, तो उसने कहा, "ठीक है, तो हम अपने कमरों में जाकर सो जाते हैं। जब मैं उठूंगा, तब शूटिंग करेंगे।" मेरे पास पूरी रात जागने के अलावा कोई चारा नहीं था। क्या आपने गौर किया है कि मैं पिछले 10 मिनट से ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा हूँ, और इसका मिस्टर ब्रागांज़ा पर बस इतना असर हुआ है कि उनका गाना और तेज़ हो गया है!'

सौभाग्य से, बारिश ठीक समय पर रुक गई जिससे हम नाव पर सवार हो सके और दृश्य पूरा होने तक मौसम शुष्क बना रहा। इस समय तक राज साहब की तबीयत काफी खराब लग रही थी और तेज बारिश भी शुरू हो गई थी, इसलिए उन्होंने दिन का बाकी कार्यक्रम रद्द करने का फैसला किया। वे प्रेम नाथ जी के साथ कार में बैठ गए, मैं आगे बैठा था, और उन्होंने ड्राइवर को प्रेम नाथ जी को उनकी झोपड़ी तक छोड़ने के लिए कहा।
‘गाड़ी रोको! मुझे पेशाब करना है!’ प्रेम नाथ जी चिल्लाए।
राज साहब ने उसे समझाने की कोशिश की, 'प्रेम, बहुत तेज बारिश हो रही है। अगर तुम नीचे उतरोगे तो मेरी तरह बीमार पड़ जाओगे। इसलिए बस यहीं रुको, तुम्हारी झोपड़ी बस 15 मिनट की दूरी पर है।'
प्रेम नाथ जी के बीच हंसी-मजाक जारी रहा, वे बार-बार गाड़ी रोकने की जिद कर रहे थे ताकि वे शौच कर सकें, जबकि राज साहब उनसे रुकने का अनुरोध कर रहे थे; इसी दौरान गाड़ी झोपड़ी के गेट तक पहुंच गई।
राज साहब ने कहा, 'जल्दी से अंदर जाओ और जी भर के पेशाब कर लो।'
'बहुत देर हो चुकी है, मैं अब और इंतजार नहीं कर सकता।'

कश्मीर में शूटिंग और एडिटिंग पूरी हो चुकी थी और हम पुणे में अगले शेड्यूल की तैयारी में जुट गए थे। अचानक एक शाम राज साहब ने कहा, 'मुझे वो सीन पसंद नहीं आया, इसलिए कल सुबह हम उस सीन की दोबारा शूटिंग करने चलते हैं।' अगली सुबह वो सिर्फ चिंटू, डिंपल, राधू साहब और बहुत ही कम लोगों के साथ निकल पड़े। चार दिन बाद वो वापस आए और सीन एडिट हो चुका था, लेकिन अब उन्हें वो सीन ज़्यादा पसंद आया जो उन्होंने पहले शूट किया था और आखिरकार उसे फिल्म में शामिल कर लिया गया। कश्मीर की दूसरी यात्रा कलाकारों और कम लोगों के लिए 'सभी खर्चों सहित' छुट्टी जैसी साबित हुई।
हम कैंप के दृश्यों की शूटिंग के लिए पुणे रवाना हुए, जहाँ लड़कियों को ठहरना था। यहीं पर 'बेशक मंदिर मस्जिद तोड़ो' गाने की भी शूटिंग हुई थी।
जब हम मुंबई से पुणे के लिए रवाना हुए, तो हमें इस बात का कोई अंदाजा नहीं था कि कश्मीर से मेल खाने वाली यह जगह कहाँ होगी, लेकिन राज साहब ने अपनी हाथी जैसी

याददाश्त के दम पर हमें सीधे खड़कवासला में एनडीए के बाहर जंगल में एक जगह पर पहुँचा दिया।
वहाँ पहुँचकर मैं यह देखकर दंग रह गया कि वह जगह पेड़ों से भरी थी, चारों ओर हरियाली थी और पृष्ठभूमि में पहाड़ियाँ थीं, जो उसे कश्मीर के लिए एकदम उपयुक्त बना रही थीं। मैंने उनसे पूछा, 'आपने इसे कब देखा था, महोदय?'
उन्होंने जवाब दिया, 'लगभग चार साल पहले।'
वाह! तो, आपने चार साल पहले ही एक ऐसी जगह का चुनाव कर लिया था जो कश्मीर से मेल खाती हो!
नहीं, राहुल। जब मैं इस जगह से गुज़रा था, तो यह मुझे एक खूबसूरत जगह लगी थी और वह छवि मेरी यादों में बस गई थी। जब मुझे कश्मीर से मिलता-जुलता दृश्य चुनना था, तो मैंने अपने दिमाग में मौजूद जगहों की सूची खंगाली और सबसे उपयुक्त जगह चुनी। उन्होंने चारों ओर देखा और कहा, "मुझे इस बात का ध्यान रखना होता है कि कोई बिजली का तार या कोई और चीज़ दिखाई न दे। एक निर्देशक जादूगर भी होता है और वह जो भ्रम पैदा करता है, वही दर्शक देखते हैं।"
पुणे शेड्यूल के बाद, राज साहब कुछ दिनों के लिए दिल्ली जा रहे थे और उन्होंने मुझे बॉबी के क्लाइमेक्स शूट के लिए अभिनेताओं की तारीखें तय करने का निर्देश दिया था। मैंने सोचा कि पहले प्रेम नाथ जी से तारीखें पक्की कर लूँ और फिर प्राण साहब की तारीखें उसी हिसाब से तय कर लूँ। संयोग से प्रेम नाथ जी महबूब स्टूडियो में मोहन कुमार जी की फिल्म 'अमीर गरीब' की शूटिंग कर रहे थे।
जैसे ही मैं महबूब स्टूडियो के गेट से अंदर दाखिल हुआ, मुझे एहसास हुआ कि उस दिन वहां चार शूटिंग चल रही थीं। मैंने देखा कि सभी यूनिटों के यूनिट सदस्यों, जूनियर कलाकारों और अभिनेताओं की भारी भीड़ लॉन के किनारे जमा थी, जिससे मेरा नज़ारा अवरुद्ध हो गया था। मेरी मुलाकात सलीम साहब और जावेद अख्तर साहब से हुई, जिनसे यह मेरी पहली मुलाकात थी। वे हंसते-हंसते लोटपोट हो रहे थे और बोले, 'भीड़ में से रास्ता बनाते हुए आगे बढ़ो, ऐसा नज़ारा तुम्हें दोबारा कभी नहीं मिलेगा।'

मैं किसी तरह आगे बढ़ा और देखा कि प्रेम नाथ जी लॉन के बीचोंबीच लुंगी और कुर्ते में आराम कर रहे थे। उस समय गर्मियों का मौसम चरम पर था और बर्फ के पानी से भरी बड़ी-बड़ी बाल्टियाँ रखी थीं, जिन्हें जेम्स बॉन्ड लगातार भर रहे थे। 'कमांडर' अपने सिर पर मग से बर्फ का पानी डालते रहे और उस समय के एक बहुत प्रसिद्ध द्विमासिक अखबार 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' को पढ़ने में मग्न थे, जो उस समय केवल सात महीने पुराना था! प्रेम नाथ जी तो चार दिन पुराने अखबार भी पढ़ते थे। मुझमें हिम्मत नहीं हुई कि मैं उनके पास जाकर उनसे बात करूँ, कहीं ऐसा न हो कि वे मुझे मग पकड़ने और अपने ऊपर ठंडा पानी डालने के लिए मजबूर कर दें।

मैं घर वापस आया और अगले दिन चिंटू और यूनिट को यह घटना सुनाने के लिए बेताब था, लेकिन भाग्य ने कुछ और ही तय कर रखा था।

रात के 2:30 बजे चिंटू के आने से मेरी नींद खुल गई। वह बहुत शांत था। मैंने उसे पीने के लिए कुछ दिया और उसका मूड ठीक करने के लिए प्रेम नाथ जी से हुई अपनी मुलाकात के बारे में बताया। उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं बदला, मानो उसने मेरी एक भी बात सुनी ही न हो, और उसने कहा, 'बॉबी मुश्किल में है, मेरे दोस्त। डिंपल राजेश खन्ना से शादी कर रही है!'

मैं अवाक रह गया; चिंटू ने आगे बताया, 'चुन्नीभाई ने मुझे अपने घर पर रात के खाने पर बुलाया था। काका [राजेश खन्ना] अपने कुछ दोस्तों के साथ रात करीब 11:30 बजे आए; सबने एक-दूसरे को गले लगाया और उनमें से एक दोस्त ने डिंपल को "भाभी जी" कहकर पुकारा। राहुल, मेरे सामने ये बात कौंध गई कि मेरे पापा की फिल्म एक किशोर प्रेम कहानी है और हीरोइन की शादी होने वाली है। पापा की फिल्म, मेरी पहली फिल्म, पर इसका कितना बुरा असर पड़ेगा? पापा को अभी तक इसके बारे में पता नहीं है; वो कल दोपहर दिल्ली से लौट रहे हैं। मैंने इस बारे में किसी से बात नहीं की है और जब तक तुम उन्हें ये खबर नहीं सुना देते, तब तक मैं किसी को नहीं बताऊँगा।'

अगले पूरे दिन मैं इस दुविधा में डूबा रहा कि राज साहब को कैसे बताऊँ। मैं उन्हें लेने हवाई अड्डे पर था। उन्होंने मुझे वहाँ देखा और कहा, 'यह पहली बार है जब तुम मुझे हवाई अड्डे पर लेने आए हो, इसलिए मेरा अनुमान है कि या तो तुम्हें कोई बहुत बड़ी खबर सुनानी है या फिर

जो खबर तुम मुझे सुनाना चाहते हो वह बहुत बुरी है। लेकिन तुम्हारे कांपते होंठ और पीला चेहरा देखकर मैं समझ गया हूँ कि जो तुम कहने वाले हो वह बुरी खबर नहीं है—'
मैंने झट से कह दिया, 'डिंपल राजेश खन्ना से शादी कर रही है।'
कुछ पल के लिए सन्नाटा छा गया, फिर एक मुस्कान आई और उसके बाद हंसी गूंज उठी, 'राज कपूर प्रस्तुत करते हैं "एक किशोर प्रेम कहानी" जिसमें ऋषि कपूर और डिंपल कपाडिया मुख्य भूमिका में हैं, जो भारत के सबसे बड़े स्टार की होने वाली पत्नी हैं। हा हा हा!'
जैसे ही हम स्टूडियो पहुंचे, राजेश खन्ना और डिंपल कॉटेज के गेट पर इंतजार कर रहे थे। राज साहब गाड़ी से उतरे और कॉटेज के अंदर चले गए। मुझे नहीं पता अंदर क्या हुआ। उनके बाहर आने के बाद उन्होंने कहा, 'ये लोग मुझे बताने आए थे कि इनकी शादी हो रही है और ये जल्दी करना चाहते हैं। इसलिए मैंने अगले तीन दिनों में इनकी शादी करवाने की जिम्मेदारी ले ली है। अगर ये जल्दी करना चाहते हैं, तो मैं इनकी मदद कर देता हूं। मैं सारी व्यवस्था कर दूंगा और शादी 27 मार्च को होगी। राहुल, तुम 29 मार्च से पुणे में 'मुझे कुछ कहना है' गाने की शूटिंग की तैयारी शुरू कर दो।'
I asked, ‘Sir, shaadi Tuesday ko hogi aur hum Thursday ko outdoor nikal jayenge?’
He said, ‘Haan, ek baar unki shaadi ho gayi to mujhe bhi to apni film complete karni hai.’
तो, राजेश खन्ना और डिंपल की शादी 27 मार्च को हुई। राज साहब ने शादी के हर पहलू की खुद देखरेख करते हुए बड़े ही शानदार और शाही इंतजाम किए, और हम 29 तारीख की सुबह पुणे में आउटडोर शूटिंग के लिए रवाना हो गए।
राजेश खन्ना के एक दोस्त की पत्नी डिंपल की देखभाल करने आई थीं और जब डिंपल सेट पर आईं, तो राज साहब ने मुझे फोन किया और कहा, 'भगवान का शुक्र है, उन्होंने समझदारी दिखाते हुए ज्यादातर दुल्हनों की तरह कोहनी तक मेहंदी नहीं लगवाई। यह सिर्फ हथेलियों पर है और मुझे इस तरह से मैनेज करना होगा कि यह गाने में दिखाई न दे।'
अगर आप गाना देखेंगे तो आपको मेहंदी सिर्फ एक शॉट में ही दिखाई देगी, वो भी मुश्किल से। राज साहब ने चतुराई से मेहंदी के आसपास शूटिंग करके उसे छिपा लिया। उन्होंने पोस्टर

डिजाइन कर रहे जे.पी. सिंघल को फोन किया और कहा, “‘टीनएज लव स्टोरी” की जगह “लव सबलाइम – राज कपूर द्वारा फिल्माया गया” लिख दीजिए।’
उन्होंने मेरी ओर मुड़कर कहा, 'हमें अब इस फिल्म को जल्द से जल्द पूरा करना होगा!'

बॉबी: एपिसोड 5

अब हम बॉबी की शूटिंग के अंतिम चरण - क्लाइमेक्स - की ओर बढ़ रहे थे। क्लाइमेक्स में चिंटू और डिंपल भाग जाते हैं और उनके माता-पिता - प्राण साहब पुलिस के साथ उनका पीछा करते हैं और प्रेम नाथ जी अकेले ही प्रेमियों का पीछा करते हैं।

राज साहब ने शूटिंग के लिए तीन स्थान तय किए थे – पहला दृश्य इगतपुरी घाट में शुरू होगा, दूसरा कर्नाटक के शिवनसमुद्र विद्युत संयंत्र में, जहाँ टरबाइनों से निकलता पानी अभिनेताओं को झरने के प्रचंड प्रवाह में बहते हुए दिखाने के लिए आदर्श था, और तीसरा तमिलनाडु के होगेनक्कल जलप्रपात में। इन सभी दृश्यों को स्क्रीन पर एक ही जगह के रूप में दिखाया जाएगा।

शूटिंग इगतपुरी में शुरू हुई और पहले दिन की शूटिंग के बाद हम नासिक में रात बिताने के लिए चले गए, जहाँ उन्होंने कहा, 'यह जगह रोमांचक नहीं है, पुणे में इससे कहीं बेहतर जगहें हैं।' इसलिए अगले दिन, हम पूरी टीम को पुणे ले गए। वे शिरडी होते हुए जाना चाहते थे ताकि पूरी टीम साईं बाबा के मंदिर में दर्शन कर सके।

हमने पुणे के बाहरी इलाके में स्थित कटराज घाट पर शूटिंग करने का फैसला किया, जहाँ घाट के तल पर एक रेस्तरां था, जहाँ प्रेम चोपड़ा जी का परिचय दृश्य फिल्माया गया था; राज साहब ने स्वयं यह वाक्य गढ़ा था, 'प्रेम नाम है मेरा, प्रेम चोपड़ा!' यह वाक्य प्रतिष्ठित हो गया। हमने वहाँ बड़े पैमाने पर और बहुत तेज़ गति से शूटिंग की, क्योंकि हम किसी भी प्रकार की देरी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे, क्योंकि हम फिल्म को जल्द से जल्द पूरा करके रिलीज़ करना चाहते थे।

कात्रज घाट पर शूटिंग खत्म करने के बाद हम बैंगलोर और मैसूर की ओर रवाना हुए, जहाँ 'बॉबी' मोटरसाइकिल - एक प्यारी सी छोटी मोटरसाइकिल जिसे एस्कॉर्ट्स कंपनी ने खास तौर पर फिल्म के लिए बनाया था और फिल्म रिलीज होने के बाद व्यावसायिक रूप से बेचा गया था - का इस्तेमाल रामनगरम की अनछुई जगह पर ऊबड़-खाबड़ इलाके में पीछा करने वाले दृश्यों में किया गया। बाद में यही वह जगह बनी जहाँ शोले की शूटिंग हुई। फिल्म रिलीज

होने के बाद, 'बॉबी' मोटरसाइकिल, चिंटू और डिंपल के साथ, मशहूर हो गई और आम लोगों के बीच बहुत लोकप्रिय हुई।
फिर अंत में हम बैंगलोर से डेढ़ घंटे की दूरी पर स्थित होगेनक्कल के लिए रवाना हुए और झरने के निकट स्थित स्थल पर डेरा डाला।
शूटिंग जारी रही, लेकिन भीषण गर्मी के कारण हमारी गति धीमी पड़ने लगी थी। क्लाइमेक्स में एक शॉट था, जिसमें चिंटू और डिंपल चट्टान से पानी में कूदते हैं। हालांकि कूदने का दृश्य डुप्लिकेट्स के साथ फिल्माया गया था, जिन्होंने काफी ऊंचाई से छलांग लगाई थी, फिर भी हमें कूदने से पहले चट्टान से चिंटू और डिंपल के क्लोज-अप शॉट्स की आवश्यकता थी। चिंटू और डिंपल को केवल ढाई फीट ऊंची चट्टान से कूदना था और रेत पर उतरना था, जिससे कोई खतरा न हो।
मैं डिंपल के पास गई और उसे राज साहब के निर्देश समझाए, 'तुम और चिंटू यहाँ हाथ पकड़कर खड़े हो, और जैसे ही राज साहब "तीन" बोलेंगे, तुम दोनों कूद जाओगे। तुम्हें चिंता करने की ज़रूरत नहीं है, ऊँचाई बहुत कम है और नीचे सिर्फ़ रेत है, इसलिए यह 100 प्रतिशत सुरक्षित है।'
डिंपल ने जवाब दिया, 'राहुल, मैं यह शॉट नहीं खेलूंगी।'
मैंने पूछा, 'क्या तुम ढाई फीट की छलांग से डरते हो?'
उसने कहा, 'नहीं, मुझे डर नहीं लग रहा है, लेकिन मैं यह इंजेक्शन नहीं लगवाऊंगी क्योंकि मैं गर्भवती हूं!'
अब तक की सबसे दुखद खबर मैंने सुनी थी। मैंने उससे कहा, '250 लोगों की यूनिट में, तुमने सिर्फ मुझे ही यह बात बताई?' उसने कोई जवाब नहीं दिया और बस जाकर अपने सहायक के बगल वाली कुर्सी पर बैठ गई। अब मुझे समझ नहीं आ रहा था कि इस स्थिति में क्या करूं और मैं पूरी तरह से असमंजस में थी कि बॉस को यह खबर कैसे बताऊं।
मैं खड़ा होकर खोया-खोया सा घूर रहा था, तभी थोड़ी दूरी पर बैठे राज साहब ने पुकारा, 'राहुल, क्या हुआ?' मैं धड़कते दिल के साथ उनके पास गया और उन्होंने पूछा, 'तुम डिंपल से कुछ कह रहे थे, उसने जवाब दिया और चली गई और कुर्सी पर बैठ गई, और तब से तुम ऐसे लग रहे हो जैसे तुमने कोई भूत देख लिया हो। बताओ, क्या हुआ है?'

मैंने हिचकिचाते हुए जवाब दिया, 'सर, उन्होंने यह फोटोशूट कराने से मना कर दिया क्योंकि वह गर्भवती हैं।'

उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी, बस एक व्यंग्यात्मक मुस्कान के साथ खाली जगह को देखते रहे। अचानक वे खड़े हो गए और ज़ोर से बोले, 'पैक-अप!' यूनिट के लोग काफी चौंक गए क्योंकि दोपहर के लगभग 3 बजे ही थे, और इस पर कोई प्रतिक्रिया न देने वाली एकमात्र व्यक्ति डिंपल थीं। उन्होंने यूनिट की ओर मुड़कर कहा, 'मेरी तबीयत ठीक नहीं है इसलिए मैं डाक बंगले वापस जा रहा हूँ। आप लोग पिकनिक मनाइए, मज़े कीजिए और हम शाम को साथ में ड्रिंक्स लेंगे। मैं राहुल को शूटिंग के बारे में चर्चा करने के लिए अपने साथ ले जा रहा हूँ।'

राधू साहब और बाकी यूनिट के लोग तुरंत समझ गए कि कोई बड़ी समस्या है और वह डाक बंगले में अकेले रहना चाहते हैं।

जब हम कार में बैठे थे, तो उनकी आवाज़ में दुख झलक रहा था, 'यह बहुत ही गैरजिम्मेदाराना व्यवहार है। काश लोग मेरी हालत समझ पाते। मैं एक "किशोरावस्था की प्रेम कहानी" पर काम कर रहा हूँ और इस एक फिल्म पर मैंने अपनी सारी संपत्ति, अपने परिवार का पूरा भविष्य और प्रतिष्ठा दांव पर लगा दी है। मेरी ज़िंदगी में सब कुछ दांव पर लगा है।' वहाँ सन्नाटा छा गया और मेरी आँखों में आँसू आ गए। मेरी तरफ देखते हुए उन्होंने कहा, 'बेटा, यह तुम्हारे लिए एक और महत्वपूर्ण सबक है, जिसे तुम्हें याद रखना चाहिए। जब तुम कोई फिल्म निर्देशित करोगे, तो शायद तुम्हें ऐसी स्थिति का सामना करना पड़े जहाँ तुम फिल्म को रद्द करने का जोखिम नहीं उठा सकते और हताशा से घिरे हुए महसूस करोगे। कभी हार मत मानो, बल्कि इस लड़ाई को लड़ने और विजयी होने के लिए खुद को तैयार करो। अगर तुम्हारी नीयत नेक है, तो समाधान तुम्हें ज़रूर मिल जाएगा। घर जाओ, एक ड्रिंक लो और सोचो कि तुम्हारा सपना और ईमानदारी से की गई मेहनत एक ऐसी चिता पर है जिसे अभी-अभी जलाया गया है; मूसलाधार बारिश भी आग को भड़कने नहीं देगी!'

हम डाक बंगले पर पहुँचे, वो नहाने के लिए अंदर गए, बाहर आए और हालाँकि दिन का थोड़ा जल्दी समय था, उन्होंने अपने लिए एक ड्रिंक बनाई। उन्होंने कहा, 'तुम्हें सब कुछ व्यवस्थित करना होगा। मुंबई फोन करो, मुझे प्राण साहब और प्रेम अगले चार दिनों के भीतर चाहिए।

हमारे पास दो कैमरे हैं, स्टूडियो से कहो कि हमें दो और कैमरे और दोनों कैमरों के लिए फोकस पुलर भेज दें।' शूटिंग में तेजी लाने के लिए उन्होंने दूसरी यूनिट की शूटिंग की भी योजना बनाई थी, इसलिए ज़रूरतों की सूची काफी लंबी हो गई।

मुझे इंतज़ाम करने के लिए भेजा गया। उस जगह के सबसे नज़दीकी टेलीफ़ोन डेढ़ घंटे से ज़्यादा की ड्राइव पर था। जब मैंने बॉम्बे में एक छोटी सी कॉल की, तो वह कॉल बिल्कुल भी छोटी नहीं थी, क्योंकि जब मैं वापस लौटा, तब तक सुबह के दो बज चुके थे।

वह अभी भी जाग रहे थे, राधू साहब के साथ बैठे थे और कुछ घंटे पहले खुद के लिए परोसी गई पहली ड्रिंक पी रहे थे, जबकि यूनिट के बाकी सभी लोग सो चुके थे। जैसे ही मैं अंदर आया, उन्होंने पूछा, 'अतिरिक्त कैमरे और क्रू कब आएंगे?'

मैंने कहा, 'वे कल दोपहर यहां होंगे।'

उन्होंने जवाब दिया, 'मैं नहीं चाहता कि यह खबर फैले। कल की गोलीबारी रद्द कर दो, यूनिट को बता दो कि हम गर्मी के कारण गोलीबारी नहीं कर रहे हैं। हमें योजना बनानी होगी कि दोनों यूनिट कैसे काम करेंगी।'

कुछ चर्चा के बाद, उन्होंने तय किया कि फाइट मास्टर मंसूर भाई डुप्लिकेट और फाइटरों के साथ दूसरी यूनिट का काम संभालेंगे। क्लाइमेक्स की शूटिंग से ठीक पहले आए नए सहायक कुकू कोहली दूसरी यूनिट की सहायता करेंगे, और मैं प्राण साहब और प्रेम नाथ जी के चार दिन बाद आने से पहले चिंटू और डिंपल के दृश्यों की शूटिंग के दौरान राज साहब की पहली यूनिट में सहायता करूंगा।

शूटिंग अब बेहद तेज़ी से चल रही थी, और यहाँ तक कि राज साहब भी सुबह सात बजे सेट पर पहुँच जाते थे। यह थका देने वाला था, लेकिन हमने लगभग सारा काम पूरा कर लिया था। चार दिन बाद प्राण साहब और प्रेम नाथ जी आए और हमें दोनों यूनिटों को एक साथ लाना पड़ा ताकि अभिनेताओं से जुड़ा सारा काम पूरा हो सके।

शूटिंग वाले दिन सुबह मैंने प्रेम नाथ जी को पूरी वेशभूषा में शूटिंग लोकेशन की ओर आते देखा, बस जैकेट गायब थी, जो पूरी फिल्म में उनकी वेशभूषा का अभिन्न अंग थी। मैंने जैकेट मंगवाई, लेकिन वो इस्त्री की हुई नहीं थी। मैंने कॉस्ट्यूम सुपरवाइजर पर जमकर गुस्सा

निकाला कि जैकेट तैयार क्यों नहीं थी, तो उन्होंने जवाब दिया, 'कुक्कू ने बोला कि क्लाइमेक्स में नहीं देने का है तो मैंने नहीं दिया।'

कुकू कोहली मुझे एक तरफ खींचकर ले गए, ताकि मैं उनकी बात न सुन सकूँ, और शर्मिंदा होकर बोले, 'मुझे माफ करना, मैंने यह मान लिया था कि एक्शन सीन में जैकेट की जरूरत नहीं होगी।'

मुझे बहुत गुस्सा आया, 'क्या तुम पागल हो गए हो? पूरे एक्शन सीक्वेंस की शूटिंग के बाद, क्या तुम हमसे उम्मीद करते हो कि हम इसे दोबारा शूट करें क्योंकि तुमने एक बेवकूफ की तरह व्यवहार किया?'

Kuku, very repentant, said, 'Arre yaar galti ho gayi. Raj Sahab toh khoon kar denge mera. Mujhe bacha le Rahul!'

उन्होंने प्रेम नाथ जी के डुप्लिकेट को बिना जैकेट के ही पूरे क्लाइमेक्स सीन में शूट कर लिया था!

मैं पूरी तरह असमंजस में था और समझ नहीं पा रहा था कि कुकू की इस महंगी गलती से हम कैसे उबरेंगे। समस्या से अस्थायी रूप से बचने के लिए, मैंने कुकू से कहा, 'इस बारे में किसी से बात मत करना। इसका ज़िक्र तक मत करना! चलो बिना जैकेट के ही शूटिंग जारी रखते हैं।'

हमने अगले चार दिनों में पूरा क्लाइमेक्स शूट कर लिया, और मेरे दिमाग का शैतानी हिस्सा अचानक जाग उठा और राज साहब से और झूठ बोलने लगा। हर शेड्यूल के अंत में, वह हमेशा मुझसे पूछते थे, 'राहुल, सब काम खत्म हो गया ना?'

मैं अपने साथ एक नोटबुक रखता था जिसमें मैं उन सभी बैलेंस शॉट्स को नोट करता था जिन्हें शूट करना होता था। मैंने बस नोटबुक खोली और साफ झूठ बोल दिया, 'सर, एक शॉट बाकी है।'

He said, 'Kaunsa shot?'

मैंने कहा, 'आपने कहा था कि प्रेम नाथ जी की कार रुकने के बाद हमें एक शॉट लेना है और उसमें चिंटू और डिंपल को प्रेम चोपड़ा जी और लड़ाकों द्वारा परेशान किए जाने का दृश्य

शामिल करना है। आपने कहा था कि जिस शॉट की हमें ज़रूरत है, उसमें प्रेम नाथ जी अपनी जैकेट उतारकर बच्चों की ओर दौड़ेंगे।'

He said, 'Maine bola tha?'

मैंने कहा, 'जी।'

उन्होंने कहा, 'तुम झूठ बोल रहे हो! मैं इतना बेवकूफ नहीं हूँ कि मुझे इस तरह के बेवकूफी भरे शॉट की ज़रूरत हो। उसे अपनी जैकेट क्यों उतारनी चाहिए?'

मैंने कहा, 'सर, इस बैलेंस शॉट के बारे में आपके निर्देशों को ध्यान में रखते हुए, हमने क्लाइमेक्स में उसे जैकेट नहीं दी।'

उन्होंने कहा, 'ऐसा कैसे हो सकता है?!'

मैंने कहा, 'सर, आपने ही तो कहा था।'

वह परेशान होकर बैठ गया और खुद से कहने लगा, 'राज कपूर, फिल्म को जल्दबाजी में पूरा करने के इस तनाव ने तुम्हें एक बेहद मूर्खतापूर्ण शॉट लेने पर मजबूर कर दिया है।'

मुझे बहुत डर था कि कहीं वो नोटबुक का वो पन्ना न मांग लें जिस पर मैंने उनके निर्देश लिखे थे, लेकिन ऐसा कोई पन्ना था ही नहीं! मैंने झटपट उनका ध्यान भटकाया और ड्राइवर को प्रेम नाथ जी की गाड़ी लाने का आदेश दिया और राज साहब से शॉट के निर्देश देने को कहा। हमने वो एक शॉट लिया; कुकू को राहत मिली और मुझे बहुत बुरा लगा कि मैंने बॉस से झूठ बोला था, लेकिन मैंने ये भी ठान लिया कि ये झूठ मैं अपने साथ कब्र में ले जाऊंगा।

एडिटिंग के दौरान, रशेस देखते समय, और यहां तक कि प्रीमियर में जब वह शॉट दिखाया गया, तो राज साहब ने मुड़कर पूछा, 'क्या मैंने आपको बताया था कि मुझे यह शॉट चाहिए था?'

मेरा हमेशा का जवाब होता था, 'सर, अगर आपने मुझे बताया नहीं होता, तो मैं आपसे इसे शूट करने के लिए क्यों कहता?'

उसने कहा, 'मैं इतना बेवकूफ कैसे हो सकता हूँ? यह तो बहुत बुरा लग रहा है।'

उन्हें इतना यकीन था कि मैं झूठ बोल रही हूँ कि आखिरकार प्रीमियर के बाद की पार्टी के अंत में, जहाँ केवल कुछ ही यूनिट सदस्य मौजूद थे और वे नशे में धुत थे, उन्होंने कहा, 'चलो

बेटा, अब तो फिल्म रिलीज हो गई। क्या मैंने तुम्हें उस बेवकूफी भरे शॉट के बारे में सच में बताया था?'

मैंने कहा, 'जी हां, आपने किया!' और फिर मुझे यह एहसास हुआ कि मैं उसी व्यक्ति को धोखा दे रहा था जिसने मुझ पर इतना भरोसा किया था। मैंने सच बताने का फैसला किया, 'मुझे यह स्वीकार करना होगा, महोदय, कि आपने उस शॉट के लिए कभी नहीं कहा था और मुझे अपनी गलती छुपाने के लिए झूठ बोलना पड़ा।'

उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा, 'मैं हमेशा सोचता था कि मेरी याददाश्त कमजोर क्यों हो रही है, जो मेरे जीवन में पहले कभी नहीं हुआ। एक बात याद रखना, बेटे, जब तुम एक बार झूठ बोलते हो, तो उसे छुपाने के लिए दोबारा झूठ बोलोगे और यह दुष्चक्र कभी खत्म नहीं होगा, और जीवन तुम्हें इसके लिए कभी माफ नहीं करेगा। हर कर्म का फल मिलता है और अंत में तुम तक वापस आता है। इसलिए, मुझे बहुत खुशी है कि तुमने आखिरकार सच बोल दिया।'

बॉबी: द फिनाले

बॉबी का काम आखिरकार पूरा हो गया और अब हमें डबिंग शुरू करनी थी।
राज साहब आम तौर पर डबिंग में शामिल नहीं होते थे क्योंकि उन्हें अपने साउंड इंजीनियर खान साहब पर बहुत भरोसा था। खान साहब तो अपने रिकॉर्डिंग केबिन में बैठकर डबिंग की निगरानी करते रहते थे और मेरे जैसे सहायकों को ही अभिनेताओं के बेतुके सवालों का सामना करना पड़ता था, या बॉबी के मामले में, डबिंग रूम में इस डर से खड़े रहना पड़ता था कि कहीं प्रतिभाशाली अभिनेता प्रेम नाथ जी उन्हें बुरी तरह पीट न दें।
हमारी डबिंग शुरू होने से ठीक पहले, प्रेम नाथ जी ने आरके थिएटर में 'शोर' के लिए डबिंग की थी। मनोज कुमार सर के मुख्य सहायक सिकंदर खन्ना जी डबिंग का काम संभाल रहे थे। एक डबिंग सेशन के दौरान, उन्होंने प्रेम नाथ जी से कहा कि उन्हें अपनी डबिंग में सुधार करने की जरूरत है और प्रेम नाथ जी लगभग उन पर हाथ उठाने ही वाले थे। यह कहानी सुनकर मैं बहुत डर गया और मैंने राज साहब को फोन करके कहा, 'सर, प्रेम नाथ जी ने मनोज कुमार सर के सहायक को लगभग पीट ही दिया था, उम्मीद है कि वह मेरे साथ ऐसा नहीं करेंगे।'
राज साहब ने मजाक में कहा, 'मुझे उम्मीद है कि वो ऐसा ही करेगा। बॉबी की शूटिंग के दौरान तुमने मुझे जितनी भी परेशानियां दी हैं, उसका ये मेरा बदला होगा!' और वो हंसने लगे।
डबिंग की तैयारी में, पूरी फिल्म को छोटे-छोटे हिस्सों में बांटना पड़ा, जो फिर प्रोजेक्टर पर स्वतंत्र रूप से लेकिन लगातार चलते रहेंगे, ताकि संवादों के एक निश्चित सेट को बार-बार रिकॉर्ड करने के अलावा, अभिनेता के लिए एक लय भी निर्धारित की जा सके जिससे उन्हें एक ही पंक्तियों को बार-बार बोलने में आसानी हो।
डबिंग के पहले दिन प्रेम नाथ जी आए, सोफे पर बैठ गए, अपना हारमोनियम और बांसुरी (जो उनके अजीबोगरीब सामानों में एक नया जुड़ाव था) बिछाया और बोले, 'शुरू करो!' लूप शुरू हो गया और चूंकि मैं उनके ठीक बगल में खड़ा था, उन्होंने फिर से मेरा कॉलर पकड़कर मुझे खींचा और चिल्लाए, 'अरे नगर पालिका, मुझे रील देखनी है, लूप नहीं!'
दोबारा पुष्टि करने के लिए, मैंने उनसे पूछा, 'सर, सिर्फ यह रील या पूरी फिल्म?'

उन्होंने बांसुरी से मेरे सिर पर प्रहार किया, अचानक लगे झटके से मेरे दिमाग में संगीत की धुनें बजने लगीं, और उन्होंने कहा, 'जो लूप तुमने मुझे दिखाया है, मैं उसे सबसे पहले डब करूंगा। बाकी जिन लूप्स को मुझे डब करना है, उन्हें डब करने से पहले मुझे एक रील में जोड़ना होगा। इसलिए, किसी लूप को देखने के बाद ही मैं उस लूप को डब करने या किसी और लूप को डब करने का अपना निर्णय बताऊंगा।'

इसका मतलब यह था कि हमें रील में लूप्स को उनकी मनमर्जी के अनुसार बेतरतीब ढंग से फिर से जोड़ना होगा। आखिरकार, उन्होंने रील देखी, कहा कि वे तैयार हैं और हमें रील को फिर से लूप्स में अलग करना पड़ा। उन्होंने डब किए जा रहे दृश्य के अपने पूरे परिधान मांगे और मेकअप भी करवाया। स्पीकर पर लूप के संवाद बज रहे थे और वे हारमोनियम या बांसुरी बजाने लगे, संवाद के लिए सही सुर ढूंढने की कोशिश कर रहे थे! जैसे ही लूप बजना शुरू हुआ, वे चिल्लाए, 'मैंने तुमसे कहा था, मुझे मेरा परिधान चाहिए। तुमने जो लुंगी दी है उसका रंग अलग है और टोपी भी नहीं है!' यह कहकर वे गुस्से में स्टूडियो से बाहर चले गए। वे अगली सुबह डबिंग के लिए वापस आए; मैंने पहले ही उनके सारे परिधान और सामान निकाल कर रख दिए थे क्योंकि मैं समझ गई थी कि यह सनकी आदमी किसी भी समय किसी भी दृश्य की डबिंग करवाना चाहेगा और उसे अपने परिधान की आवश्यकता होगी।

लूप शुरू हुआ और प्रेम नाथ जी ठीक उसी तरह चलने लगे जैसे उन्होंने सीन में किया था। प्रेम नाथ जी को माइक से दूर जाते देख बूम मैन दंग रह गया। उसने कहा, 'अगर आप चलते रहेंगे तो मैं माइक्रोफोन को आपकी आवाज़ को सही ढंग से रिकॉर्ड करने के लिए कैसे एडजस्ट कर पाऊंगा?'

प्रेम नाथ जी ने जवाब दिया, 'कोई बात नहीं, राज कपूर से कहो कि मेरे सारे सीन दोबारा शूट करें और मुझे हिलने-डुलने की इजाजत न दें, फिर मैं डबिंग के दौरान नहीं हिलूंगा। अगर मैं हिलता हूं, तो माइक्रोफोन भी मेरे साथ हिलता है।'

तब तक खान साहब स्टूडियो में आ चुके थे और उन्होंने यह बातचीत सुन ली। उन्होंने बूम मैन से कहा, 'दत्ता, कृपया, आपको थोड़ा एडजस्ट करना होगा। माइक को वहीं ले जाइए जहां वह हिल रहा है और तब तक हिलाते रहिए जब तक वह रुक न जाए।'

तो, एक अजीबोगरीब और हास्यास्पद दृश्य शुरू हो गया, हालांकि किसी में भी हंसने की हिम्मत नहीं थी। प्रेम नाथ जी चल रहे थे और बूम मैन उनके पीछे-पीछे चल रहा था; प्रेम नाथ जी घूमने लगे और बूम मैन भी उनके साथ घूमने लगा। फिर प्रेम नाथ जी लेट गए और बूम मैन माइक उनके चेहरे के पास ला रहा था कि प्रेम नाथ जी अचानक उठ गए और माइक उनके चेहरे से टकरा गया।

मैंने कॉटेज में राज साहब को फोन किया, 'सर, यह सब हो रहा है!' और उन्हें सब कुछ समझाया।

वह दिल खोलकर हँसा और बोला, 'करो करो। मुझसे समाधान मत पूछो। डबिंग का काम तुम्हें ही संभालना है।'

हम चरमोत्कर्ष पर पहुंचे और मैंने प्रेम नाथ जी से अनुरोध किया, 'सर, जब आप पानी में बच्चों को बचाने की कोशिश कर रहे हों, तो मुझे आपकी ओर से बीच-बीच में "बॉबी! राजा!" जैसी आवाजें चाहिए। हम उन्हें अलग-अलग जगहों पर रख देंगे।'

उन्होंने कहा, 'ठीक है, पानी कहाँ है?'

मैंने बॉन्ड से कहा, 'कमांडर के लिए एक गिलास पानी लाओ।'

प्रेम नाथ जी ने कहा, 'पानी का गिलास कैसा? मुझे डबिंग थिएटर में पानी भरवाना है। मुझे तेज धारा में तैरना है, इसलिए पानी में हिले बिना मुझे सही एहसास नहीं होगा!'

मैंने कहा, 'सर, मुझे बस 10 मिनट दीजिए।'

मैं झोपड़ी की ओर भागा और बॉस से कहा, 'सर, वो डबिंग थिएटर में पानी भरना चाहते हैं! मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ? अगर मैंने मना किया तो वो मुझे मारेंगे!'

राज साहब ने शांत भाव से कहा, 'मेरे थिएटर में पानी भरने की हिम्मत मत करना। और अगर वो तुम्हें मारे, तो सह लेना, मेरे पास कोई उपाय नहीं है। मैंने बार-बार कहा है कि डबिंग तुम्हारी जिम्मेदारी है। जाओ और संभालो।'

मैंने हिम्मत जुटाई, थप्पड़ पड़ने की आशंका से चेहरे पर रुमाल रखा और प्रेम नाथ जी से कहा, 'माफ़ कीजिए सर, थिएटर में पानी भरने का कोई तरीका नहीं है।'

उसने जवाब दिया, 'मुझे स्विमिंग पूल ले चलो, मैं वहीं डबिंग करूंगा।'

मैंने कहा, 'हम ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि वातावरण की ध्वनि डब की गई ध्वनि को बाधित करेगी।'

वह गुस्से से आग बबूला होकर बाहर निकला, बगल के बाथरूम में गया, शॉवर चालू किया, भीगा हुआ वापस थिएटर में भागा और चिल्लाया, 'मैं अब किरदार में आ गया हूँ। आवाज़ चालू करो!'

वह थिएटर में इधर-उधर घूमने लगा, लेटकर चिल्लाने लगा, 'बॉबी! राजा!' एक पल उसे लगा कि उसका शरीर सूख गया है, जबकि ऐसा बिलकुल नहीं था, इसलिए वह बाथरूम में भागा, एक बार फिर शॉवर के नीचे खड़ा हुआ और वापस आकर 'बॉबी! राजा!' चिल्लाना जारी रखा।

आखिरकार, गुरुवार, 27 सितंबर 1973 को, फिल्म बॉम्बे के सबसे प्रतिष्ठित सिनेमाघर मेट्रो सिनेमा में रिलीज़ हुई। फिल्म की अग्रिम बुकिंग ने इतिहास रच दिया था। पहले दिन, मेट्रो में कोई व्यावसायिक शो नहीं था, बल्कि केवल चार 'निमंत्रण-आधारित' शो थे। पहला शो स्टाफ और यूनिट के लिए था (जिसमें मैंने अपने दोस्तों के लिए कुछ सीटें आरक्षित कर ली थीं), दूसरा प्रेस के लिए, तीसरा कैंपियन स्कूल के लिए चैरिटी शो था और चौथा प्रीमियर था, जहाँ बालकनी की सीटें कैंसर सोसाइटी ऑफ इंडिया के लिए दान में बेची गईं और स्टॉल्स में समाज के प्रतिष्ठित लोग और फिल्म उद्योग के सितारे मौजूद थे। मैंने यहाँ भी चार सीटें आरक्षित कर ली थीं!

जब पहला शो चल रहा था, तभी एक अजीब घटना घटी। सूट पहने एक व्यक्ति, जिसके साथ उच्च न्यायालय का एक अधिकारी भी था, ने थिएटर के प्रवेश द्वार पर मुझसे पूछताछ की।

मैं बाहर निकला और तभी सूट पहने एक वकील ने मुझे रोका और बताया, 'इस फिल्म का सार्वजनिक प्रदर्शन तुरंत बंद करना होगा क्योंकि मेरे मुवक्किलों ने बॉम्बे उच्च न्यायालय से निषेधाज्ञा प्राप्त कर ली है।' वही निषेधाज्ञा मुझे बेलीफ ने सौंपी।

राज कपूर की पिछली फिल्मों से पैसा कमाने वाले फाइनेंसर बॉबी के विदेशी अधिकार बहुत कम कीमत पर चाहते थे। राज साहब ने मना कर दिया, क्योंकि वे उन पर कोई एहसान नहीं कर रहे थे, बल्कि उन पर भारी चक्रवृद्धि ब्याज वसूल रहे थे, जिसे उन्हें फिल्म रिलीज होने से पहले चुकाना पड़ता। इसलिए, उन्होंने अपनी पसंद के वितरक को विदेशी अधिकार सौंप

दिए और इसके बदले में अच्छी खासी रकम प्राप्त की। रिलीज से पहले, उन्होंने फाइनेंसरों का पूरा हिसाब चुका दिया था, लेकिन उन्होंने उन्हें चिढ़ाने के लिए आखिरी समय में फिल्म की रिलीज रोकने के लिए झूठा दावा किया और निषेधाज्ञा प्राप्त कर ली। वे सचमुच बेईमान थे और उन्होंने इस बात पर जरा भी ध्यान नहीं दिया कि राज कपूर ने अपनी फिल्मों के जरिए उन्हें अरबपति बनाया था, और न ही इस बात पर कि उन्होंने कभी भी उन्हें उस समझौते के तहत मिलने वाला सही मुनाफा नहीं दिया, जिसने उनकी कंपनी को मजबूती दी थी।

राज साहब थिएटर जा रहे थे, उनसे संपर्क करने के लिए कोई मोबाइल फोन नहीं था और मुझे समझ नहीं आ रहा था कि इस स्थिति से कैसे निकलूं। मेट्रो के सहायक प्रबंधक, जो एक युवा व्यक्ति थे, ने शो को जारी रखने के लिए एक अस्थायी समाधान निकाला।

उन्होंने वकील से कहा, 'निषेध आदेश में कहा गया है कि फिल्म का कोई भी सार्वजनिक प्रदर्शन प्रतिबंधित है। आज हमारे सभी शो केवल 'निमंत्रण पर आधारित' हैं और सार्वजनिक प्रदर्शन की श्रेणी में नहीं आते। इसलिए आज निषेधाज्ञा लागू नहीं होती।'

वकील के पास कोई जवाब नहीं था और वह थिएटर से चले गए। जब राज साहब, डब्बू साहब के साथ आए, तो उन्हें स्थिति से अवगत कराया गया और वे तुरंत अपने वकील के साथ अदालत पहुंचे और निषेधाज्ञा हटवा ली।

प्रेस कॉन्फ्रेंस ज़बरदस्त सफल रही। सबको फिल्म बहुत पसंद आई, सिवाय एक बेवकूफ के जिसने मुझसे कहा, 'यह फिल्म फ्लॉप होगी क्योंकि इसका क्लाइमेक्स पानी में है। पानी वाले क्लाइमेक्स वाली कोई फिल्म सफल नहीं होती।' उस पल मेरा मन किया कि उसे एक थप्पड़ मार दूं या यूं कहूं कि उसे डुबो दूं।

कैंपियन स्कूल के चैरिटी शो में, प्रधानाचार्य इस बात पर स्कूल के गर्व के बारे में बात कर रहे थे कि स्कूल के पूर्व छात्र ऋषि कपूर राज कपूर की फिल्म में अभिनय कर रहे हैं; उन्होंने चिंटू की शैक्षणिक उपलब्धियों की भी प्रशंसा की। पीछे खड़े राज साहब ने दबी आवाज़ में कहा, 'मुझे नहीं लगता कि इस बेवकूफ को पता है कि चिंटू नौवीं कक्षा में फेल हो गया था, मुझे उसे प्रमोट करने के लिए स्कूल को एक ट्रॉफी दान करनी पड़ी थी और फिर वह ग्यारहवीं कक्षा में भी फेल हो गया था।'

फिल्म के प्रीमियर के बाद की पार्टी में, फिल्म इंडस्ट्री के लोग फिल्म की जमकर तारीफ कर रहे थे। गर्व से भरे राज साहब फिल्म यूनिट के सदस्यों के पास आए, हम सभी को ड्रिंक पिलाई और कहा, 'इस उपलब्धि के लिए मुझे आप सभी का शुक्रिया अदा करना है, जो अकेले मेरे लिए संभव नहीं थी।'

अगले दिन, शुक्रवार को, जब फिल्म सभी सिनेमाघरों में रिलीज हुई, तो मैंने दर्शकों की प्रतिक्रिया जानने के लिए जिन भी स्क्रीनिंग में भाग लिया, उन सभी में मैंने उन्माद का माहौल देखा।

दिन के अंत तक, खबरों के मुताबिक, फिल्म को दिल्ली और उत्तर प्रदेश को छोड़कर पूरे देश में जबरदस्त प्रतिक्रिया मिली। दिल्ली और उत्तर प्रदेश में बेईमान फाइनेंसरों द्वारा झूठी चाल चलकर फिल्म की रिलीज में देरी करने के कारण फिल्म रिलीज नहीं हो सकी। दिल्ली और उत्तर प्रदेश में रिलीज में देरी का फायदा वकील सिंह जी ने खूब कमाया। फरीदाबाद में फिल्म के अतिरिक्त शो चल रहे थे क्योंकि वह पंजाब में था और वहां रिलीज पर कोई प्रतिबंध नहीं था। लोगों में इतना जुनून था कि फिल्म देखने के लिए दिल्ली से फरीदाबाद और वापस दिल्ली तक लोगों को लाने-ले जाने के लिए विशेष 'बॉबी बसें' चलाई गईं!

छह सप्ताह बाद, फिल्म की रिलीज पर लगी आपत्ति दूर हो गई और फिल्म दिल्ली और उत्तर प्रदेश में रिलीज हुई। हमने दिल्ली में प्रीमियर में भाग लिया और फिल्म के लिए अभूतपूर्व भीड़ और सराहना देखी, हालांकि ज्यादातर लोगों ने फिल्म को फरीदाबाद में कई बार देखा था।

वकील सिंह जी ने ज़िद की कि हम पंजाब आएं। तो हम अमृतसर गए, और हवाई अड्डे से गाड़ी चलाते हुए हमें ‘बॉबी लॉन्ड्री’, ‘बॉबी टेलर’, ‘बॉबी बार्बर’, ‘बॉबी दिस’, ‘बॉबी दैट’ और ‘बॉबी बुचर’ भी देखने को मिले! बॉबी सचमुच एक कल्ट क्लासिक बन चुका था।

हम सिनेमा हॉल गए, जहाँ बॉबी फिल्म अब सातवें सप्ताह में चल रही थी, लेकिन बेसब्री से इंतज़ार की जा रही फिल्म के पहले दिन उम्मीद से कहीं ज़्यादा भीड़ थी। बुकिंग बोर्ड पर 'हाउस फुल' लिखा था।

हम अंदर गए और मैंने देखा कि बुकिंग विंडो खुली हुई थी, जबकि बोर्ड पर लिखा था कि हॉल फुल है, और दो महिलाएं टिकट बेच रही थीं। मैंने वकील सिंह जी से पूछा, 'ये दोनों महिलाएं कौन हैं?'

उन्होंने कहा, 'एक थिएटर मालिक की पत्नी है और दूसरी उनकी बहू है।'
मैंने कहा, 'जो शो पहले से ही पूरी तरह से भरा हुआ है, उसके लिए वे टिकट कैसे बेच सकते हैं?'
उन्होंने कहा, 'काला बाजार!'
जैसे ही हम अंदर दाखिल हुए, थिएटर के अंदर लोगों की भारी भीड़ के कारण घुटन महसूस हो रही थी।
मैंने कहा, 'भीड़ बहुत ज्यादा है, थिएटर की क्षमता कितनी है?'
He said, 'Ji, capacity kya hoti hai. Jitne log aa jaye, utni capacity.'
I said, 'Seeton ka koi number toh hoga?'
He replied, 'Arey Rahul Sahab, kaun puchta hai number kya hai?'
दोपहर 3 बजे का शो था और 3:15 बज चुके थे, लेकिन फिल्म शुरू नहीं हुई थी। सीटें पूरी तरह भरी हुई थीं, गलियारों में अतिरिक्त कुर्सियाँ लगा दी गई थीं, कुछ लोग गलियारों में ठसाठस खड़े थे, कुछ फर्श पर बैठे थे, लेकिन इस सारी अफरा-तफरी के बीच, थिएटर के बीचोंबीच एक पंक्ति ऐसी थी, जिसकी सीटों पर बैकरेस्ट लगे हुए थे, और वह खाली थी।
मैंने पूछा, 'यह पंक्ति खाली क्यों है और फिल्म शुरू क्यों नहीं हो रही है?'
He said, 'Jo theatre ka maalik hain, uske bacchon ka school ka masterji aur unka khandaan abhi tak nahi aaya. Unke liye yeh row khali rakha hua hai. Unke aane tak film shuru nahi ho sakti.' Welcome to Punjabi culture!
फिर हम प्रीमियर के लिए कोलकाता गए। बंगाल में मैंने एक अजीब प्रथा देखी, जो मैंने उनकी शादियों में भी देखी थी। फिल्म में, जैसे ही उन्हें कुछ रोमांचक दिखता, वे ताली या सीटी नहीं बजाते, बल्कि महंगे इत्र की बोतलें निकालकर हवा में इत्र छिड़कने लगते। इस प्रथा के कारण बॉबी फिल्म दिखाने वाले सिनेमाघरों में अलग-अलग खुशबुओं का एक अजीब मिश्रण सा फैल गया!
तो, बॉबी की कहानी का सार यही है। इसके निर्माण के दौरान मैंने जो कुछ सीखा, शुरुआत, कलाकारों का चयन, अभिनेताओं को संभालना, मुख्य अभिनेत्री की शादी और गर्भावस्था - ये सब मेरे लिए बहुत प्रेरणादायक रहे। मैंने निर्देशक के काम की बारीकियों, हर परिस्थिति में

ढलने और अपनी कला के प्रति समर्पित रहते हुए उन पर काबू पाने के उनके उत्साह के बारे में सीखा।

आगे जा रहा है

बॉबी देश की सबसे सफल फिल्मों में से एक साबित हुई! मेरे बचपन के दोस्त ऋषि कपूर एक मेगास्टार बन गए। मैंने निर्माता और निर्देशक के तौर पर चिंटू को मुख्य भूमिका में लेकर अपनी खुद की फिल्म लॉन्च करने का फैसला किया। मैंने राज साहब से अपनी योजना के बारे में बात की और उन्होंने मेरा पूरा समर्थन किया। उन्होंने मुझे हर कदम सावधानी से उठाने की सलाह दी, लेकिन मूर्खतावश मैंने ऐसा नहीं किया। मेरी पहली फिल्म को बनने में आठ साल लग गए, इसने मुझे कंगाल कर दिया और यह मेरी चौथी फिल्म थी जो रिलीज़ हुई! उन सात सालों में मेरी तमाम असफलताओं और सफलताओं के बावजूद, राज साहब की दृढ़ता की सीख ही वह ताकत थी जिसने मुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

राज साहब की यह स्वाभाविक विशेषता थी कि वे 'प्रतिभाशाली' लोगों को पहचान लेते थे। आरके में बिताए अपने वर्षों के दौरान, मुझे अनगिनत ऐसी घटनाएं देखने को मिलीं जिनसे मुझे सबक मिले। मैंने न केवल राज साहब से बल्कि उनके साथ काम करने वाले लोगों से भी बहुत कुछ सीखा। प्रेम नाथ जी भी उन्हीं में से एक थे।

प्रेम नाथ जी का यह कहना बिल्कुल सही था कि मछुआरे के गीत, 'घे घे घे घे घे घे रे', की नृत्य शैली केवल उन्हीं के द्वारा परिकल्पित की जा सकती है। यहाँ तक कि वरिष्ठ नृत्यकलाकार सोहनलाल जी के सिर पर तुरही से बार-बार प्रहार भी किया था क्योंकि वे उनके नृत्य आंदोलनों से सहमत नहीं थे।

हालांकि वह सनकी थे - इतने सनकी कि लोग उनकी हरकतों पर हंसते थे - फिर भी उनकी मानवता की सच्ची भावना उनके सभी प्रयासों में एक अंतर्धारा की तरह बहती थी, जो लोगों को भावनात्मक रूप से प्रभावित करती थी जब वे उनके साथ हुई मुलाकातों को याद करते थे।

एक समय वे डब्बू साहब अभिनीत एक फिल्म का निर्माण और निर्देशन करने की योजना बना रहे थे, और प्रेम नाथ जी उस फिल्म के लिए तय किए गए शीर्षक - 'हवलदार धरती धकेल सिंह' - को लेकर बेहद खुश और गौरवान्वित थे!

डब्बू साहब ने अपनी हंसी रोकते हुए पूछा, 'इस फिल्म में और कौन-कौन से कलाकार अभिनय करेंगे?'

उन्होंने जवाब दिया, “मैंने अब तक के सर्वश्रेष्ठ अभिनेताओं को पहली बार एक साथ काम करने के लिए इकट्ठा किया है। रूबी मायर्स, मुबारक साहब, नाना पालसिकर और “दिलकश” पॉपी जयराज। उन्होंने लंबे समय से अभिनय नहीं किया है और “हवलदार धरती धकेल सिंह” उनका पुनर्जन्म होगा।” उनके अभिनेताओं की सूची में सबसे कम उम्र के अभिनेता अस्सी वर्ष के थे!

अपने अनोखे हास्यबोध के साथ डब्बू साहब ने कहा, 'अंकल, मैंने आपसे फिल्म की स्टार कास्ट पूछी, आप तो वृद्धाश्रम के लोगों के नाम गिना रहे हैं!' हम सब इस पर हँसे तो थे, लेकिन अब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो समझ आता है कि आज की दुनिया में जहाँ आजकल के कलाकार भी नज़रों से ओझल हो जाते हैं, वहाँ उनकी करुणा का स्तर बेमिसाल था। वे चाहते थे कि लंबे समय से भुला दिए गए कलाकार एक बार फिर कैमरे के सामने आएं। परोपकार उनके उन अनदेखे और अनसुने गुणों में से एक था जिसने उन्हें अविस्मरणीय बना दिया। कल मुझे बॉबी से लंबे समय बाद फिर मिलने का मौका मिला। मैंने प्रेम नाथ जी का एक बेहतरीन अभिनय देखा, और मुझे नहीं लगता कि कोई और अभिनेता उसकी बराबरी कर पाएगा।

Dabboo Sahab was the only other director I assisted in Kal Aaj Aur Kal and partly in Dharam Karam.

कल आज और कल में पृथ्वीराज कपूर सर, राज साहब और डब्बू साहब ने अभिनय किया था, जिन्होंने फिल्म का निर्देशन भी किया था। एक निर्देशक के लिए अपनी पहली फिल्म में इतना बड़ा काम करना*!*

डब्बू साहब, जो अपने पिता की तरह ही प्रतिभाशाली थे, ने फिल्म को बिल्कुल सही दिशा दी। मैंने उनसे एक बहुत ही कारगर तकनीक सीखी, जब वे 'आप यहां आए किसलीये' गाने की शूटिंग कर रहे थे। गाने की शूटिंग समुद्र तट पर हुई थी और उस जगह को और भी जीवंत दिखाने के लिए दो सेट बनाए गए थे। सेट का आधा हिस्सा आरके थिएटर के सबसे बड़े स्टेज पर बनाया गया था और उसकी शूटिंग पूरी होने के बाद, सेट का दूसरा आधा हिस्सा भी उसी स्टेज पर बनाया गया।

इसके लिए सावधानीपूर्वक योजना बनाने की आवश्यकता थी, क्योंकि कई बार दोनों हिस्सों से लिए गए दो अलग-अलग शॉट्स को एडिटिंग में जोड़ना पड़ता था, जिससे एक ऐसा पैनोरमा बनता था जो किसी लंबी लोकेशन पर लिए गए निरंतर शॉट्स जैसा प्रतीत होता था। तकनीक का यह उत्कृष्ट प्रयोग एक भव्य दृश्य का निर्माण करता है।

पहले दिन जब पृथ्वीराज कपूर सर, राज साहब और डब्बू साहब एक साथ शूटिंग कर रहे थे, तो डब्बू साहब अपने दादाजी को निर्देश देने में थोड़ा हिचकिचा रहे थे। उन्होंने राज साहब से पूछा, 'मुझे पापा जी [पृथ्वीराज कपूर] को बताना होगा कि जिस लहजे में वह बात कर रहे हैं, वह मुझे ठीक नहीं लग रहा है।'

राज साहब ने जवाब दिया, 'जाओ और उन्हें बताओ! इस सेट पर तुम उनके पोते नहीं हो, तुम निर्देशक हो। मुझे यकीन है कि वह इसकी सराहना करेंगे, जैसे मैं निर्देशक के रूप में आपकी सराहना करता हूं, जब आप मेरी गलती सुधारते हैं।'

फिर राज साहब ने आवारा फिल्म से जुड़ा एक बहुत ही मजेदार किस्सा सुनाया। फिल्म में पृथ्वीराज कपूर सर ने राज साहब के पिता का किरदार निभाया था और कोर्टरूम के एक सीन में राज साहब के दादा लाला बशेश्वरनाथ नाथ (बड़े पापा जी) जज बने थे। राज साहब ने बताया, 'वह दिन भर जज की कुर्सी पर बैठकर मस्तराम पत्रिका पढ़ते रहते थे!' मस्तराम हिंदी की एक अश्लील पत्रिका थी।

‘He would not pay attention to what I was saying, and would invariably forget his lines as his concentration was on Mastram. I lost my head one day and screamed at him, “Aapko dialogue kyun nahi yaad rehte hain?” And his jooti flew out of nowhere at me and he screamed at Papa ji, ‘Prithvi, main aaj ke baad kaam kya, Raj ki shakal nahi dekhunga. Aisa badtameez ho gaya hai tumhara beta!’

राज साहब ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, 'पापा जी आपकी बात सुनेंगे क्योंकि वह बहुत ही कुशल अभिनेता हैं; बड़े पापा जी अभिनेता नहीं थे।'

कल आज और कल के सेट पर एक घटना घटी। एक पार्टी सीन की शूटिंग के दौरान पापा जी सेट पर आए और उन्होंने एक जूनियर आर्टिस्ट को देखा। वे उसके पास गए, उसे गले लगाया

और बच्चे की तरह रोने लगे! जूनियर आर्टिस्ट ने कहा, 'पृथ्वी तू क्यों रो रहा है?' हम सब हैरान रह गए कि उसने पापा जी को उनके पहले नाम 'पृथ्वी!' से पुकारा।

Papa ji turned to Raj Sahab and said, 'Raj, tumne pehchana inko?'

राज साहब ने उस सज्जन के पैर छुए (मुझे उनका नाम याद नहीं है; यह एक पारसी नाम था) और नम आँखों से हमारी ओर मुड़े, "यह आदमी वाडिया मूवीटोन में बहुत बड़ा स्टार था। मैंने उसकी फिल्म का टिकट खरीदने के लिए दो-तीन घंटे लाइन में खड़े होकर इंतज़ार किया था, जिसमें वह मुख्य भूमिका में था, और आज वह यहाँ एक कनिष्ठ कलाकार के रूप में काम कर रहा है। यह बात मुझे बहुत दुख पहुँचाती है और इस उद्योग की अनिश्चितताओं को दर्शाती है।"

तब तक उनकी आंखों में आंसू आ चुके थे, लेकिन उन्होंने बोलना जारी रखा, "आज उनके प्रति मेरा सम्मान और भी बढ़ गया है क्योंकि उन्होंने जीवन के उतार-चढ़ावों का बहादुरी से सामना किया है और अभी भी काम कर रहे हैं। यह सभी मनुष्यों के लिए एक सबक होना चाहिए, "कभी हार मत मानो"!"

एक बार, सेट पर, डब्बू साहब ने मुझसे पापा जी के पास जाकर एक शब्द का सही उच्चारण बताने को कहा। मेरे लिए, यह मेरे जीवन के सबसे गौरवपूर्ण क्षणों में से एक था। मैं, एक साधारण इंसान, सम्राट अकबर के उच्चारण को सुधारने जा रहा था! स्कूल में इतिहास की कक्षाओं में सम्राट के बारे में पढ़ने और बचपन में फिल्म मुगल-ए-आजम देखने के बाद, मैं तब भी और अब भी यही मानता हूँ कि पृथ्वीराज कपूर वास्तव में सम्राट अकबर ही थे!

मेरे लिए सबसे गौरवशाली क्षण वह था जब राज साहब ने मुझे आरके के लिए एक फिल्म निर्देशित करने के लिए कहा, जिसका निर्माण वे स्वयं करने वाले थे।

उन्होंने एक कहानी सुनी थी और चाहते थे कि मैं उस पर आधारित एक कॉमेडी फिल्म 'बीवी-ओ-बीवी' का निर्देशन करूं। मुझे उस फिल्म की बेहद प्यारी यादें हैं। मुझे डब्बू साहब और शशिकला जी, दीना पाठक जी और राजेंद्र नाथ सर जैसे दिग्गज कलाकारों के निर्देशन का अवसर मिला। इसके अलावा, मुझे बेजोड़ अभिनेता संजीव कुमार सर के निर्देशन का मौका मिला और उनके अभिनय के तरीके को करीब से देखने का अवसर मिला, जिसने मेरे करियर में बहुत मदद की।

मैं चाहता था कि चिंटू एक सीन में कैमियो रोल करें। जैसे ही मैंने उनसे पूछा, उन्होंने तुरंत हां कह दी और इससे मेरी कामयाबी में एक और उपलब्धि जुड़ गई – ऋषि कपूर को निर्देशित करने का मौका!

राज साहब, जो निर्माता थे, निर्देशकों के लिए किसी सपने से कम नहीं थे। वे अपने निर्देशक को पूरी छूट देते थे और कभी शूटिंग पर नहीं आते थे। शूटिंग के दौरान उन्होंने फिल्म का एक भी दृश्य नहीं देखा और फिल्म पूरी होने के बाद ही देखी। कुछ सुझाव लेकर लौटने पर उन्होंने कहा, 'ये केवल सुझाव हैं। इन्हें रखना या न रखना आपका अधिकार है। हमेशा याद रखें, निर्देशक ही सर्वोपरि है।'

गुरु ने मुझ पर बहुत गहरा प्रभाव डाला था। उनके मार्गदर्शन में काम करते हुए और उन्हें करीब से देखते हुए मैंने जो कुछ सीखा, उससे मुझे बहुत ज्ञान प्राप्त हुआ। बॉबी के क्लाइमेक्स की शूटिंग के दौरान मैंने देखा कि कैसे उन्होंने डिंपल की गर्भावस्था से उत्पन्न बाधा को पार किया, और बाधा को पार करने का उनका तरीका मेरे लिए 'और प्यार हो गया' के निर्देशन के दौरान बहुत काम आया।

मैं एक बहुत ही मशहूर अभिनेता के साथ काम कर रहा था, मैं उनका नाम नहीं लेना चाहता, जिन्होंने शूटिंग के आखिरी दिन तय किया कि वे शूटिंग पर नहीं आएंगे। मैं शूटिंग के लिए जा रहा था, तभी मुझे बहुत गुस्सा आया और मैं उस अभिनेता को बुरी तरह डांटना चाहता था। लेकिन मुझे एहसास हुआ कि सिर्फ गुस्सा करना कोई समाधान नहीं है और इस समस्या का सामना उसी तरह करना होगा जैसे मेरे बॉस करते!

मैंने अभिनेता को फोन किया और कहा, 'मैंने सोचा कि मुझे आपको बता देना चाहिए कि अब मुझे आपकी जरूरत नहीं है क्योंकि आपका काम पूरा हो चुका है।'

उन्होंने पूछा, 'आज का मेरा एक दिन कैसा रहा?'

मैंने जवाब दिया, 'आपने कहा था कि आप शूटिंग के लिए नहीं आएंगे, इसलिए मैंने कल्पना की कि मैं अभी-अभी सांताक्रूज़ श्मशान घाट से आपके अंतिम संस्कार से लौटा हूँ, आपको अग्नि के हवाले करने के बाद, और वापस आते समय, मैं उस समस्या का समाधान खोजने की कोशिश कर रहा था जो आपकी इस भयानक मृत्यु ने मेरे लिए पैदा की थी। वाह! मुझे समाधान मिल गया और अब मुझे फिल्म के लिए आपकी ज़रूरत नहीं है।'

मैं शूटिंग स्थल पर पहुंचा और वैनिटी वैन में चाय पी रहा था कि 10 मिनट बाद मेरा सहायक आया और मुझे सूचित किया, 'सर... [अभिनेता] आ गए हैं।'

यह तो मेरे काम पर राज साहब के प्रभाव की एक छोटी सी घटना मात्र थी। उनका प्रभाव अंतहीन था; मैं आपको अपनी निर्देशित चार ऐसी फिल्मों के बारे में बताना चाहूंगा जिन्होंने दर्शकों पर गहरा प्रभाव डाला और जो राज कपूर से काफी प्रभावित थीं।

प्रेम कहानी

लव स्टोरी दुनिया की इकलौती ऐसी फिल्म है जिस पर निर्देशक का नाम नहीं है! फिल्म इंडस्ट्री, फिल्म के कलाकार और मैं समेत सभी को यकीन है कि मैंने ही इस फिल्म का निर्देशन किया है, लेकिन बॉम्बे हाई कोर्ट के एक आदेश ने फिल्म के प्रचार सामग्री और टाइटल में निर्देशक का नाम इस्तेमाल करने पर रोक लगा दी। इस हाई कोर्ट के आदेश की जड़ में श्री राहुल रावेल यानी मेरी याचिका थी। सुनने में अजीब लग सकता है, लेकिन इस कदम को उठाने के पीछे ठोस कारण थे। आइए, मैं आपको उन कारकों के बारे में बताता हूँ जिन्होंने लव स्टोरी के दृश्य वर्णन में मेरी रचनात्मकता को प्रभावित किया और अंततः मुझे अदालत में याचिका दायर करने के लिए प्रेरित किया, जिसके चलते मुझे मेरी रचनात्मकता का श्रेय नहीं दिया गया।

जब मैंने चिंटू के साथ अपनी पहली फिल्म 'गुनहगार' शुरू की थी, तब मैंने राजेंद्र कुमार सर को चिंटू के पिता की भूमिका के लिए चुना था। फिल्म 1974 से बन रही थी, लेकिन मेरे करियर में कोई तरक्की नहीं हुई थी। 1978 में राज साहब ने मुझे 'बीवी-ओ-बीवी' निर्देशित करने के लिए कहा और इस घोषणा के दो महीने के भीतर ही राजेंद्र सर ने मुझे अपनी फिल्म निर्देशित करने के लिए कहा, जिससे उनके बेटे कुमार गौरव का भी डेब्यू होने वाला था।

हालांकि राजेंद्र सर हमेशा से ही निर्देशक के तौर पर मेरे काम को सराहते रहे थे, लेकिन 'गुनहगार' के मामले में, राज साहब के यह तय करने के बाद कि मुझे उनकी निर्मित फिल्म का निर्देशन करना चाहिए, राजेंद्र सर ने 'लव स्टोरी' के निर्देशन का जिम्मा मुझे सौंपा। मेरा मानना है कि राज कपूर की फिल्म का निर्देशक होने के कारण ही उन्होंने यह फैसला लिया।

मैं उस समय बहुत खुश था क्योंकि पहले मेरे पास कोई काम नहीं था, लेकिन अचानक मुझे दो बेहद प्रतिष्ठित फिल्मों के निर्देशन का जिम्मा मिल गया। मैं मिठाई का एक डिब्बा लेकर राज साहब से मिलने गया और उन्हें 'लव स्टोरी' के निर्देशन का प्रस्ताव स्वीकार करने के बारे में बताया।

वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'तुम्हें मेरा आशीर्वाद हमेशा मिलता रहेगा और तुम्हारी इस उपलब्धि से मैं तुमसे भी ज़्यादा उत्साहित हूँ। मैं बस इतना कहना चाहता हूँ कि मुझे लगता है

तुमने राजेंद्र कुमार की फिल्म करने का फैसला बहुत सोच-विचार के बाद लिया है। कोई भी निर्णय लेते समय उसके फायदे और नुकसान का हमेशा आकलन करो।' उस समय मुझे यह बात समझ में नहीं आई कि यह एक छिपी हुई चेतावनी थी, जो मेरे गुरु ने कही थी, जिनकी सलाह मुझे माननी चाहिए थी और इस रास्ते पर बिना बहकावे में आए सावधानी से चलना चाहिए था।

मिर्ज़ा बंधुओं द्वारा मुझे सुनाई गई कहानी 1958 की हॉलीवुड फिल्म 'द डिफिएंट वन्स' से हूबहू ली गई थी, जिसमें सिडनी पोइटियर और टोनी कर्टिस ने अभिनय किया था और दोनों को इसी फिल्म के लिए ऑस्कर के लिए नामांकित किया गया था। दरअसल, फिल्म ने दो ऑस्कर जीते थे और सात नामांकन प्राप्त किए थे। फिल्म की अवधारणा नस्लवाद पर आधारित थी क्योंकि मुख्य पात्र दो अलग-अलग नस्लों, काले और गोरे, से थे जिन्हें हथकड़ी पहनाई गई थी। मिर्ज़ा बंधुओं ने चतुराई से कहानी को इस तरह मोड़ा कि इसमें दो युवा, एक लड़का और एक लड़की, शामिल हो गए जो एक-दूसरे से बेहद नफरत करते हैं। किस्मत उन्हें एक ऐसी स्थिति में डाल देती है जहाँ उन्हें एक साथ हथकड़ी पहनाई जाती है और फिर नफरत प्यार में बदल जाती है।

मुझे प्रेम कहानी के लिए यह आधार दिलचस्प और रोमांचक लगा। दो नए चेहरों का पदार्पण करना और मेरे द्वारा इसका निर्देशन करना, मेरे लिए राज साहब से बॉबी फिल्म के निर्माण के दौरान सीखी गई हर बात को व्यवहार में लाने का एक शानदार अवसर था, बॉबी शायद अब तक की सबसे बेहतरीन किशोर प्रेम कहानी है।

राजेंद्र सर ने कहा, 'अगर हम फिल्म के छायाकार के रूप में राधू कर्माकर जी को नियुक्त कर दें तो बहुत अच्छा रहेगा। आपका क्या विचार है?' मैं उस पल दुनिया का सबसे खुश इंसान था!

मिर्ज़ा बंधुओं द्वारा मुझे दी गई पटकथा तीन डबल-साइडेड ए 4 शीट पर हस्तलिखित थी। यह मेरे लिए चौंकाने वाला था और इसी वजह से मैं बॉस से सलाह लेने के लिए वापस कॉटेज लौट आया।

राज साहब की तुरंत प्रतिक्रिया थी, 'वाह! मैं इन तथाकथित लेखकों से मिलना चाहूंगा। ये लोग आपके पास एक चोरी की कहानी और तीन पन्नों की पटकथा लेकर आए हैं। मुझे उम्मीद है

कि ये फिल्म के लिए संवाद लिखेंगे या फिर ये सिर्फ इतना कहेंगे कि उन्होंने इस फिल्म को एक नया आयाम देने के बारे में सोचा है - मूक फिल्म, बिना संवाद के!'

मैं जोर से हंस पड़ा और जवाब दिया, 'सर, मैंने राजेंद्र सर से संवाद के बारे में बात की थी और उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि मुझे इसके बारे में चिंता करने की जरूरत नहीं है क्योंकि वे स्वयं संवाद लिखेंगे।'

राज साहब ने प्रतिक्रिया देते हुए कहा, 'मैंने पजेंद्र के साथ दो फिल्मों में काम किया है और संवाद लेखन में उनकी प्रतिभा सराहनीय है। आप निश्चिंत रह सकते हैं, बशर्ते उनकी कुशलता केवल संवाद लेखन तक ही सीमित रहे और निर्देशक के रूप में आपकी जिम्मेदारियों में दखल न दे। अब, पटकथा में दृश्यों के विस्तृत वर्णन न होने की आपकी चिंता के बारे में, आपको खुश होना चाहिए क्योंकि फिल्म का संपूर्ण कथानक और वर्णन आपके हाथों में ही होगा। आप बॉबी फिल्म का अभिन्न अंग थे, और यदि आपने उस फिल्म के निर्माण से कुछ सीखा है, और मुझे पूरा विश्वास है कि आपने सीखा है, तो खुद को भाग्यशाली समझें कि अपने करियर के इतने शुरुआती दौर में ही आपको कलात्मक और तकनीकी रूप से अपनी व्यक्तिगत रचनात्मकता प्रदर्शित करने का अवसर मिला है।'

राज साहब ने मुझ पर जो भरोसा जताया, उससे मैं अभिभूत हो गया और मैंने उत्साहपूर्वक उन्हें बताया कि राधू साहब इस फिल्म के सिनेमैटोग्राफर होंगे।

खुश होने के बजाय, उनके चेहरे पर एक अजीब सी मुस्कान आ गई, 'पजेंद्र राधू को छायाकार के तौर पर ले रहे हैं? मुझे कहना पड़ेगा कि वो बहुत महत्वाकांक्षी हैं। राधू जिस बारीकी से काम करते हैं और एक शॉट को लाइट करने में उन्हें जितना समय लगता है, उसे देखते हुए, उस पर पैसा खर्च करने के लिए बड़े दिल और पैसे की जरूरत होती है। मुझे डर है कि ज़रूरत से ज़्यादा महत्वाकांक्षा किसी को लालची और स्वार्थी बना सकती है।' यह दूसरी बार था जब मुझे एक छिपी हुई चेतावनी दी गई, जिसे मैंने फिर से, मूर्खता से, नहीं समझा!

'लव स्टोरी' की शूटिंग शुरू हुई और मैं हमेशा इसे राज कपूर की सोच और निर्देशन शैली के नज़रिए से देखता था। जब मैंने शोले के मशहूर डकैत अमजद खान सर को एक मजाकिया, सौम्य और मानवीय हरियाणवी पुलिसवाले के रोल में लेने का सुझाव दिया, तो यूनिट के ज्यादातर लोगों ने इसका विरोध किया, 'आप एक खलनायक को कॉमेडियन कैसे बना सकते

हैं?' मुझे उन लोगों पर तरस आता है जो अभिनेताओं को एक ही तरह के रोल में बांध देते हैं और यह भूल जाते हैं कि फिल्म में किरदारों का मानवीय होना भी जरूरी है और एक अच्छा अभिनेता अपने किरदार के रंग-रूप से परे हमेशा एक अच्छा अभिनेता ही रहेगा।

मेरी इस बात पर यकीन और भी पक्का इसलिए हो गया क्योंकि राज कपूर ने प्राण साहब से, जो खुद भी एक खूंखार खलनायक थे, फिल्म 'जिस देश में गंगा बहती है' में एक ऐसा गाना गवाया था जिसमें उनका भावुक और मानवीय पक्ष झलकता था। जब कोई भी मेरी बात नहीं मान रहा था, तो मैंने आखिर में झूठ बोला और राजेंद्र सर को बताया कि यह सुझाव राज साहब का था और यह सुनकर वे तुरंत मान गए।

राज साहब की फिल्मों के कुछ दृश्य मेरे मन में गहरे बसे हुए थे और मैं 'लव स्टोरी' में उन दृश्यों को फिर से जीवंत करने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। गीत 'क्या गजब करते हो जी' ने मुझे एक ऐसा दृश्य दिया जिसे मैं फिर से जीवंत कर सका, 'मैं का करूँ राम, मुझे बूढ़ा मिल गया'। जिस तरह मूल गीत एक होटल के कमरे में फिल्माया गया था, उसी तरह मेरा गीत एक लॉज के छोटे से कमरे में फिल्माया गया। कमरा सचमुच छोटा था और उसमें तीन किरदार थे, जिनके बीच काफी हलचल थी। दरअसल, एक किरदार, अरुणा ईरानी, विजयता पंडित की उपस्थिति से बेखबर थी। इस गीत की शूटिंग के दौरान, मुझे सचमुच यह एहसास हुआ कि राज साहब का आशीर्वाद मुझे राह दिखा रहा है। वास्तव में, मैंने हमेशा महसूस किया है कि राज साहब सर्वव्यापी रहे हैं और मेरे पूरे करियर में मेरा मार्गदर्शन करते रहे हैं।

राज साहब के सबसे छोटे बेटे राजीव कपूर उर्फ चिंपू मेरे साथ सहायक निर्देशक के रूप में काम कर रहे थे। राज साहब यह बहाना बनाकर पहलगाम आ गए, 'मैं दिल्ली में था, इसलिए मैंने सोचा कि पजेंद्र की शूटिंग चलते-चलते देखते हैं।' मुझे पूरा यकीन है कि उन्हें अपने बेटे की याद आ रही थी, और हर पिता की तरह, वे भी उससे मिलना चाहते थे।

राज साहब को वहाँ देखकर मुझे बहुत खुशी हुई, लेकिन उन्हें चिंपू से मिलकर और भी ज्यादा खुशी हुई! हम उनके साथ बैठे थे और उन्हें कश्मीर की खूबसूरत जगहों पर शूटिंग के अपने अनुभवों के बारे में बता रहे थे, लेकिन चिंपू को एक समस्या थी, 'पापा, यहाँ की हवा बहुत बदबूदार है। इतनी खूबसूरत जगह पर रहकर बदबूदार हवा में सांस लेना बहुत बुरा लगता है।'

राज साहब ने जवाब दिया, 'बेटा, कश्मीर की वायु गुणवत्ता समस्या नहीं है, समस्या बंबई में पैदा होने और वहीं पले-बढ़े होने की है। तुम तो सिर्फ प्रदूषण और कचरे की गंध जानते हो, यही कारण है कि कश्मीर की शुद्ध और ताजी हवा बदबूदार लगती है।'

जब भी राज साहब शूटिंग लोकेशन पर आते थे, मैं उनकी मौजूदगी में बहुत घबरा जाता था। एक बार जब वे शूटिंग पर आए, तो दोपहर में ही आसमान में बहुत बादल छा गए और ऐसा लगा कि उस दिन शूटिंग नहीं हो पाएगी। चिंपू ने तुरंत आवाज़ लगाई, 'सेटिंग, एक कुर्सी लेकर आओ। स्पॉट बॉय, एक गिलास पानी जल्दी लेकर आओ!' राजेंद्र साहब का हाथ पकड़कर उसने कहा, 'सर, कृपया बैठ जाइए, चिंता मत कीजिए, ये कामपोज लीजिए।'

राज साहब चिंपू की हरकत से बहुत उत्सुक हो गए और उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या हो रहा है?' मैंने जवाब दिया, 'समस्या यह है कि घाटी में कभी भी अप्रत्याशित रूप से बादल छा जाते हैं और फिर शूटिंग में देरी हो जाती है या रद्द हो जाती है। इससे राजेंद्र सर को बहुत तनाव होता है। आपने देखा ही होगा कि उनका चेहरा पीला पड़ गया है, उनके होंठ कांप रहे हैं, क्योंकि उन्हें पैसों के नुकसान का बहुत डर सताता है। चिंपू की यह हरकत हर बार बादल छाने पर दोहराई जाती है।'

राज साहब ने व्यंग्य भरी मुस्कान के साथ मेरी ओर देखा। मैंने उन्हें शूटिंग के दौरान घटी कुछ और ऐसी ही घटनाएं भी सुनाईं। वे हँसे और बोले, 'मुझे लगा था कि वो बहुत महत्वाकांक्षी निर्माता हैं? अगर तुम्हें पैसे से प्यार है, तो फिल्म मत बनाओ। और आप, श्रीमान निर्देशक, सावधान रहें!' मेरा नासमझ दिमाग अब भी बार-बार दी गई उन चेतावनियों को समझ नहीं पा रहा था, जो इस बार और भी सीधे तौर पर थीं।

खुद एक अभिनेता होने के नाते, राजेंद्र सर अपने अभिनय के अंदाज़ को अपने बेटे कुमार गौरव के अभिनय में उतारने की कोशिश करते थे। हालांकि, ऐसा लगता था मानो वे 1960 के दशक में ही अटके हुए हैं, 1980 के दशक के अनुरूप अपने अभिनय को ढालने में असमर्थ। यह बात मुझे परेशान कर रही थी और मेरे दृष्टिकोण में बाधा डाल रही थी। मैंने मन ही मन सोचा, 'बेहतर होगा कि मैं उनके बेटे को फिल्म से ही निकाल दूं, क्योंकि वह अपने पिता की तरह ही अभिनय करेगा और फिल्म इंडस्ट्री में हंसी का पात्र बन जाएगा।'

एक दिन जब राज साहब शूटिंग लोकेशन पर थे, तो मैंने राजेंद्र सर को मेरे कॉन्सेप्ट और परफॉर्मेंस में दखल देने का सबक सिखाने का फैसला किया। एक शॉट था जिसमें कुमार गौरव को गाते हुए ढलान से नीचे उतरना था। ढलान बेहद फिसलन भरी थी और दोनों तरफ पत्थर थे। मैंने कुमार गौरव को शॉट समझाया, जो गीली मिट्टी से ढके रास्ते पर फिसलने से डर रहे थे। मैंने राज साहब के साथ बैठे राजेंद्र सर की ओर मुड़कर उन्हें आवाज़ दी, 'सर, मैं चाहता हूं कि कुमार गौरव पूरे अंदाज में गाना गाते हुए ढलान से नीचे आएं, लेकिन उन्हें डर है कि वे फिसलकर गिर जाएंगे। मैं आपसे निवेदन करता हूं, सर, आपके अनुभव से आप उन्हें बता पाएंगे कि इस शॉट में उन्हें कैसे चलना चाहिए और ढलान से नीचे उतरना उनके लिए कितना सुरक्षित होगा।'

राजेंद्र सर इस बात से बहुत रोमांचित हुए कि मैंने यह बात राज साहब के सामने कही। उन्होंने तिरस्कार भरी मुस्कान के साथ राज साहब की ओर मुड़कर कहा, "निर्देशक समेत इन बच्चों को खुश होना चाहिए कि मैं उनके आसपास हूं ताकि मैं उन्हें सही राह दिखा सकूं। आप जानते हैं कि बच्चों में आत्मविश्वास जगाना जरूरी है और यह काम केवल एक अनुभवी व्यक्ति ही कर सकता है।"

राजेंद्र सर ने गर्व से कुमार गौरव की जगह ले ली। प्लेबैक चालू होते ही उन्होंने अपने अंदाज़ में गाने पर अभिनय करना शुरू कर दिया; लेकिन ढलान पर उतरते ही उनका पैर फिसल गया और वे गिर पड़े! उन्हें चोट तो आई, लेकिन जब हम सब उठकर उनकी मदद करने की कोशिश करने लगे, तो दर्द में होने के बावजूद उन्होंने बहादुरी का परिचय देते हुए कहा कि अभिनेताओं के लिए चोट कोई मायने नहीं रखती, उन्हें सिर्फ अपने प्रदर्शन की परवाह करनी चाहिए।

राज साहब उनके पास गए और देखा कि चोट मामूली थी और राजेंद्र साहब को कोई तकलीफ नहीं हुई थी। राज साहब मेरी तरफ मुड़े और धीरे से बोले, 'शाम को मेरे कमरे में आना, मुझे तुमसे बात करनी है।'

शाम को, चिंपू और मैं उसके कमरे में गए, उसने सख्ती से कहा, 'तुम जानबूझकर ऐसा कर रहे हो।'

मैंने मासूमियत से कहा, 'क्या कर रहे हो?'

‘बेचारे पजेंद्र की जान खतरे में डाल रहे हो!’ यह कहते हुए वह जोर से हंस पड़ा, ‘मुझे समझ नहीं आता कि लोग दूसरों के काम में दखल क्यों देते हैं।’

फिल्म 'लव स्टोरी' में एक दृश्य है जहाँ राजेंद्र सर एक डाक बंगले में पहुँचते हैं और संयोगवश उनकी मुलाकात डैनी सर और विद्या सिन्हा जी से हो जाती है। जब मैंने वह दृश्य पढ़ा जिसमें राम डोगरा, डैनी डेन्जोंगपा, विजय मेहरा, राजेंद्र कुमार, सुमन डोगरा और विद्या सिन्हा की आमने-सामने मुलाकात का जिक्र था, तभी से मेरे मन में उस दृश्य की कई छवियां बन गई थीं। यह दृश्य राज साहब द्वारा 'संगम' में फिल्माए गए प्रतिष्ठित क्लाइमेक्स दृश्य के समान होगा। निर्देशन शुरू करने के बाद से ही मैं हमेशा एक ऐसा दृश्य फिल्माने की कोशिश करता रहा हूँ जो मेरे गुरु को मेरी श्रद्धांजलि हो, और 'लव स्टोरी' का यह दृश्य उसी का एक प्रयास था।

जैसा कि पहले बताया गया है, संगम में, तीनों अभिनेताओं ने एक विशेष दृश्य में त्रिकोणीय स्थिति बनाए रखी। त्रिकोणीय स्थिति का दृश्य प्रभाव दृश्य के संदेश के साथ सटीक बैठता है और राज साहब की महारत सराहनीय है। लव स्टोरी में, दृश्य विजय और सुमन के बीच शुरू होता है और फिर राम कमरे में प्रवेश करता है। मैंने डैनी सर को ऐसी स्थिति में लाने में कामयाबी हासिल की, जहाँ उनके, राजेंद्र सर और विद्या जी के बीच एक स्पष्ट त्रिकोण दृश्य रूप से बनता है। यहाँ से, दृश्य और पात्रों की गतिविधियों के दौरान, मुझे 'दृश्य त्रिकोण' को तब तक बनाए रखना था जब तक कि डैनी सर के संवाद, 'इस वक्त आप मेरे और मेरी पत्नी के बीच एक दीवार बनकर खड़े हो!' के साथ यह चरम पर न पहुँच जाए।

मैंने मनचाहा नज़ारा हासिल कर लिया था। डैनी सर ने कहा, 'बहुत बढ़िया, राहुल', जिसके बाद यूनिट से तालियों की गड़गड़ाहट हुई, और हालांकि मैं इस सराहना से बहुत खुश था, लेकिन मेरा मन कर रहा था कि मैं इन सभी लोगों से कहूँ, 'आरके कॉटेज में जाओ और राज कपूर के लिए भी ऐसी ही सराहना और तालियाँ बजाओ, वही अदृश्य शक्ति जिसने मुझे यहाँ तक पहुँचाया।'

राज साहब की अप्रत्यक्ष चेतावनी एक और मौके पर स्पष्ट होने लगी। एक शाम, मैंने रात करीब 8:30 बजे बीवी-ओ-बीवी फिल्म का एक दृश्य शूट किया और मुझे संदेश मिला कि राज साहब मुझसे कॉटेज में मिलना चाहते हैं।

उन्होंने मुझे पेय पदार्थ की पेशकश की और मैंने सम्मानपूर्वक उनसे कहा, 'क्षमा कीजिए महोदय, मुझे 'लव स्टोरी' के लिए कुछ संपादन कार्य शेष है।'
उन्होंने कहा, 'आप एक ही दिन में दो अलग-अलग फिल्मों के बीच क्यों भाग-दौड़ कर रहे हैं?'
हालांकि मैं राजेंद्र सर के साथ अपनी समस्याओं के बारे में उन्हें कभी बताना नहीं चाहती थी, लेकिन जब मेरा सब्र टूट गया, तो मैंने आखिरकार कह ही दिया, 'राजेंद्र सर बेवजह चिड़चिड़े और बदतमीज़ होते जा रहे हैं! वो कहते रहते हैं कि मैं सिर्फ बीवी-ओ-बीवी के पीछे पागल हूँ और लव स्टोरी की मुझे कोई परवाह नहीं है। वो लगातार शिकायत करते रहते हैं कि मेरे कारण उनके काम पर असर पड़ रहा है।'
उन्होंने मेरी आंखों में सीधे देखते हुए कहा, 'मैंने आपको ड्रिंक के लिए इसलिए बुलाया क्योंकि मैं आपको कुछ बताना चाहता था। वकिल सिंह ने आज 'लव स्टोरी' का प्रीव्यू देखा और राजेंद्र कुमार के साथ मुझसे मिलने आए।'
मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि यह पहली बार था जब उन्होंने राजेंद्र सर को राजेंद्र कुमार कहकर संबोधित किया, न कि पजेंद्र।
राज साहब ने आगे कहा, ‘वकील सिंह फिल्म देखकर बेहद खुश हुए और उन्होंने मेरी बहुत तारीफ करते हुए कहा कि राहुल रवैल आपके सच्चे शिष्य हैं। लेकिन राजेंद्र कुमार नाराज और परेशान थे। उन्होंने मुझसे कहा कि उन्हें बहुत ठगा हुआ महसूस हो रहा है क्योंकि 'लव स्टोरी' का प्रीव्यू देखने वाले लोग निर्देशक की बहुत तारीफ करते हैं, लेकिन निर्माता के तौर पर उनके शानदार काम की कोई तारीफ नहीं करता। इसलिए, जब तक आप लोग उन्हें अपने सिस्टम से बाहर नहीं निकाल देते, मैं 'बीवी-ओ-बीवी' की शूटिंग रोक रहा हूँ!’
यह सुनकर मैं बहुत परेशान हो गया और घर नहीं गया, बल्कि बांद्रा स्टेशन के एक बार में जाकर खूब शराब पी ली। जब मैं रात के 1 बजे घर लौटा, तो राजेंद्र सर ने फोन किया और चिल्लाने लगे, 'तुमने मेरी एडिटिंग नहीं करवाई! तुम्हें पता है तुम्हारी वजह से मुझे कितना नुकसान हुआ? काम तो हुआ ही नहीं, फिर भी मुझे सबके खाने का बिल भरना पड़ा!'
मैं गुस्से से आग बबूला था, लेकिन मैंने माफी मांगी और उनसे कहा, 'कल से राज साहब ने फैसला किया है कि जब तक मैं 'लव स्टोरी' पर अपना सारा काम खत्म नहीं कर लेता, तब तक वह अपनी शूटिंग रोक देंगे।'

उस दिन से राजेंद्र सर और मेरे बीच रिश्ते में तनाव आ गया, जो पूरी यूनिट को साफ तौर पर दिखाई दे रहा था। मैंने पूरी एकाग्रता के साथ शूटिंग, एडिटिंग और फाइनल एडिटिंग का काम पूरा किया। राजेंद्र सर, आर.डी. बर्मन और राजकमल स्टूडियो के री-रिकॉर्डिंग इंजीनियर मंगेश देसाई जी समेत फिल्म से जुड़े सभी लोगों के लिए फिल्म का अंतिम प्रीव्यू दिखाया गया। फाइनल वर्जन को देखने वाले सभी लोगों ने इसकी खूब सराहना की, और उसके बाद मैंने आर.डी. बर्मन के साथ रिकॉर्ड किए जाने वाले बैकग्राउंड म्यूजिक के बारे में विस्तार से चर्चा भी की।

बैकग्राउंड म्यूजिक रिकॉर्ड किए जाने से दस दिन पहले, राजेंद्र सर ने मुझसे कहा, 'मैंने फिल्म की शुरुआत में मेरे और विद्या सिन्हा के बीच एक रोमांटिक गाना रखने का फैसला किया है।'

मैं आपा खो बैठा और बोला, 'आपने फैसला कर लिया? मैं फिल्म का निर्देशक हूं और मेरा दृढ़ विश्वास कहता है कि आपके और विद्या जी के साथ एक गाना बनाना अब तक का सबसे हास्यास्पद और घृणित सुझाव है जो मैंने सुना है!'

वहाँ तीखी बहस छिड़ गई और वह अपनी पूरी आवाज़ में चिल्लाया, 'मैं राजेंद्र कुमार हूँ! लोग मुझे "जुबली कुमार" कहते हैं और आपको मेरे साथ गाया हुआ गाना आपत्तिजनक लगता है?'

मेरा जवाब, एक सप्तक ऊँचा, यह था, 'दर्शक राजेंद्र कुमार के बेटे को देखना चाहते हैं, न कि स्वयं राजेंद्र कुमार को! इसीलिए मैंने आपके, विद्या जी और डैनी सर के बीच की प्रस्तावना को न्यूनतम कर दिया है।'

जवाब में उसने अत्यंत ऊँची आवाज़ में कहा, 'तुम मेरा करियर बर्बाद कर रहे हो! देश में मेरे सबसे ज़्यादा प्रशंसक हैं। यह मेरा पैसा है, मेरी फिल्म है और इसके लिए जो भी सही होगा, मैं ही तय करूँगा।'

इसी बीच, 'लव स्टोरी' के फोटोसेट छप चुके थे और उन्हें देखकर मैं पूरी तरह से हैरान रह गया! फोटोसेट पर लिखा था – 'राजेंद्र कुमार की लव स्टोरी। संगीत: आर.डी. बर्मन। गीत: आनंद बख्शी।' निर्देशक का नाम तक नहीं था!

मैंने गुस्से से पूछा, 'मेरा नाम यहां क्यों नहीं लिखा गया है?'

उन्होंने कहा, 'तुम्हारा नाम यहाँ फिट होने के लिए कोई जगह नहीं है।'

मैंने जवाब दिया, 'निर्माता, संगीत निर्देशक और गीतकार के नाम के लिए जगह है, लेकिन निर्देशक के नाम के लिए कोई जगह नहीं है?'

उन्होंने बड़े ही रूखेपन से जवाब दिया, 'आर.डी. बर्मन, आनंद बख्शी और राजेंद्र कुमार ऐसे नाम हैं जो "बिकते हैं" और प्रचार के लिए आवश्यक हैं।'

मुझे यकीन नहीं हो रहा था कि मैंने अभी क्या सुना! मैंने राज साहब को फोन किया और उन्हें अपनी स्थिति बताई, तो उन्होंने कहा, 'मुझे तुम्हारी बात पर यकीन नहीं हो रहा।'

मैंने कहा, 'मैं इस बारे में आपसे झूठ क्यों बोलूंगा, महोदय? मैं आपको सच बता रहा हूं।'

उन्होंने मुझे दिलासा देते हुए कहा, 'सच कहूँ तो, मुझे पहले से ही इस बात का शक था क्योंकि पजेंद्र बहुत महत्वाकांक्षी है और चाहता है कि फिल्म बनाने का श्रेय सिर्फ उसे ही मिले। मैंने तुम्हें कई बार इस बारे में आगाह किया था, लेकिन मुझे लगता है कि तुमने खतरे को भांप नहीं लिया, और सच कहूँ तो, मुझे उम्मीद नहीं थी कि मामला इतना बढ़ जाएगा। तो, अब तुम आगे क्या करने की सोच रहे हो?'

'सर, मैं निर्माता के खिलाफ इंडियन फिल्म डायरेक्टर्स एसोसिएशन में शिकायत दर्ज कराने की योजना बना रहा हूं।'

राज साहब ने कहा, 'हां, आप कोशिश कर सकते हैं, लेकिन मुझे नहीं लगता कि इससे कोई फायदा होगा। निदेशक संघ की शासी समिति चापलूसों से भरी पड़ी है, जो राजेंद्र कुमार की चापलूसी करने और उन्हें खुश करने के लिए हर संभव प्रयास करते हैं।'

राज साहब ने जो कहा था, ठीक वही हुआ।

शासी परिषद ने एक आदेश पारित किया जिसमें कहा गया, 'निर्माता को फिल्म की रचनात्मक सामग्री की निगरानी करने का पूरा अधिकार है और निर्देशक का अधिकार केवल उसके पारिश्रमिक तक ही सीमित है।'

मैं गुस्से में बाहर निकला और सीधे आरके के पास बॉस से मिलने गया। उन्होंने धैर्यपूर्वक मेरी बात सुनी और कहा, 'क्या यह इंडियन फिल्म डायरेक्टर्स एसोसिएशन का आदेश है?' वे दिल खोलकर हँसे और बोले, 'चापलूसों से यही तो उम्मीद की जाती है!'

मैं आहत और क्रोधित होकर उनसे बोला, 'सर, मुझे ऐसा लग रहा है कि मुझे एसोसिएशन को सूचित कर देना चाहिए कि लव स्टोरी के निर्देशक के रूप में मेरा नाम हटा दिया जाए।'

बॉस ने मुझे गले लगाया और सलामी देते हुए खड़े हो गए, “मैं एक बहुत बहादुर आदमी को सलाम करता हूँ! आपके इस काम ने मुझे यकीन दिला दिया है कि आज भी ऐसे निर्देशक मौजूद हैं जो अपने विश्वास पर अडिग हैं। याद रखना, एक दिन, बेशर्म की तरह, वह तुम्हारे पास वापस आएगा और तुमसे अपने लिए एक फिल्म निर्देशित करने को कहेगा। दूसरी बात, मैं चाहता हूँ कि तुम इस बात का ध्यान रखो कि निर्देशक के रूप में किसी और का नाम न आए, क्योंकि वह अपना नाम ही निर्देशक के रूप में डालना चाहेगा।”

अगले दिन, मैंने एसोसिएशन और राजेंद्र सर की एक आपातकालीन बैठक बुलाई और उन्हें फिल्म के निर्देशक के रूप में अपना नाम वापस लेने के अपने निर्णय के बारे में सूचित किया। राजेंद्र सर खुशी से उछल पड़े और बोले, 'शानदार!'

मैंने आगे कहा, 'मैं समिति को यह भी सूचित करना चाहूंगा कि निर्माता ने मौखिक रूप से 1,50,000 रुपये के पारिश्रमिक का वादा किया था, और मुझे केवल 25,000 रुपये का भुगतान किया गया है।'

समिति ने कहा, 'मौखिक प्रतिबद्धताओं का कोई मतलब नहीं होता। समझौते के अभाव में, उसे आपको कम से कम 50,000 रुपये का भुगतान करना होगा, और चूंकि आपने आधी राशि प्राप्त करने की बात स्वीकार कर ली है, इसलिए वह केवल शेष राशि, यानी 25,000 रुपये का भुगतान करने के लिए बाध्य है।'

जाहिर है, ये सभी फैसले एसोसिएशन द्वारा मेरे हितों की रक्षा के लिए लिए गए थे!

मैंने मुड़कर कहा, 'मुझे जो बकाया राशि मिलनी है, मैं उसे स्पैस्टिक सोसाइटी ऑफ इंडिया को दान कर दूंगा।'

राजेंद्र सर ने बीच में दखल दिया और चिल्लाते हुए कहा, 'यह मेरा पैसा है; उसे इसे दान में देने का क्या अधिकार है?'

मैं जोर से हँस पड़ा और बोला, 'श्री राजेंद्र कुमार, बकाया राशि मेरी है, मैं जिसे चाहूँ उसे दे सकता हूँ। मैं इस "मानसिक रूप से विक्षिप्त समिति" को यह भी चेतावनी देना चाहता हूँ कि 'लव स्टोरी' के निर्देशक के रूप में किसी अन्य व्यक्ति का नाम नहीं आ सकता।'

चापलूसों ने एक स्वर में कहा, 'यह राजेंद्र कुमार का विशेषाधिकार है। वह अपनी मर्जी से किसी का भी नाम रख सकते हैं, जिसमें उनका अपना नाम भी शामिल है। यदि आपको इस

पर आपत्ति है, तो अदालत से ऐसा आदेश प्राप्त करें जो उन्हें किसी अन्य व्यक्ति के नाम का उपयोग करने से रोक दे।'

यह एकमात्र ऐसा समय था जब एसोसिएशन ने मुझे ऐसी सलाह दी जिसे मैंने संजोकर रखा। मैंने अदालत में मुकदमा दायर किया, न्यायाधीश से मेरे पक्ष में फैसला प्राप्त किया और स्वयं जाकर समिति के समक्ष वह फैसला फेंक दिया।

यह खबर जंगल की आग की तरह फैल गई; फिल्म उद्योग में ज्यादातर लोगों को यह सुनकर खुशी हुई कि निर्देशक के रूप में मेरा नाम नहीं आएगा, लेकिन कुछ लोग मेरे प्रति सहानुभूति रखते थे क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि फिल्म का निर्देशन करना एक कला है और उस समय के निर्माता उस कला की बुनियादी बातें भी नहीं जानते थे!

मंगेश जी ने मुझे राजकमल स्टूडियो बुलाया और इस अप्रिय समस्या का कारण पूछा। मैंने उन्हें विस्तार से सब कुछ समझाया; उन्हें यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि राजेंद्र सर खुद को फिल्म में शामिल करना चाहते थे और कुछ दृश्य भी उनमें शामिल करना चाहते थे। उन्होंने कहा कि वे राजेंद्र सर को यह मूर्खतापूर्ण काम न करने के लिए मना लेंगे और निर्देशक के रूप में मेरा नाम वापस दिलवा देंगे। मैंने इस सहयोग के लिए उन्हें धन्यवाद दिया और कहा कि मैं फिल्म में अपना नाम वापस नहीं लेना चाहता, क्योंकि जब मैंने अपना नाम वापस लिया था तब उनकी खुशी मैं भूल नहीं पाया था। हालांकि, अगर फिल्म उसी रूप में रिलीज होती है जिस रूप में मैंने उसे पूरा किया था, तो मैं उनका हमेशा आभारी रहूंगा।

राजेंद्र सर मंगेश जी की बात से तुरंत सहमत हो गए। मुझे लगता है कि वे इस बात से बहुत खुश थे कि मेरा नाम फिल्म में नहीं होगा। उन्होंने अपने अहंकार को संतुष्ट करने के लिए सिर्फ एक दृश्य जुड़वाया जो 1960 के दशक का था – पिंकी और बंटी की शादी के रिसेप्शन में एक बेवकूफी भरा पारिवारिक मिलन समारोह। उन्होंने सावन कुमार टाक से वह दृश्य फिल्माया, लेकिन अमजद खान सर ने कोई निर्देश मानने से इनकार कर दिया और कहा, 'फिल्म के निर्देशक राहुल रवैल हैं। या तो वे आकर मुझे निर्देश दें या मैं वही करूंगा जो मुझे सही लगेगा।' उनकी आत्मा को शांति मिले!

फिल्म का प्रीमियर, जिसका वह संस्करण मैंने अंतिम रूप दिया था जिसमें परिवार के साथ होने वाले मूर्खतापूर्ण मिलन समारोह का दृश्य हटा दिया गया था, मेट्रो में आयोजित किया गया था और मुझे आमंत्रित नहीं किया गया था।
प्रीमियर के बाद देर रात राज साहब मेरे घर आए और निर्देशक के तौर पर मेरे प्रयासों से बेहद प्रसन्न हुए। जाते समय उन्होंने मुझसे बस इतना पूछा, 'आप प्रीमियर में क्यों नहीं आए?'

मैंने जवाब दिया, 'मुझे आमंत्रित नहीं किया गया था।'

उन्होंने अविश्वास से अपना सिर हिलाया, अपनी कार में बैठकर चले गए और उनके पीछे-पीछे डब्बू साहब और आर.डी. बर्मन भी बधाई देने आ गए। मेरी आँखों में आँसू थे और मैं शुक्रगुजार थी कि मेरी मेहनत रंग लाई। डब्बू साहब ने ज़ोर देकर कहा कि अगली शाम को मेरी 'सफलता' पार्टी होनी चाहिए। मैं मान गई, अपने सभी दोस्तों को बुलाया और राजेंद्र साहब से भी पार्टी में आमंत्रित करने के लिए मिली। न तो वे आए और न ही उनका बेटा कुमार गौरव।
लव स्टोरी एक अभूतपूर्व सफलता साबित हुई, कुमार गौरव एक कल्ट स्टार बन गए और निर्देशक बेरोजगार होकर घर पर बैठे रहे।

BETAAB

लव स्टोरी की अपार सफलता के बाद, मेरे लिए आगे के दिन बहुत मुश्किल हो गए, क्योंकि मैंने फिल्म से अपना नाम वापस ले लिया था। मैं निराशा से घिर गया था। मेरा दिमाग पूरी तरह से उलझ गया था और मैं ठीक से सोच नहीं पा रहा था।

इसी दौरान एक दिन मेरी मुलाकात राज साहब से हुई और उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं क्या कर रहा हूँ।

मैंने जवाब दिया, 'मैं शिक्षित-बेरोजगारों की श्रेणी में शामिल हो गया हूँ।'

उन्होंने कहा, 'शिक्षित-बेरोजगारों की श्रेणी में आने के लिए आप स्वयं ही जिम्मेदार हैं। बीवी-ओ-बीवी की विफलता से मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता और जब भी आप इच्छुक हों, मैं आपकी सेवाएं लेने के लिए हमेशा तत्पर रहूंगा।'

जब उन्होंने मुझसे ये शब्द कहे, तो मुझे खुशी से झूम उठना चाहिए था, लेकिन मेरी मानसिक स्थिति ऐसी थी कि मुझे कुछ महसूस ही नहीं हुआ। हिंदी में एक बहुत प्रसिद्ध मुहावरा है जो मेरी स्थिति को बखूबी बयां करता है – विनाश काले विपरीत बुद्धि! (जब विपत्ति निकट आती है, तो बुद्धि काम करना बंद कर देती है!)

जैसे-जैसे समय बीतता गया, मैं मानसिक रूप से टूटने की कगार पर पहुँच गया था। मैंने तो सबसे कायरतापूर्ण कदम, यानी अंतिम समाधान, उठाने के बारे में भी गंभीरता से सोचा था! लेकिन ईश्वर की योजना कुछ और ही थी।

धरम जी के भाई अजीत साहब मेरे घर एक संदेश लेकर आए, 'धरम जी अपने बेटे सनी के साथ एक फिल्म लॉन्च करने की योजना बना रहे हैं और कल अपने घर पर आपसे मिलना चाहेंगे।'

मेरा दिल ज़ोर से धड़क रहा था और मैंने कहा, 'कल क्यों? मैं अभी आ जाऊँगा।'

मेरी मुलाकात धरम जी से हुई और उन्होंने कहा, 'मैंने आपकी फिल्म 'लव स्टोरी' देखी और मैं चाहता हूं कि आप मेरे बेटे को लॉन्च करें। क्या आप इच्छुक होंगे?'

मुझे ये तो बिलकुल पागलपन लगा! मुझसे पूछ रहे थे कि क्या मैं इच्छुक हूँ? 'जी हाँ, महोदय,' मैंने यही कहा और उन्हें अपना मन बदलने का मौका दिए बिना तुरंत उनके घर से निकल गया!

मैंने सबसे पहले यह खबर राज साहब को बताई, जिन्होंने जवाब दिया, 'मैंने तुमसे कहा था, प्रतिभा को कभी दबाया नहीं जा सकता।'

मुझे सबसे ज्यादा खुशी इस बात से हुई कि धरम जी जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति ने मुझे अपने बेटे की पहली फिल्म निर्देशित करने के लिए कहा, जिससे मुझे राज साहब के साथ काम करते हुए सीखे गए सबक को और अधिक प्रदर्शित करने का अवसर मिला। मैंने तय कर लिया था कि फिल्म एक प्रेम कहानी होगी, और मैं आज भी इस बात पर कायम हूं। जब राज साहब ने युवा अभिनेताओं की एक नई जोड़ी के साथ बॉबी बनाने का फैसला किया, तो उन्होंने कहा था, 'असल में, किशोर प्रेम की इस कहानी के लिए मुख्य भूमिका में केवल नई प्रतिभाओं की ही आवश्यकता है, क्योंकि दर्शकों के मन में उनकी कोई 'छवि' नहीं बनी है और इसलिए यह अधिक विश्वसनीय लगती है।'

अगले दिन जब मेरी मुलाकात धरम जी से हुई, तो उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मेरे पास प्रस्तावित फिल्म के लिए कोई कहानी है। मेरे स्कूल के दिनों में विलियम शेक्सपियर का नाटक 'द टेमिंग ऑफ द श्रू' मेरे साहित्य पाठ्यक्रम का हिस्सा था, और मुझे पूरा विश्वास था कि आधुनिक पृष्ठभूमि और नवोदित युवा कलाकारों के साथ, इस पर आधारित फिल्म दर्शकों से सकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त करेगी।

मैंने धरम जी को कहानी का स्रोत बताए बिना 'द टेमिंग ऑफ द श्रू' सुनाई और मुझे उम्मीद थी कि इतनी शानदार कहानी सोचने के लिए मुझे उनकी प्रशंसा मिलेगी।

जैसे ही मैंने उन्हें कहानी सुनाना समाप्त किया, उन्होंने कहा, 'आन को फिर से बनाने का आपका यह विचार अद्भुत है।'

मेरी 'कहानी' के लिए प्रशंसा पाने का सपना चकनाचूर हो गया। आन फिल्म, महबूब साहब जैसे उस्तादों की बनाई हुई थी और वह ज़बरदस्त हिट साबित हुई। दरअसल, विलियम शेक्सपियर की इस उत्कृष्ट रचना को विभिन्न भाषाओं में, अलग-अलग पृष्ठभूमियों और अनूठे दृश्य रूपों के साथ 28 बार सिनेमा के लिए रूपांतरित किया जा चुका है। मैं यह भी बताना

चाहूँगा कि द टेमिंग ऑफ द श्रू को विभिन्न भारतीय भाषाओं में आठ से अधिक बार बनाया जा चुका है, जिनमें से चार हिंदी में ही हैं!

धरम जी ने फिल्म की कहानी लिखने के लिए जावेद साहब को बुलाया था। जावेद साहब ने पटकथा को एक बिलकुल नया रूप दिया, जिसकी शुरुआत जंगली घोड़ों के प्रशिक्षक सनी के किरदार से हुई, जो पहले कभी नहीं देखा गया था। सभी किरदारों को एक अनोखे अंदाज में पेश करना पड़ा; जैसे पुरानी चीज़ को नए रूप में प्रस्तुत करना।

सनी के फार्म, जहां फिल्म का अधिकांश हिस्सा फिल्माया गया था, के लिए भी एक अनोखी लोकेशन की जरूरत थी। लव स्टोरी की शूटिंग के दौरान मैं पहलगाम से चंदनवाड़ी की ओर उत्तर दिशा में जाने वाली सड़क से गुजरा था। वहां एक खाली जमीन का टुकड़ा था, जिसके बीच से एक छोटी सी धारा बहती थी, जिसने मेरी कल्पना को मोह लिया था। फैसला लेने से पहले मुझे उस दृश्य को जमीनी स्तर से देखना जरूरी था। मुझे राज साहब की कही बात याद आई, 'एक निर्देशक जो लोकेशन या दृश्य कल्पना करता है, जरूरी नहीं कि वह वैसा ही हो जैसा आप वास्तव में उस लोकेशन पर पहुंचने पर देखते हैं। आपको दूर से देखी गई जगह को अच्छी तरह से देखने के लिए काफी मेहनत करनी पड़ती है, चाहे वहां तक जाने का रास्ता कैसा भी हो। जब आप वास्तव में उस लोकेशन पर जाएंगे, तभी आप तय कर पाएंगे कि वह लोकेशन फिल्म के लिए आपकी कल्पना के अनुरूप है या नहीं। अगर आप आलस के कारण इस काम को छोड़ देते हैं, तो आपको जीवन भर पछतावा होगा कि आपने एक खूबसूरत जगह को खो दिया।'

इस दृढ़ विश्वास के साथ, मैं छायाकार मनमोहन सिंह और स्थानीय प्रोडक्शन सहायक के साथ उस निकटतम बिंदु तक गया जहाँ धारा समतल भूमि पर थी, धारा को पार करके दूसरी ओर के किनारे पर पहुँचा और उत्तर की ओर एक कठिन पैदल यात्रा शुरू की, यह अनुमान लगाते हुए कि हम सही रास्ते पर थे।

कीचड़ भरे रास्तों से गुज़रते हुए जंगल से निकलने के बाद, रास्ता खुला और सामने स्वर्ग जैसा नज़ारा नज़र आया! उस पल मेरे मन में बस यही ख्याल आया कि अगर राज साहब की सूझबूझ न होती, तो मैं, अपनी आलस की वजह से, इस मनमोहक दृश्य को देखने से चूक जाता, जिसने यह साबित कर दिया कि 'देखना ही विश्वास करना है'। धन्यवाद, साहब!

बेताब की शूटिंग एक बेहद रचनात्मक रूप से संतोषजनक प्रक्रिया थी। नवोदित कलाकारों का किरदारों में पूरी तरह ढल जाना, शम्मी कपूर साहब, निरूपा रॉय जी और प्रेम चोपड़ा जी जैसे दिग्गज कलाकार, एक बेहद प्रतिभाशाली छायाकार और एक शानदार लेखक, सभी ने फिल्म की सफल निर्माण में योगदान दिया।

हमने फिल्म का एक बड़ा हिस्सा कश्मीर में शूट किया, लेकिन शम्मी साहब की संपत्ति के लिए हमने जो स्थान चुना वह बैंगलोर में था, क्योंकि दोनों स्थानों की भौगोलिक पृष्ठभूमि एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत थी।

शम्मी साहब और प्रेम चोपड़ा जी के साथ मैंने स्टड फार्म में एक सीन शूट किया था, जिसमें दोनों किरदारों के क्लोज-अप शॉट्स बारी-बारी से दिखाए जा रहे थे और फिर एक साथ मिड-शॉट में बदल दिया जाता था। मुझे पता था कि कट में कुछ गड़बड़ है, लेकिन समझ नहीं आ रहा था कि क्यों। राज साहब ने मुझे बेहद उपयोगी सलाह दी, 'सीन की शुरुआत में फोकस बदलने से बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है, लेकिन बैकग्राउंड पूरी तरह से धुंधला होने के कारण मुझे समझ नहीं आ रहा कि यह सीन किस जगह का है। आपको दूर से दौड़ते घोड़े की आवाज डालनी चाहिए, जिससे मुझे पता चल जाए कि यह स्टड फार्म है, और फिर कट के ऊपर घोड़े की हिनहिनाहट की आवाज डालनी चाहिए ताकि विजुअल में जो गड़बड़ है वह ठीक हो जाए।' साउंडट्रैक में किए गए उस सुधार से बहुत फर्क पड़ा।

राज साहब हमेशा कहते थे, ‘दर्शकों को आप जो भी दिखाएँ, वे उस पर विश्वास करेंगे, बशर्ते कहानी रोचक हो और उनकी कल्पना को आकर्षित करे। अगर आप दो या तीन बिल्कुल अलग-अलग जगहों पर फिल्म बना रहे हैं और कहानी आकर्षक है, तो दर्शक यह मानने लगेंगे कि ये अलग-अलग जगहें असल में पड़ोसी इलाके हैं। याद रखें, अगर आप भौगोलिक विसंगतियों को सही ठहराने की कोशिश करेंगे, तो आप निश्चित रूप से मुसीबत में पड़ जाएँगे क्योंकि आप दर्शकों का ध्यान कहानी से हटाकर जगह के वर्णन पर केंद्रित कर देंगे। इसी तरह, फिल्म की कहानी में, किसी घटना के घटित होने का समय और तारीख कभी भी निश्चित रूप से न बताएँ, बल्कि उसे अस्पष्ट रखें, जब तक कि कहानी में होने वाली घटना के लिए समय और तारीख अत्यंत महत्वपूर्ण न हो।’

इस बात को ध्यान में रखते हुए, मैंने कहानी को यथासंभव रोचक बनाने का प्रयास किया और कश्मीर से बैंगलोर तक के बदलाव पर किसी भी दर्शक ने कोई टिप्पणी नहीं की। मुझे पूरा विश्वास है कि फिल्म निर्माता सब झूठे होते हैं। सिनेमा की काल्पनिक दुनिया ने दर्शकों को यह विश्वास दिला दिया कि कश्मीर बैंगलोर के बिल्कुल पास है!

एक दृश्य की एडिटिंग करते समय, मुझे सनी के अमृता के घर में प्रवेश करने का एक शॉट मिला। वह गलियारे से गुज़र रहा था, कैमरा उसके साथ पीछे की ओर घूम रहा था, और एक क्षण में कैमरा सनी के साथ बेडरूम की ओर मुड़ गया जहाँ अमृता उसका इंतज़ार कर रही थी, और वह अंदर जाकर उसे गले लगा लेता है। यह सब एक ही शॉट में दिखाया गया था, ताकि उस लड़की के बेडरूम में प्रवेश करने की उसकी बेचैनी और निडर उत्साह को दर्शाया जा सके जिससे वह प्यार करता था।

तीन बिल्कुल ठीक-ठाक टेक थे, लेकिन उन्होंने मेरे लिए दुविधा खड़ी कर दी। मुझे तीनों टेक में से एक चुनना था, जबकि तीनों में ही कुछ खास हिस्से थे जिन्हें बदला नहीं जा सकता था। जब मैंने एक टेक का इस्तेमाल किया, तो दूसरे टेक का एक हिस्सा इतना दमदार था कि अगर मैं चुने हुए टेक को बदल देता, तो पहले वाले टेक के कुछ बारीक अंतर छूट जाते। इसके बाद तीसरे टेक में एक बिल्कुल सटीक मूवमेंट था, जिसने मुझे उलझन में डाल दिया। काफी सोच-विचार के बाद, मैंने इस शॉट में 'राज कपूर' स्टाइल अपनाने का फैसला किया। मैंने तीनों टेक के बीच सबसे अच्छे मैचिंग फ्रेम ढूंढे, जिनकी मदद से मैं पहले टेक से दूसरे और फिर तीसरे टेक पर एक ही शॉट में जा सका। मेरे सहायकों ने इस प्रयोग को यह कहकर खारिज कर दिया कि भले ही झटके कम थे, लेकिन वे साफ तौर पर दिखाई दे रहे थे और माफ करने लायक नहीं थे। मैंने एक बैकग्राउंड स्कोर लिया, विजुअल झटकों के साथ म्यूजिकल बैंग्स को सिंक्रोनाइज़ किया और एडिट किया हुआ शॉट चलाया, जिसके बाद किसी को भी झटके नज़र नहीं आए। जब फाइनल बैकग्राउंड स्कोर रिकॉर्ड हो गया, तो मैंने आर.डी. बर्मन से कहा कि वे रश प्रिंट में मेरे द्वारा किए गए म्यूजिकल बैंग्स को दोहराएं।

फिल्म पूरी होने पर मैंने बॉस से पूछा कि वो फिल्म कब देखना चाहेंगे? वो प्रेम रोग की एडिटिंग में बहुत व्यस्त थे और उन्होंने उस समय फिल्म देखने में असमर्थता जताई, लेकिन चाहते थे कि मैं कृष्णा आंटी और उनकी सहेलियों को फिल्म दिखाऊं। उनके लिए आरके

थिएटर में एक प्रीव्यू का आयोजन किया गया। राज साहब थिएटर के बगल वाले एडिटिंग रूम में थे और प्रीव्यू शुरू होते ही वो आकर थिएटर के प्रवेश द्वार पर खड़े हो गए और पूरी फिल्म देखी। उनके इस भाव से मुझे बहुत खुशी हुई, लेकिन मुझे इस बात की चिंता भी थी कि फिल्म के बारे में उनकी क्या राय होगी।

उन्होंने कहा, 'यह बहुत शानदार था! लेकिन कुछ बातें हैं जिन पर मुझे लगा कि आपको ध्यान देना चाहिए। इन्हें यथावत रखना है या इनमें सुधार करना है, यह आपका निर्णय है...'

उन्होंने उस दृश्य का जिक्र किया जिसमें सनी अमृता के यहाँ जंगली घोड़े को प्रशिक्षण देने आता है। उनके अनुसार, अगर सनी अपने घोड़े पर सवार होकर अस्तबल में प्रवेश करता और बाड़ फांदता हुआ दिखाया जाता, तो यह दृश्य कहीं अधिक प्रभावशाली होता। वे बिल्कुल सही थे, लेकिन दुर्भाग्यवश, उस दृश्य को दोबारा फिल्माने में बहुत देर हो चुकी थी।

उन्होंने एक और दृश्य का जिक्र किया जिसमें अमृता घर से भागकर सनी से मिलने आती है। चूंकि सनी घर पर नहीं होता, इसलिए वह उसकी मां से घर के आंगन में मिलती है और मां से कहती है, 'मैं सनी के साथ हमेशा के लिए रहने के लिए घर से भाग आई हूं क्योंकि मेरे पिता हमारी शादी नहीं होने देंगे।' यह दृश्य निरूपा जी और अमृता के बीच एक बेहद भावुक क्षण में बदल जाता है। इस दृश्य से राज साहब बिल्कुल भी प्रभावित नहीं हुए, बल्कि उन्होंने आशंका जताई कि कुछ दर्शक शायद कुछ पलों पर हंस भी सकते हैं।

मैंने उनकी बात से सहमति जताई और उनसे कहा कि जब हमने उस दृश्य को संपादित किया, तो हमारी भावनाएँ एक जैसी थीं। हालाँकि हम कश्मीर वापस नहीं जा सके, हमने चांदिवली स्टूडियो के बगीचे में उस दृश्य को दोबारा फिल्माया और नतीजा वही रहा। कोई भी भावुक नहीं हो रहा था और हमें समस्या समझ नहीं आ रही थी। वह दृश्य बिल्कुल भी असरदार नहीं था!

राज साहब ने मुझे इसके काम न करने का कारण और समाधान दोनों बताया, "यह दृश्य उसी स्थान पर फिल्माया गया है जहाँ प्रेम कहानी पनपती है। जब तक आप इस दृश्य तक पहुँचते हैं, वह स्थान प्रेम प्रसंग का एक सुंदर, अभिन्न अंग बन चुका होता है और उसी स्थान पर प्रेमियों के बीच एक भावुक दृश्य तो सफल हो सकता है, लेकिन आपका दृश्य प्रेमियों के बीच नहीं है। दर्शकों का प्रेमियों और उस स्थान से जो जुड़ाव है, वह इस क्षण में उनके विश्वास को

तोड़ देता है और इसलिए वे दृश्य को अस्वीकार कर रहे हैं। इस दृश्य को एल-आकार का सेट लगाकर फिर से शूट करें, और यकीन मानिए, परिणाम आपको भी आश्चर्यचकित कर देगा।" उनके विश्वास पर चलते हुए, हमने उनके मार्गदर्शन में दृश्य को फिर से शूट किया और मुझे यह स्वीकार करना होगा कि दृश्य ने लोगों को इतना भावुक कर दिया कि कुछ दर्शकों के हाथों में रुमाल आ गए। राज साहब के अनुभव और ज्ञान ने मुझे सिखाया कि कैसे हर तत्व, चाहे वह महत्वपूर्ण हो या छोटा, एक फिल्म में अमिट भूमिका निभाता है। एक स्थान ने सब कुछ गड़बड़ कर दिया था और स्थान बदलने से सब कुछ ठीक हो गया।

आखिरकार *5* अगस्त *1983* को 'बेताब' रिलीज़ हुई और 'लव स्टोरी' की सफलता का डर मुझ पर हावी था, मैं बहुत घबराया हुआ था। मैं एक दिन पहले राज साहब से मिलने गया और उन्हें पूरा भरोसा था कि 'लव स्टोरी' की सफलता का पूरा श्रेय मुझे ही मिलेगा। वकील सिंह जी, जो राज साहब से मेरी मुलाकात में मौजूद थे, उनके पास पंजाब और मुंबई दोनों क्षेत्रों के लिए 'बेताब' के वितरण अधिकार थे। राज साहब हँसते हुए उस बात को याद करते हुए बोले, 'वकील सिंह ने 'लव स्टोरी' के पंजाब के अधिकार इसलिए खरीदे थे क्योंकि उन्होंने आपको कश्मीर में शूटिंग करते हुए देखा था और एक क्लोज-अप के लिए *30* टेक लेते हुए देखा था। मुझे यकीन है कि उन्होंने आपको कश्मीर में फिर से 'बेताब' में एक क्लोज-अप के *60* टेक लेते हुए देखा होगा और फिर दो क्षेत्रों के अधिकार खरीद लिए*!*'

वकील सिंह जी को पूरा विश्वास था कि अगली सुबह रिलीज होने पर 'बेताब' इतिहास रच देगी।

पंजाब में पहला शो सुबह *6* बजे था। फिल्म को लेकर लोगों की क्या प्रतिक्रिया होगी, इस चिंता में मैं उस रात सो नहीं पाया। उन दिनों मोबाइल फोन नहीं होते थे और मैं लगातार वकिल सिंह जी को फोन करने की कोशिश करता रहा, जो उस दिन बॉम्बे में थे, ताकि फिल्म को लेकर प्रतिक्रिया जान सकूं। टिप-टॉप होटल में उनके कमरे से कोई जवाब नहीं आया।

सुबह करीब 9:30 बजे मैंने अपने घर के दरवाजे पर किसी को चिल्लाते हुए सुना, 'ओह राहुल साहब, मुबारक हो!'

Vakil Singh ji walked in with an entourage of six to seven people doing the bhangra, ‘Mubarak ho ji! Kamal ho gaya! Rahul Sahab, ek toh mar gaya. Chaar hospital mein pahunch gaye, balle balle!’

मैं अविश्वास से उसे देख रहा था, इस बात पर खुशी मना रहा था कि एक आदमी मारा गया और चार अन्य अस्पताल में भर्ती हुए, तभी उसके एक साथी ने, जो फोन पर था, चिल्लाकर कहा, 'मुबारक हो जी, दूजा भी चला गया!'

Vakil Singh ji was overjoyed, ‘Oh ji, dooja vi chala gaya! Yeh toh kamal hai, shaam tak paanch, chhah aur chale jayenge!’

I asked, ‘Kya hua?!’

He said, ‘Itni bheed thi, itni bheed thi ki police ne goliyan chala di crowd ko disperse karne ke liye!’

मुझे इस बात को लेकर दुविधा थी कि मुझे अपनी फिल्म को मिली इतनी बड़ी स्वीकृति पर खुशी मनानी चाहिए या अपनी फिल्म की रिलीज के दिन घटी इस भयावह घटना पर पछतावा करना चाहिए।

राज साहब यह सुनकर खूब हंसे और बोले, 'राहुल, वकील सिंह झूठ बोल रहा है! वह यह मनगढ़ंत घटना इसलिए बना रहा है ताकि तुम खुश हो जाओ और यही बात धर्म को सुनाओ, जो उसके अनुसार और भी खुश होता।'

बेताब, लव स्टोरी से भी बड़ी सफलता साबित हुई। भगवान मुझ पर मेहरबान थे। जिन लोगों ने लव स्टोरी की रिलीज के समय मेरी बुराई की थी, वही अब ऐसी टिप्पणियां कर रहे थे, 'मुझे तो हमेशा से पता था कि राजेंद्र कुमार लव स्टोरी जैसी फिल्म बनाने में सक्षम नहीं हैं।'

‘वह तो बिल्कुल मूर्ख है!’

'मुझे बेहद खुशी है कि आपने ब्लॉकबस्टर फिल्म 'बेताब' का निर्देशन करके मुझ पर रखे गए भरोसे को सही साबित कर दिया है।'

जीवन में, असफलता आपके करीबी और प्रियजनों को भी आपको छोड़ने पर मजबूर कर देती है, और सफलता हर पल एक नए 'पिता' को जन्म देती है!

फिल्म फाइनेंसर दिलीप कंकारिया, अपने भाईजी (श्री भैरुरतन पचीसिया) के साथ, जिनके बहुमूल्य पिता तुल्य मार्गदर्शन ने मेरे करियर में मेरी बहुत मदद की है और जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूं, मुझसे मिलने आए और मुझे एक फिल्म निर्देशित करने का प्रस्ताव दिया।
दिलीप ने पूछा, 'राहुल, बताओ, क्या तुम राजेंद्र कुमार के लिए फिल्म निर्देशित करोगे?'
मैं हंसने लगा, 'क्या तुम सच कह रहे हो?'
उन्होंने कहा, “बहुत गंभीर बात है। मैं आज सुबह उनसे बात कर रहा था, और उन्होंने कहा, “सुनो, राहुल से मेरा कोई झगड़ा नहीं है, वह मेरे बेटे जैसा है। मैंने उसे लव स्टोरी से नहीं निकाला, वह बचकाना था और एक शानदार फिल्म बनाने के बाद खुद ही फिल्म छोड़कर चला गया।”
भाईजी ने कहा, 'ऐसा मत करो! जो कुछ हुआ है उसके बाद, तुम्हारी मेहनताने को लेकर दिक्कतें शुरू हो जाएंगी, जो 'लव स्टोरी' के लिए उसने तुम्हें जो भुगतान किया था उससे कहीं ज्यादा होगा।'
मैंने दिलीप से कहा, 'मुझे खेद है कि मैं भाईजी की सलाह के विरुद्ध नहीं जा सकता। हालांकि, मैं राजेंद्र सर की ईमानदारी की प्रशंसा करता हूं, आखिरकार, उन्होंने मुझे फिल्म से कभी नहीं निकाला, मैं खुद बेवकूफ बनकर फिल्म छोड़कर चला गया था!' - मैं अपने व्यंग्यपूर्ण अंदाज में।
बीटाब के बाद, लव स्टोरी की सफलता का श्रेय मुझे मिलने के साथ-साथ राजेंद्र सर द्वारा मुझे अपनी फिल्म निर्देशित करने का प्रस्ताव देने से मेरा यह विश्वास और भी मजबूत हो गया कि मेरे जीवन में एक नया 'ज्योतिषी' आ गया है - बाबा राज कपूर!

अर्जुन

डी कंपनी (शबीर इब्राहिम कास्कर और उनके भाई दाऊद इब्राहिम कास्कर) और पठान गैंग (अमीरजादा नवाब खान और उनके भाई आलमजेब जंगरेज खान) के बीच की दोस्ती, उत्थान और दुश्मनी, राजनेताओं द्वारा उनके हेरफेर के कारण उनका अपराधी बनना, और उस समय शिक्षित-बेरोजगारों की महामारी ने जावेद साहब को एक फिल्म की पटकथा लिखने और एक तरह का रिकॉर्ड बनाने के लिए प्रेरित किया।

जावेद साहब द्वारा अर्जुन की पटकथा को अंतिम रूप देने से पहले, मैं आपको थोड़ी पृष्ठभूमि बता दूं।

जब 'बेताब' की शूटिंग अपने आखिरी शेड्यूल में चल रही थी, तब सनी के बचपन के दोस्त करीम मोरानी, उनके भाई अली मोरानी और बंटी सूरमा ने मिलकर एक फिल्म बनाने का फैसला किया, जिसमें सनी मुख्य भूमिका में होंगे, जिसे जावेद साहब ने लिखा था और मैंने निर्देशित किया था।

जावेद साहब ने मुझे एक कहानी सुनाई जो मुझे पसंद आई, लेकिन उसमें दो नायकों की ज़रूरत थी। हमने पहले सोचा कि फिल्म में कुमार गौरव और सनी देओल को एक साथ लिया जाए, क्योंकि इससे ज़बरदस्त प्रचार होगा, लेकिन जब हमने कुमार गौरव से संपर्क किया, तो उन्होंने इस फिल्म में काम करने से इनकार कर दिया।

फिर हमने सनी देओल के साथ फिल्म में अभिनय करने के लिए ऋषि कपूर को साइन किया। हमने स्क्रिप्ट पर काम शुरू किया और आर.डी. बर्मन के साथ कहानी पर चर्चा करते समय, उन्हें प्रेरणा मिली और उन्होंने एक पारंपरिक पुर्तगाली गीत, 'ममैया या केरो केरो केरो मामा' गाया। इस गीत ने हमें मंत्रमुग्ध कर दिया और हमने तय किया कि भले ही स्क्रिप्ट अभी लिखी जा रही थी, हम दोनों नायकों के लिए इस गीत को गाने का एक दृश्य बनाएंगे। हमने गीत को रिकॉर्ड भी किया और यह यूनिट में तुरंत हिट हो गया। दुर्भाग्य से, जैसे ही स्क्रिप्ट क्लाइमेक्स पर पहुंची, हमें एहसास हुआ कि यह काम नहीं कर रही है और हमें इसे छोड़ना होगा और एक नई स्क्रिप्ट ढूंढनी होगी। यह मेरे लिए बहुत शर्मनाक स्थिति थी और शर्मिंदा होकर मैंने अपने प्यारे बचपन के दोस्त चिंटू को स्क्रिप्ट के इस दुर्भाग्यपूर्ण मोड़ के बारे में बताया। मैं बहुत

माफी मांग रहा था, लेकिन राज कपूर के बेटे होने के नाते चिंटू ने कहा, 'राहुल, स्क्रिप्ट फिल्म की नींव होती है। जब आपको उसमें कोई खामी दिखती है, तो आप निर्माण छोड़ देते हैं और एक नई नींव फिर से खड़ी करते हैं।' यकीन मानिए, मैं आपके फैसले से खुश हूं और हमेशा आपका साथ दूंगा; हालांकि, मेरी एक गुजारिश है, या यूं कहें कि एक शर्त है – आप जो भी स्क्रिप्ट फाइनल करें, उसमें "ममाइया या केरो केरो केरो मामा" गाना जरूर शामिल करें, एक बेहतरीन गाने को मत गंवाइए।

निर्माता इस बात पर अड़े थे कि फिल्म में गाना होना ही चाहिए। तो, अब हमारे पास स्क्रिप्ट नहीं थी, लेकिन गाना था! हमने महीनों तक ऐसी स्क्रिप्ट खोजने के लिए संघर्ष किया जो गाने को फिल्म के अहम मोड़ पर फिट कर सके, लेकिन गाना ही अड़चन बना रहा। एक यादगार रविवार को, खंडाला में नाश्ते के दौरान, हम शिक्षित-बेरोजगार महामारी और युवाओं पर इसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव के बारे में आम बातचीत कर रहे थे और संयोग से, उसी दिन हमने संडे टाइम्स में डोंगरी गैंग और पठान गैंग के उदय पर एक लेख पढ़ा। जीवन के बेहद जानकार और पैनी नज़र रखने वाले जावेद साहब द्वारा निर्देशित यह आम बातचीत रात करीब दस बजे तक चली। हम सब अपने-अपने कमरों में सोने चले गए। अचानक, सुबह करीब तीन बजे जावेद साहब ने मुझे जगाया और दिन भर हुई बातचीत के आधार पर एक विस्तृत स्क्रिप्ट सुनाई। जावेद साहब ने एक रिकॉर्ड बनाया, जिसमें एक साधारण बातचीत से 20 घंटे के भीतर एक विस्तृत स्क्रिप्ट तैयार हो गई और उस बहुप्रतीक्षित गाने के लिए एक आदर्श स्थिति भी मिल गई।

इस पटकथा ने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया! एक ऐसी पटकथा जो सभी परंपराओं को तोड़ती है, एक कहानी को सही मायने में बयान नहीं करती, बल्कि एक राजनेता द्वारा हेरफेर किए गए 'शिक्षित-बेरोजगार' चरित्र के जीवन का वर्णन करती है, इसने मुझे एक ऐसे क्षेत्र में उतरने का अवसर दिया जिसमें मैंने पहले कभी प्रयास नहीं किया था। अनजान रास्तों पर चलने के विचार ने मुझे रोमांचित कर दिया!

मैं राज साहब से अपने इस कदम के बारे में सलाह लेने गया था। उन्होंने कहा, 'जब तुमने मुझे पटकथा का सार बताया, तो मुझे तुम्हारे भीतर एक उत्साह दिखाई दिया और महसूस हुआ, और यही उत्साह तुम्हें इस फिल्म को पूरे विश्वास के साथ बनाने के लिए प्रेरित करेगा। बस

एक बात याद रखना, इस फिल्म को 'स्वतंत्र इच्छाशक्ति' से बनाना; फिल्म निर्माण की सभी परंपराओं को दरकिनार कर देना, किसी भी नियम से बंधे न रहना और अपने विश्वास को उस कहानी का आधार बनने देना जो तुम कल्पना करते हो। बिना किसी डर या सीमा के एक अपरंपरागत पटकथा पर फिल्म बनाना तुम्हारी ताकत होगी। इसलिए, परंपराओं को तोड़ो, लेकिन पूरे विश्वास के साथ तोड़ो और तुम सफल होगे!'

मुझमें नया आत्मविश्वास जागा और उसके बाद मैंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। मुझे प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त था!

मेरी समझ में, अर्जुन की पटकथा की संरचना ने कुछ सीमाएँ निर्धारित की थीं जिनका पालन करना आवश्यक था। मैं जानता था कि फिल्म मुंबई शहर में, और विशेष रूप से परेल क्षेत्र में आधारित होनी चाहिए, क्योंकि यह मध्यम वर्ग के परिवेश का प्रतिनिधित्व करता था। एक और महत्वपूर्ण निर्णय यह था कि फिल्म किसी भी बिंदु पर मुंबई शहर से बाहर नहीं जाएगी। यहाँ तक कि रोमांटिक गाने, जो आमतौर पर सुरम्य बाहरी स्थानों पर फिल्माए जाते हैं, उन्हें भी हैंगिंग गार्डन में फिल्माया गया।

आम तौर पर हमारी फिल्मों में मुख्य पुरुष किरदार का नाम तो होता था, लेकिन उपनाम नहीं। किरदार की जातीयता को दर्शाने के लिए अर्जुन को उपनाम देना पड़ा और उसे अनिवार्य रूप से महाराष्ट्रीयन होना था। इस तरह अर्जुन मावलंकर का जन्म हुआ! मुंबई जैसे महानगर की विविधता को दर्शाने के लिए, अन्य किरदारों को भी मिश्रित जातीयता वाले उपनाम दिए गए।

फिल्म को और अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए अर्जुन को छोटे से छोटे किरदारों के लिए भी अनोखे चेहरों और अच्छे कलाकारों की ज़रूरत थी। उस समय कास्टिंग डायरेक्टर जैसी कोई चीज़ नहीं होती थी और किरदारों के लिए सही चेहरे ढूंढना हमारे लिए एक बहुत बड़ा काम था। इसी प्रक्रिया में हमें बेहद प्रतिभाशाली और बहुमुखी अभिनेता परेश रावल मिले। मुख्य खलनायक शिव कुमार चौगुले का किरदार ऐसे अभिनेता द्वारा निभाया जाना था जिसे पहले कभी 'खलनायक' के रूप में नहीं देखा गया हो। इसी वजह से हमने महेश भट्ट की शानदार फिल्म सारांश का एक प्रीव्यू देखा और परिणामस्वरूप हमने एक और प्रतिभाशाली अभिनेता अनुपम खेर को कास्ट किया।

हालांकि हमने शूटिंग के लिए ज्यादातर लालबाग इलाके को चुना था, लेकिन लालबाग के भीड़भाड़ वाले इलाके में लंबे समय तक शूटिंग करना अव्यवहारिक था और इससे रचनात्मक समझौता करना पड़ता। इसलिए, हमने राजकमल स्टूडियो के बाहरी क्षेत्र में गलियों, उपगलियों, घरों आदि का एक सेट बनाने का फैसला किया। स्टूडियो ने शूटिंग के लिए काफी सुविधाजनक जगह प्रदान की और यह परेल-लालबाग क्षेत्र में स्थित था। सेट और आसपास के क्षेत्रों के संयोजन से वह 'लालबाग का माहौल' पूरा हो गया जिसकी हमें तलाश थी।

सेट का लेआउट श्री 420 फिल्म के स्ट्रीट सेट से काफी हद तक प्रेरित था, जहां 'प्यार हुआ इकरार हुआ' गाना फिल्माया गया था। गलियों और उप-गलियों को श्री 420 के सेट की तरह ही बनाया गया था। मैंने पुल की आवश्यकता पर जोर दिया और यह श्री 420 के पुल की हूबहू प्रतिकृति बन गया। मुझे लगता है कि वह छवि मेरे दिमाग में छपी हुई थी और इसलिए जब दूसरे सेट की आवश्यकता हुई तो उसे फिर से बनाया गया।

सेट का निर्माण एक बहुत बड़ा काम था। मेरे कला निर्देशक मधुकर शिंदे सेट को इतना यथार्थवादी बनाने के लिए जी-जान से प्रयास कर रहे थे कि दर्शकों को लगे कि वे मुंबई के किसी जीवंत इलाके में आ गए हैं, न कि किसी सेट पर। जैसे-जैसे सेट लगभग पूरा होने वाला था, एक नाई की दुकान, एक ढाबा, एक मिठाई की दुकान, एक पान की दुकान और एक चाय की दुकान के मालिकों ने अनुरोध किया कि वे ये आवश्यक सुविधाएं अपने खर्च पर उपलब्ध कराएंगे। उनकी एकमात्र शर्त यह थी कि चूंकि सेट पर बड़ी संख्या में कनिष्ठ कलाकारों की आवश्यकता होगी, इसलिए उन्हें इन सुविधाओं का उपयोग करने से रोका न जाए। वे चतुर और होशियार विक्रेता थे जिन्होंने इसे जल्दी पैसा कमाने का अवसर समझा। अन्य विक्रेताओं से भी संपर्क किया गया ताकि वे बिना किसी भुगतान के अपने साइनबोर्ड और ब्रांड कटआउट के साथ खुदरा दुकानें लगा सकें, जिसके लिए वे तुरंत सहमत हो गए। पार्ले ने एक शीतल पेय की दुकान लगाई जहाँ यूनिट और कनिष्ठ कलाकारों को असीमित मात्रा में थम्स अप मुफ्त में वितरित किया गया। क्वालिटी आइसक्रीम भी इसी व्यवस्था के लिए तैयार थी, लेकिन हमारी एक शर्त थी कि आइसक्रीम के विभिन्न फ्लेवर, जिनमें सबसे लोकप्रिय कैसटा भी शामिल हो, असीमित मात्रा में उपलब्ध होंगे। जूनियर कलाकारों और पूरी टीम को बताया गया कि उनके परिवार सेट पर आ सकते हैं और उन्हें मुफ्त आइसक्रीम और सॉफ्ट ड्रिंक्स

दिए जाएंगे। यह सबके लिए फायदेमंद साबित हुआ; सप्ताहांत में आने वाले परिवार बेहद खुश थे और सेट पर आने वाले लोगों की संख्या भी बढ़ गई। साथ ही, यह भी बताना ज़रूरी है कि जिन चतुर विक्रेताओं ने ग्राहकों के लिए दुकानें खोलीं, उनकी बिक्री में ज़बरदस्त बढ़ोतरी हुई!

शूटिंग शुरू होने से तीन-चार दिन पहले, राज साहब को सेट की ओर आते देखकर मैं हैरान रह गया। जाहिर है, वे अन्ना साहब से मिलने आए थे और उन्होंने स्ट्रीट सेट के बारे में सुना था, इसलिए वे उसका गाइडेड टूर करना चाहते थे। उन्होंने कहा, 'मुझे सेट की प्रामाणिकता और उसमें डाले गए बारीक काम बहुत पसंद आए। मुझे यकीन है कि आप सेट पर एक BEST बस भी चलाएंगे।' मैंने इस बारे में सोचा ही नहीं था और मैंने बॉस को यह बात बता दी। उन्होंने कहा, 'BEST बस मुंबई की पहचान है और इससे यह विश्वास और मजबूत होगा कि फिल्म की शूटिंग किसी असली लोकेशन पर हुई है। ढाबे, नाई की दुकान और ऐसी ही दूसरी दुकानों में भी कुछ सीन जरूर शूट करें। इस शानदार सेट का भरपूर इस्तेमाल करें और यह सुनिश्चित करें कि आपकी यह अनोखी फिल्म मुंबई शहर को एक बिल्कुल नए अंदाज में दिखाए। मुंबई शहर को एक किरदार की तरह पेश किया जाना चाहिए जो कहानी में एक अहम और आवश्यक भूमिका निभाएगा।'

राज साहब के सुझावों के आधार पर, निर्माताओं ने बेस्ट डिपो से व्यवस्था की, जो राजकमल स्टूडियो के ठीक बगल में स्थित था, कि हमें जरूरत पड़ने पर एक घंटे के नोटिस पर बस उपलब्ध कराई जाएगी। मैंने निर्माताओं को सूचित किया कि हमें जरूरत पड़ने पर दो या तीन टैक्सियाँ भी चाहिए होंगी।

जब मैं पहले दिन सेट पर गया, तो मैंने देखा कि प्रोडक्शन वाले ने टैक्सियों की जगह तीन ऑटो मंगवा रखे थे। मैंने कहा, 'देखिए, फिल्म लालबाग पर आधारित है और बांद्रा मस्जिद के आगे ऑटो नहीं चलते।'

निर्माताओं ने कहा, ‘तीन ऑटो किराए पर लेना सस्ता पड़ेगा क्योंकि वे हमें बढ़िया डील दे रहे हैं। इस शेड्यूल में हम कम से कम 25,000 रुपये बचा लेंगे।’ फाइनेंसर दिलीप कंकारिया ने कहा, ‘वैसे भी, हमें पैसे बचाने ही चाहिए क्योंकि आपने यह घटिया सेट लगाकर मेरा पैसा

बर्बाद कर दिया है। यह इतना असली दिखता है कि किसी को पता ही नहीं चलेगा कि इस पर कितना पैसा खर्च हुआ है। बहुत बुरा! आपको आर्थिक समझ बिल्कुल नहीं है।'
मैं जोर-जोर से हंसने लगी और उन्होंने कहा, 'इस क्षेत्र की पहचान करने की क्या जरूरत है?'
मैंने जवाब दिया, 'इलाके की पहचान करके, हम मुंबई के औद्योगिक क्षेत्रों में मौजूद समाज के उन वर्गों को दिखाते हैं जहाँ हिंसा पनपती है। जनसांख्यिकी आर्थिक रूप से वंचित लोगों को उजागर करती है। यहाँ तक कि अंडरवर्ल्ड की जड़ें भी इसी तरह के इलाके - डोंगरी - में हैं। हमारी फिल्म एक शिक्षित लेकिन बेरोजगार, वंचित लड़के के इर्द-गिर्द घूमती है जिसका राजनेताओं द्वारा शोषण किया जाता है।'
सेट के आसपास के क्षेत्र को पहचानने की अवधारणा के अनुरूप, मैं राजकमल स्टूडियो की छत पर गया। नीचे फैले शहर और उसकी भीड़भाड़ को देखकर मुझे सेट पर बनी सभी इमारतों की छतों को मजबूत करवाने की प्रेरणा मिली, क्योंकि मैं इस अनूठे दृश्य को मुंबई के चरित्र के एक पहलू के रूप में साझा करना चाहता था। छत पर फिल्माए गए एक दृश्य में, अर्जुन और उसकी बहन के बीच, जिसमें वह इस विशाल शहर में बेरोजगार होने की अपनी निराशा व्यक्त करता है, उसके भावों की तीव्रता और तीव्रता और बढ़ गई।
अर्जुन की हताशा को दर्शाने वाला पहला दृश्य 'कैरोम का दृश्य' था। इस दृश्य में अर्जुन की मनोदशा और उसके भाव को दृश्य रूप से प्रकट करना आवश्यक था। इस दृश्य के लिए स्क्रिप्ट में कोई दिशा-निर्देश नहीं था जिसका मैं पालन कर सकूँ, फिर भी मुझे बिना संवाद के, चरित्र की उथल-पुथल को दृश्य रूप से व्यक्त करना था। मैंने सोचना शुरू किया कि राज साहब ऐसी स्थिति को कैसे संभालते। उनकी कला में महारत से प्रेरणा लेते हुए, मैंने योजना बनाई कि चरित्र की उलझन को दर्शाने का सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि दृश्यों के ऐसे संयोजन का प्रयोग किया जाए जिसमें कुछ क्षणों के लिए कोई गतिविधि न हो और फिर अचानक दृश्य उलझन शुरू हो जाए। राज साहब के ध्वनि के रचनात्मक उपयोग और उससे सीखे गए सबक ने मुझे दृश्य को और अधिक प्रभावी बनाने का रास्ता दिखाया। सनी का कैरम खेलना और कैरम बोर्ड का क्लोज-अप, दोनों को 24 अलग-अलग कोणों और आवर्धनों से शूट किया गया था। यह दृश्य पूरी तरह सन्नाटे में फिल्माया गया था, जिसमें कोई बैकग्राउंड म्यूजिक नहीं था और केवल स्ट्राइकर के कैरम टेबल की दीवार से टकराने और चारों दीवारों

से टकराकर वापस आने की आवाज़ सुनाई देती थी। एडिटिंग रूम में शॉट्स को जोड़ने से पहले, साउंड इफेक्ट्स ट्रैक बिछाना ज़रूरी था ताकि शॉट्स एक-दूसरे के क्रम में सही ढंग से चलें। हर बार जब स्ट्राइकर कैरम टेबल की दीवारों से टकराकर वापस आता था, तो अलग-अलग मैग्निफिकेशन वाले 24 अलग-अलग शॉट्स को कैरम टेबल के शॉट्स के साथ मिलाकर, साउंड के साथ सिंक्रोनाइज़ करके, बेतरतीब क्रम में जोड़ा जाता था। 'कोई गतिविधि नहीं' के छोटे-छोटे पल उन शॉट्स में दिखाए गए थे जिनमें सनी स्ट्राइकर के वापस आने के बाद उसे बोर्ड के शुरुआती बिंदु पर रखता है। इस अनोखे ऑडियो-विजुअल नैरेटिव ने किरदार की दुविधा को स्पष्ट किया और पूरी फिल्म का मिजाज तय किया।

अर्जुन मावलंकर एक जटिल किरदार था जिसने सनी को सूक्ष्म भावों को ध्यान में रखते हुए अभिनय करने की चुनौती दी। इससे भी मुश्किल था वो दृश्य जहाँ अभिनय की कोई आवश्यकता नहीं थी। सनी को भावहीन रहना था; एक ऐसा व्यवहार जिसे निभाना कठिन था। सनी के व्यक्तित्व में अंतर्निहित संवेदनशीलता के साथ, उन्होंने इस फिल्म में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया। किरदार की जटिलता ने उन्हें भावहीन मौन में डूबने का एक शानदार अवसर दिया, जिसने दर्शकों के मन पर गहरा प्रभाव डाला।

राज साहब के अनुसार, क्लोज-अप किसी निर्देशक के हाथों में भावनाओं को उभारने और दर्शकों को मंत्रमुग्ध करने का सबसे कारगर हथियार होता है। हमने बेहद ज़ूम करके क्लोज-अप शॉट्स का भरपूर इस्तेमाल किया, जिसमें ठुड्डी और माथा फ्रेम के अंदर ही कटे हुए दिखाई दे रहे थे। ऐसे क्लोज-अप शॉट्स ने दृश्य प्रस्तुति में मदद की, खासकर उन जगहों पर जहां खामोशी का अहम रोल था, लेकिन इसके लिए लंबे शॉट्स का इस्तेमाल भी ज़रूरी था ताकि दृश्य अनुभव और भी बेहतर हो सके। मैंने सारे तथाकथित नियमों को दरकिनार करते हुए एक ऐसा फॉर्मेट चुना जिसमें बेहद ज़ूम किए हुए क्लोज-अप से सीधे एक लंबे शॉट पर जाया जाता था। इस तरह से शॉट लगाना एक तरह से परंपरा का उल्लंघन माना जाता था, क्योंकि उस समय का चलन था कि पहले लंबे शॉट, फिर सामान्य लंबे शॉट, फिर मिड-शॉट और आखिर में क्लोज-अप, या इसके विपरीत। अर्जुन ने सिर्फ इसी क्षेत्र में परंपरा को नहीं तोड़ा और अपने दिल की आवाज़ सुनी। फिल्म के प्रीव्यू में फिल्म देखने वाले कई सहकर्मी मेरे इस नए प्रयोग को लेकर संशय में थे। मैंने उनसे राज साहब का यह कथन उद्धृत किया,

'जब तक आप आश्वस्त और उत्साहित हैं, आप फिल्म निर्माण के नए नियम स्थापित करेंगे।' मैं निश्चित रूप से उत्साहित और आश्वस्त था!

इस फिल्म को जितना हो सके उतना आकर्षक बनाने की लालसा मुझ पर हावी होती जा रही थी। लेकिन मैं उस क्षेत्र में नहीं जाना चाहता था जहाँ मैं दर्शकों से जुड़ाव खो दूं। उनकी रुचि कभी कम नहीं होनी चाहिए।

'अम्ब्रेला सीक्वेंस' अपने आप में कई चुनौतियाँ लेकर आया। इस सीक्वेंस में अर्जुन के दोस्त को गलियों में दौड़ाया जाता है और बेरहमी से मार दिया जाता है। इस सीक्वेंस से पहले वाले दृश्य में संवाद के माध्यम से यह संकेत दिया गया है कि अर्जुन या उसके दोस्तों का कोई बुरा अंजाम होने वाला है, इसलिए 'अम्ब्रेला सीक्वेंस' के लिए दर्शकों को आने वाले 'दुख' के लिए तैयार करना आवश्यक था। इस माहौल को बनाने का एकमात्र तरीका उस दृश्य को फिर से बनाना था जिसे मैंने सहायक निर्देशक के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान कई बार देखा था, और साथ ही एक व्यक्तिगत अनुभव भी था जो मैंने शूटिंग से ठीक एक सप्ताह पहले झेला था।

राज साहब पुणे जाते समय डेक्कन क्वीन ट्रेन का इस्तेमाल करते थे। मैं ट्रेन छूटने से एक घंटा पहले वीटी स्टेशन पहुँच जाता था ताकि स्टेशन से थोड़ी दूर स्थित मशहूर ढाबे पंचम पुरी हाउस में नाश्ता कर सकूँ। शाम करीब 4:45 बजे, स्टेशन की ओर जाने वाले दफ्तर के कर्मचारी एक साथ सड़क पर उतर आते थे और मानसून में तो पूरी सड़क पर काले छातों का सैलाब छा जाता था। यह नज़ारा मुझे हमेशा के लिए मोहित कर गया। यह दृश्य तबाही का माहौल बना देता था। इस दृश्य को और भी यादगार बनाने के लिए, छातों के इस सैलाब के साथ एक खौफनाक मंजर भी जुड़ जाता था जो मेरी आँखों के सामने घटी थी। मैं सुबह करीब चार बजे एक शादी से लौट रहा था जब मैंने लिंकिंग रोड पर सात-आठ लोगों को तलवारें ताने एक आदमी का पीछा करते देखा। चीखता हुआ वह आदमी रात भर खड़ी गाड़ियों के दरवाजे खोलकर खुद को बचाने की कोशिश कर रहा था, लेकिन बदकिस्मती से वह फिसलकर गिर गया और हमलावरों ने उसे घेर लिया। उस समय, मैं जल्दी से गाड़ी चलाकर वहां से चला गया, लेकिन यह स्पष्ट था कि पीड़ित अपने भाग्य से भाग नहीं सकता था।

मैंने सिनेमैटोग्राफर बाबा आज़मी से इस दृश्य पर चर्चा की और उन्हें बताया कि पूरी गली काले रंग के सागर जैसी दिखेगी और केवल छतरियाँ ही नज़र आएंगी क्योंकि हम ज़्यादातर ऊपर से ही शूटिंग करेंगे। काले रंग के बीच से, केवल चांदी की तरह चमकती तलवारें ही दिखाई देंगी, जो काली छतरियों के ऊपर होंगी, जिससे एक और भी भयावह वातावरण बनेगा। इस भयावहता को और बढ़ाने के लिए, बाबा चाहते थे कि आसमान बादलों से घिरा हो ताकि बारिश ज़्यादा स्वाभाविक लगे। हमने 1,000 जूनियर कलाकारों को बुलाया और हर एक कलाकार के दोनों हाथों में दो-दो छतरियाँ होंगी, जिससे दृश्य की भव्यता कई गुना बढ़ जाएगी। आखिरकार, हमें सही माहौल मिल गया क्योंकि शिकार मोहन ही एकमात्र इंसान था जो छतरियों के बीच से अपना रास्ता बनाते हुए दिखाई दिया और अंत में उसकी दर्दनाक मौत हो गई।

इस दृश्य को यादगार बनाने में आर.डी. बर्मन द्वारा रचित पृष्ठभूमि संगीत का सबसे बड़ा योगदान रहा। शुरुआत में, आर.डी. बर्मन द्वारा रिकॉर्ड किया गया पृष्ठभूमि संगीत उनकी अपनी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरा। उनका मानना था, 'यह पृष्ठभूमि संगीत इस शानदार दृश्य को फीका बना रहा है, जबकि इसे दृश्य अनुभव को और भी बेहतर बनाना चाहिए।' लगभग दो घंटे का विराम रहा और परेशान आर.डी. बर्मन रिकॉर्डिंग स्टूडियो में इधर-उधर घूमते रहे, मानो किसी पुरुष को अपनी पत्नी के प्रसव के समय इतनी चिंता हो रही हो। अचानक उन्होंने रिकॉर्ड किए गए संगीत को दोबारा चलाने का अनुरोध किया और उस पर कुछ अमूर्त संगीतमय धुनें गाईं! आज भी लोग इस क्रांतिकारी पृष्ठभूमि संगीत को याद करते हैं।

उस समय और आज भी दर्शक अर्जुन को एक 'एक्शन' फिल्म मानते हैं। लेकिन वे गलत हैं! फिल्म में एक्शन बहुत कम था; ड्रामा ही कहानी की रीढ़ था। अर्जुन जिन परिस्थितियों में रहता था, उनके कारण दबी हुई हिंसा से उपजा ड्रामा ही दर्शकों को यह विश्वास दिलाने में कामयाब रहा कि उन्होंने एक एक्शन फिल्म देखी है। राज साहब ने फिल्म देखने के बाद टिप्पणी की थी, 'किरदारों का चित्रण और अभूतपूर्व दृश्य प्रस्तुति ही इस फिल्म की सबसे बड़ी खूबी है।'

‘ममैया या केरो केरो केरो मामा’ गाना, हालांकि किसी और स्क्रिप्ट के लिए रिकॉर्ड किया गया था, लेकिन अर्जुन के परिवेश के अनुरूप डब करना पड़ा। मैं इस गाने को स्क्रिप्ट की सीमाओं के भीतर रखते हुए एक अनोखे दृश्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए दृढ़ संकल्पित था। स्क्रिप्ट की स्वाभाविक प्रगति के लिए एक एक्शन सीन की आवश्यकता थी, लेकिन मैं गाने में ही एक्शन शामिल करना चाहता था। गाने के निर्माण की प्रेरणा मुझे रॉबर्ट वाइज द्वारा निर्देशित और जेरोम रॉबिन्स द्वारा कोरियोग्राफ/सह-निर्देशित उत्कृष्ट कृति ‘वेस्ट साइड स्टोरी’ से मिली। गाने की शुरुआत कूपरेज फुटबॉल स्टेडियम में फिल्माए गए एक छोटे से एक्शन सीक्वेंस से हुई और फिर चेंबूर के एक पार्क, एक बेस्ट डिपो और बांद्रा के लिंकिंग रोड पर वास्तविक भीड़ के साथ फिल्माया गया। इस गाने की शूटिंग एक रोमांचक अनुभव था।

मुंबई के मध्य में स्थित फ्लोरा फाउंटेन वह स्थान था जिसे मैंने उस दृश्य की शूटिंग के लिए चुना जिसमें अर्जुन मोहन के हत्यारे का पीछा करता है। दोपहर के भोजन के समय, इस क्षेत्र में भीड़ बहुत अधिक होती है और यह मुंबई के लोगों की विविधता को सही मायने में दर्शाती है। मैंने जानबूझकर शूटिंग का समय चुना, क्योंकि उस समय सबसे अधिक भीड़ होती है और दोपहर के भोजन के बाद की भीड़ के कारण यातायात भी धीमा होता है। यह दृश्य एक तरह से लॉजिस्टिक्स के लिहाज़ से बहुत मुश्किल लग रहा था क्योंकि हम न तो जूनियर कलाकारों का उपयोग कर सकते थे और न ही यातायात को नियंत्रित कर सकते थे, जो सही माहौल बनाने के लिए आवश्यक था, और सबसे बड़ी बात यह थी कि पुलिस ने हमें उस समय भीड़ और यातायात को रोकने की अनुमति कभी नहीं दी।

मैंने प्रोड्यूसर्स और पूरी टीम को बुलाया और कहा, ‘यह एक “गुरिल्ला” शूट होने वाला है। हम दोपहर एक बजे छिपे हुए कैमरों से शूटिंग करेंगे और किसी को भी यह एहसास नहीं होना चाहिए कि वे एक काल्पनिक पीछा देख रहे हैं जिसके अंत में एक आदमी की पिटाई होती है। राहगीरों की स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ डर से लेकर विस्मय, उत्साह और यहाँ तक कि क्रूर आनंद तक होंगी। पता नहीं क्यों, भीड़ को किसी की भी पिटाई देखना अच्छा लगता है, बशर्ते कि वह खुद न हो! उनकी प्रतिक्रियाओं और हरकतों की प्रामाणिकता बेजोड़ होगी। लेकिन यह मत भूलिए कि हम मुंबई के लोगों को एक ऐसी चीज़ पर विश्वास दिला रहे हैं जो

अवास्तविक है और उन्हें यह समझने में ज़्यादा से ज़्यादा डेढ़ मिनट का समय लगेगा कि यह वास्तव में एक शूटिंग है, जिसके बाद उनकी सभी प्रतिक्रियाएँ बदल जाएँगी।'

हम सबने सर्वसम्मति से इस चुनौती को स्वीकार करने का फैसला किया। शूटिंग वाले दिन, हमें सात कैमरे और सात कैमरामैन मिले। निर्माताओं ने इलाके के छह अलग-अलग स्थानों पर स्थित छह अलग-अलग कार्यालयों से बात की थी, और उन्होंने हमें अपने परिसर में शूटिंग करने की अनुमति देकर हम पर बहुत कृपा की। उन्होंने हमें सुबह 4 बजे भी अपने कार्यालयों में आने दिया ताकि हम सेटअप कर सकें और शॉट्स का अभ्यास कर सकें। एक कैमरा एक वैन में छिपाकर एक ऐसी सुविधाजनक जगह पर खड़ा किया गया था जहाँ से हम एक्शन के नज़दीकी शॉट्स ले सकें।

कैमरामैनों को बताया गया था कि हम आपस में कोई बातचीत नहीं करेंगे, इसलिए दोपहर 1 बजे, वे सनी और खलनायक को नीले और सफेद धारीदार फिएट कार से उतरते हुए देखेंगे, और यही सभी कैमरों के चालू होने का संकेत होगा। 'आप लोगों को जितना हो सके उतना फुटेज कैप्चर करना है। आप ज़ूम इन कर सकते हैं, ज़ूम आउट कर सकते हैं, कैमरा उठा सकते हैं, उसे दाएं या बाएं घुमा सकते हैं, यह सब आप लोगों को तय करना है। जैसे ही आपको लगे कि लोगों को पता चल गया है कि गोलीबारी हो रही है, पुलिस की वर्दी में चार जूनियर कलाकार तुरंत वैन से बाहर निकलेंगे, सनी और खलनायक को पकड़ेंगे और उन्हें ले जाएंगे।' हमने सुबह 4 बजे से 5 बजे तक सेटअप और रिहर्सल की और फिर स्वादिष्ट नाश्ता करने चले गए। हम लगभग 12:30 बजे फिर से इकट्ठा हुए और सभी कैमरामैन अपनी-अपनी जगहों पर चले गए। मैं प्रतिष्ठित पाइर्क्स रेस्तरां के मेजेनाइन फ्लोर पर बैठा था, जहाँ से मुझे सभी गतिविधियों का विहंगम दृश्य दिखाई दे रहा था, लेकिन मुझे इस बात का अंदाजा नहीं था कि विभिन्न कैमरों में इसे कैसे कैद किया जा रहा था।

शूटिंग खत्म हुई और सभी कैमरामैन पिरकेस आ गए। वे बड़े उत्साह से बता रहे थे कि उन्होंने एक्शन को कैसे फिल्माया था और मैं मन ही मन प्रार्थना कर रहा था कि मेरे पास सीक्वेंस को जोड़ने के लिए पर्याप्त मात्रा में उपयोगी सामग्री हो।

हम अर्जुन का फाइनल कट देख रहे थे और तभी मेरे दिमाग में एक विचार आया, लेकिन बाकी सब लोगों का रिएक्शन यही था कि इस फिल्म की शूटिंग के तनाव के कारण मेरा

दिमाग खराब हो गया है! मैंने गंभीरता से कहा, 'फिल्म की कहानी में डिंपल का कोई रचनात्मक योगदान नहीं है और फिल्म उन दो गानों के बिना भी बहुत अच्छा कर सकती है जिनमें वह नज़र आती हैं। इसलिए, मैं फिल्म से उनका गाना हटा रहा हूं और अर्जुन एक ऐसी अनोखी फिल्म होगी जिसमें कोई हीरोइन नहीं है।'

पूर्वावलोकन थिएटर में अफरा-तफरी मच गई।

लोगों की प्रतिक्रियाएं अलग-अलग थीं, कुछ का कहना था, 'राहुल पागल हो गया है!' तो कुछ का कहना था, 'फिल्म में हीरोइन कैसे नहीं हो सकती?!'

फिल्म 18 मिनट छोटी हो जाएगी, यानी दो रील कम हो जाएंगी। जब दर्शक सेंसर सर्टिफिकेट में कम रीलें देखेंगे, तो वे हंगामा करेंगे कि हम उन्हें धोखा दे रहे हैं और उन्हें उनकी टिकट के पैसे से कम दिखा रहे हैं!

अंततः मुझे अनिच्छा से निर्माताओं की मांगों को मानना पड़ा, हालांकि मैं अब भी इस बात पर कायम हूं कि फिल्म में आवश्यकता से अधिक सामग्री दिखाना 'फिल्म के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक' है।

मुझे पूरा विश्वास है कि इस तरह के कदम से आर्थिक लाभ के मामले में जरा सा भी फर्क नहीं पड़ता।

जब अर्जुन फिल्म पूरी हो गई और फाइनल प्रिंट तैयार हो गया, तो मैं उसे आरके के पास ले गया ताकि वह राज साहब को फिल्म दिखा सके। इंटरवल के दौरान, डब्बू साहब ने कहा, 'फ्लोरा फाउंटेन पर फिल्माया गया दृश्य बेहद खूबसूरत है, इतनी भीड़ के बीच आपने इसे कैसे फिल्माया?'

मैंने उन्हें बताया कि हमने कैमरे कैसे लगाए और सुबह-सुबह रिहर्सल कैसे की। उन्होंने पूछा, 'आपने कितने कैमरे इस्तेमाल किए?'

मैंने उत्तर दिया, 'सात।'

राज साहब ने तुरंत पलटवार करते हुए कहा, 'अगर आपने सात कैमरे इस्तेमाल किए थे तो सिर्फ छह एंगल ही क्यों थे, सात क्यों नहीं? सातवां एंगल कहां था?'

उनकी बात सुनकर मुझे गहरा सदमा लगा। एडिटिंग के बाद, सीक्वेंस में 127 कट थे। अलग-अलग एंगल, ज़ूम इन, ज़ूम आउट, कैमरे को बाएँ-दाएँ घुमाना, और फिर इस आदमी ने

पलटकर पूछा, 'सातवाँ एंगल कहाँ था?' इस प्रतिभाशाली व्यक्ति ने कैसे पता लगाया कि केवल छह एंगल थे, सात नहीं? वैन के अंदर लगा कैमरा खराब हो गया था और इस्तेमाल करने लायक कोई फुटेज नहीं थी। तो, वही एकमात्र व्यक्ति थे जिन्होंने सही-सही यह बात पकड़ी कि केवल छह कैमरों का इस्तेमाल किया गया था! जब जावेद साहब ने इसके बारे में सुना, तो उनकी एक ही प्रतिक्रिया थी, 'मुझे इस पर विश्वास नहीं हो रहा!'

आज तक मैं इस घटना को भुला नहीं पाया हूं और काश सिनेमा के बारे में मेरी समझ भी उनके जैसी ही होती।

अंतराल के बाद, जब यह पता चलता है कि अर्जुन शिव कुमार चौगुले द्वारा खेले जा रहे शतरंज के खेल में सिर्फ एक मोहरा था, तो राज साहब खड़े होकर ताली बजाने लगे और उत्साह से बोले, 'फिल्म रोक दीजिए! कहानी में ऐसा मोड़ आया है जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। सिनेमा में मैंने अब तक जितने भी आश्चर्य देखे हैं, उनमें से यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। चलिए फिल्म खत्म करते हैं और फिर मैं इसे तुरंत दोबारा देखना चाहूंगा।'

दूसरी स्क्रीनिंग खत्म होने के बाद उन्होंने कहा, 'मुझे आपका वो तरीका बहुत पसंद आया जिससे आपने दर्शकों को ये एहसास दिलाया कि वे एक अपरंपरागत फिल्म देखने जा रहे हैं, क्योंकि टाइटल चलते समय कोई आवाज़ नहीं है। टाइटल के दौरान ये खामोशी ही इस फिल्म की शुरुआत से ही सबसे बड़ा शोर पैदा करती है!'

मैंने राज साहब को बताया कि मुझे बस इस बात का अफसोस है कि मैं डिंपल का गाना फिल्म से नहीं हटा सका क्योंकि उसका कोई योगदान नहीं था, लेकिन निर्माता भड़क गए। उन्होंने कहा, 'शायद उन्हें लगता है कि क्रांतिकारी फिल्म बनाने की तुम्हारी कोशिश ने तुम्हारा दिमाग खराब कर दिया है। काश, उनका दिमाग खराब हो गया होता!'

फिल्म रिलीज हुई और दर्शकों व प्रेस से खूब सराहना मिली। टाइम्स ऑफ इंडिया के फिल्म समीक्षक ने अपनी समीक्षा में लिखा कि निर्देशक ने सही माहौल बनाने में जो ध्यान दिया था, वह सराहनीय था। उन्होंने क्लाइमेक्स के एक दृश्य का जिक्र किया, जिसमें अर्जुन शिव कुमार चौगुले के विशाल चुनावी पोस्टर वाली दीवार के सामने फंसा हुआ है; नेता के गुंडों ने उसे घेर लिया है और उसके पास भागने का कोई रास्ता नहीं है। समीक्षक ने आगे कहा कि ठीक उसी क्षण, एक चूहा फ्रेम में दौड़ता हुआ दिखाई देता है, जिससे अर्जुन को गुंडों का घेरा तोड़कर

भागने की प्रेरणा मिलती है। समीक्षक के अनुसार, यह निर्देशक द्वारा रचा गया एक निर्णायक क्षण था। मैं निर्देशक था और मैंने वह चूहा कभी नहीं देखा था जो समीक्षक ने देखा था। मैं क्लाइमेक्स देखने के लिए सिनेमा हॉल वापस गया और मेरा ध्यान सिर्फ उस पल पर था जब वह चूहा फ्रेम में दिखाई देगा। जब वह चूहा दिखाई दिया, तो मैंने उसे पहली बार देखा! सामान्य परिस्थितियों में, अगर शूटिंग के दौरान मुझे चूहा दिख जाता, तो शायद मैं शॉट दोबारा लेता क्योंकि इससे दर्शकों को परेशानी हो सकती थी, लेकिन यहाँ मैं ऐसी स्थिति में था जहाँ मुझे एक ऐसे सिनेमाई पल को रचने के लिए प्रशंसा मिल रही थी जिसके बारे में मैंने सोचा भी नहीं था। राज साहब कहा करते थे, 'फिल्म बनाते समय कुछ ऐसे अनचाहे पल आ जाते हैं जो दृश्य प्रस्तुति को और भी प्रभावशाली बना देते हैं। एक बात हमेशा याद रखना, कि भले ही इसका तुम्हारी रचनात्मकता से कोई लेना-देना न हो, फिर भी उस खास सिनेमाई पल को साकार करने के लिए तुमने जो सोच-विचार और मेहनत की है, उसका श्रेय हमेशा लेना।' और मैंने वही किया!

डीएसीएआईटी

अर्जुन की शूटिंग के दौरान, मैंने एक और फिल्म, समुंदर, करने का वादा किया था। फिल्म की शूटिंग मालदीव द्वीप समूह की खूबसूरत और मनोरम जगहों पर हो रही थी, जो भारतीयों के लिए एक तरह से अनजानी जगह थी। एक दिन, शूटिंग के लंबे दौर के दौरान, मैंने निर्माता को प्रोडक्शन मैनेजर से फोन पर बात करते सुना, 'आज माले में क्या सस्ता है, मछली या चिकन? दोपहर के भोजन के लिए, दोनों में से जो सबसे सस्ता हो, वह और साथ ही सबसे सस्ती सब्जी ले आओ।' यह बातचीत सुनकर मुझे बहुत बुरा लगा और निर्माताओं की कंजूसी कई मौकों पर सामने आती रही। उन्हें फिल्म की गुणवत्ता की कोई परवाह नहीं थी, उन्हें सिर्फ पैसा कमाने में दिलचस्पी थी। मुंबई लौटते ही, मैंने निर्देशक के रूप में अपनी सेवाएं वापस लेने का मन बना लिया था, लेकिन मुझे फिल्म के लिए बहुत बड़ी फीस मिल रही थी, इसलिए मैंने इसे पूरा करने और अपना सारा बकाया लेने का फैसला किया। अब पीछे मुड़कर देखता हूं तो मुझे एहसास होता है कि यह मेरी तरफ से एक बहुत बड़ी गलती थी; पैसे ने रचनात्मकता पर हावी हो गया था!

मैंने राज साहब से अपने मानसिक संघर्ष के बारे में बात की और उन्होंने मुझे समझाया, 'राहुल, तुमने पहले 'लव स्टोरी' से अपना नाम वापस ले लिया था और अब तुम वही कदम उठाना चाहते हो। तुम लोगों के बीच हंसी का पात्र बन जाओगे। तुमने मुझसे यह भी कबूल किया है कि तुम आधे मन से शूटिंग कर रहे थे, मैं इसके लिए तुमसे नफरत करता हूं और पैसे के लिए अपने काम के साथ अन्याय करने के लिए तुम्हें कभी माफ नहीं कर सकता। मुझे बहुत गर्व था लेकिन अब यह कहते हुए शर्म आती है कि तुम कभी मेरे सहायक थे। याद रखो कि 'लव स्टोरी' की सफलता का सारा श्रेय तुम्हें मिला था और 'समुंदर' की सारी बदनामी भी तुम्हारे कंधों पर आएगी, और अगर तुम रचनात्मक साख से खुद को अलग कर लेते हो, तो यह सबसे अपमानजनक काम होगा।'

उनकी बातों से मैं पूरी तरह हिल गया था और उन्होंने आगे कहा, ‘इसका एकमात्र उपाय यही है कि आप एक ऐसी कहानी पर आधारित फिल्म की शूटिंग शुरू करें जो आपको उत्साहित करे और उसमें अपना पूरा दिल लगा दें। मेरी कामना है कि आपकी बनाई फिल्म भारतीय

सिनेमा की एक उल्लेखनीय कृति मानी जाए। मुझे गर्व महसूस कराएं कि मेरे सहायक निर्देशक ने अपनी योग्यता साबित कर दी है।'

इस उत्साहवर्धक भाषण से प्रेरित होकर, मैं जावेद साहब से मिलने गया और उनसे कहा, 'सर, मुझे एक ऐसी कहानी चाहिए जो समुंदर में मेरे द्वारा किए गए सभी पापों को धो दे और मुझे पुनर्जीवित करे।'

जावेद साहब ने मुझे डकैत की कहानी सुनाई और मैं पूरी तरह से मंत्रमुग्ध हो गया। डकैतों पर कई फिल्में बन चुकी थीं, लेकिन यहाँ जावेद साहब एक डकैत के मानवीय पहलू को दर्शाना चाहते थे। उन्होंने कहा कि उनके डकैत को वैसे नहीं दिखाया जाएगा जैसे आमतौर पर हमारी फिल्मों में दिखाया जाता है। डकैत न तो पगड़ी पहनेगा, न धोती-कुर्ता, न माथे पर कोई बड़ा लाल टीका होगा और न ही वह डरावना दिखने के लिए हमेशा गुस्से में घूरता रहेगा। वह आम लोगों की तरह जींस और कमीज पहने होगा। फिल्म में ऐसा कोई दृश्य नहीं होगा जिसमें डकैत अपने गिरोह के साथ किसी त्योहार के दिन देवी मां के मंदिर जाता है, जहाँ पुलिस उसके लिए जाल बिछाती है और वह बच निकलता है!

मैं राज साहब से सलाह लेने चेंबूर गया था और कहानी सुनने के बाद उन्होंने कहा, 'मुझे मानना पड़ेगा कि कहानी सुनाते समय तुम्हारी आँखों में जो जुनून था, उसने तुम्हारे अंदर एक नई लगन जगा दी। मुझे पूरा यकीन है कि यही लगन उस 'यादगार फिल्म' में बदलेगी जिसकी मुझे तुमसे उम्मीद है। मैं तुम्हें एक सलाह देना चाहता हूँ। चूंकि तुमने तय किया है कि तुम्हारे डकैत को एक इंसान के रूप में दिखाया जाना चाहिए, इसलिए यह ज़रूरी है कि उसका परिवेश भी वास्तविक हो। हम सब जानते हैं कि मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान की त्रिकोणीय सीमाओं के बीच चंबल नदी के किनारे की घाटियों में डकैत पनपते हैं। तुम्हें उस इलाके का दौरा करना चाहिए और मुझे यकीन है कि वहाँ का नज़ारा देखने से तुम्हारा और जावेद का दिमाग़ और भी उपजाऊ हो जाएगा और पटकथा लिखने में मदद मिलेगी। दरअसल, ग्वालियर जेल जाओ और डकैतों की जीवनशैली के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी के लिए फूलन देवी से मिलो।'

जावेद साहब चंबल इलाके में रेकी करने और मशहूर महिला डकैत फूलन देवी से मिलने के लिए बहुत उत्साहित थे। मैं विट्ठलभाई पटेल साहब को अच्छी तरह जानता था, क्योंकि वे 'झूठ

बोले कौवा काटे' गीत के गीतकार थे और मध्य प्रदेश विधानसभा में राज्य मंत्री भी रह चुके थे। हालांकि मैं उन्हें खुद जानता था, फिर भी मैं राज साहब की मदद लेना चाहता था, जिन्होंने मेरे कहने पर विट्ठलभाई साहब से मेरी रेकी और उसके बाद शूटिंग की सुविधा बढ़ाने का अनुरोध किया। राज साहब की सिफारिश पर विट्ठलभाई साहब खुद हमारे साथ चंबल इलाके गए, और इससे हमारे लिए सारे रास्ते खुल गए।

ग्वालियर केंद्रीय जेल में एकमात्र जीवित महिला डकैत फूलन देवी के साथ हमारी दो दिवसीय मुलाकात यादगार रही और हमने 83 कुख्यात आत्मसमर्पण करने वाले डकैतों के साथ एक शाम भोजन भी किया! सभी 83 डकैतों को खुली जेल में रखा गया था, केवल फूलन देवी को ही बाकी डकैतों से अलग एक कोठरी मिली थी। उन्होंने एक याचिका दायर कर मांग की थी कि उनके साथ भेदभाव न किया जाए और उन्हें उनके समुदाय के साथ खुली जेल में रखा जाए। उन्हें अलग रखने वाले अधिकारियों का मानना था कि केवल पुरुषों वाली खुली जेल में रहने से हिंसा, छेड़छाड़ और संभवतः बलात्कार जैसी गंभीर समस्याएं हो सकती हैं। उन्होंने जेलर से कहा था कि चूंकि उन्होंने हिंसा से भरा जीवन जिया है, इसलिए वह सुरक्षा की छत्रछाया में रहने की बजाय हिंसा के साये में रहना ज्यादा पसंद करेंगी।

फूलन देवी कद में छोटी और दुबली-पतली थीं, जो मेरी उनके बारे में बनी धारणा से बिल्कुल विपरीत थी। हमारी बातचीत के दौरान, उनका कठोर और बेबाक व्यक्तित्व कभी भावुक हो जाता था, और कभी-कभी उनकी आँखों में आँसू आ जाते थे, और उन्हें सुनते हुए मेरी आँखों में भी।

उसने डाकू बनने से पहले और बाद के अपने जीवन के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी। वह घाटियों से भली-भांति परिचित थी और भिंड-मोरेना (डाकुओं के गिरोहों का केंद्र) के आसपास की घाटियों के नक्शे पर उसने स्क्रिप्ट के अनुसार सटीक स्थानों को चिह्नित किया और उन स्थानों तक पहुँचने के लिए आवश्यक व्यवस्था का भी विवरण दिया।

उस महिला ने हर वाक्य में बेहद गंदी भाषा का इस्तेमाल किया और मंत्री और मध्य प्रदेश पुलिस के उच्च अधिकारियों की मौजूदगी के बावजूद बेशर्मी से बोलती रही। मैंने उससे डाकुओं द्वारा गोला-बारूद के भंडार हासिल करने के बारे में पूछा, तो उसने पुलिस महानिरीक्षक की ओर मुड़कर पूछा, 'बहनचोद, बताऊं क्या इनको?' चारों ओर हंसी गूंज

उठी, सिवाय जावेद साहब और मुझे लगे सदमे के। मंत्री ने जवाब दिया, 'जो बताना है, सच-सच बताओ, कोई भी यहां तुम पर कार्रवाई नहीं करेगा।'
उसने पुलिस उपाधीक्षक की ओर तेज़ी से मुड़कर तीखा जवाब दिया, 'ये मादरचोद दीप्ति एसपी बेचता था!'
फूलन देवी से ज्ञानवर्धक मुलाकात के बाद हम भिंड-मोरेना गए ताकि वहां की घाटियों को देख सकें और जितना हो सके उतनी जानकारी जुटा सकें। हमारी मुलाकात स्थानीय पुलिस अधीक्षक से हुई, जो कस्बे के केंद्र में अपने परिवार के साथ भीड़ से घिरे हुए फोटो खिंचवा रहे थे और अपने हाथों में दो डाकुओं के सिर पकड़े हुए थे। उनका दावा था कि एक भीषण मुठभेड़ में उन्होंने इन डाकुओं को मार गिराया था। उनके ही एक इंस्पेक्टर ने हमें बताया कि उनके द्वारा गोली मारकर मारे गए दोनों लोग डाकू नहीं बल्कि गरीब ग्रामीण थे। उन्हें 'डाकू' करार दिया गया और फोटो खिंचवाने का इंतजाम इसलिए किया गया ताकि आने वाले फिल्म निर्देशक और लेखक उनकी बहादुरी को देख सकें। हमारी मुलाकात एक स्कूल शिक्षक से भी हुई, जो डाकुओं से संपर्क का मुख्य सूत्र था और उनके और भ्रष्ट पुलिसकर्मियों के बीच संदेश पहुंचाता था।
भिंड-मोरेना में बिताए पाँच दिनों के दौरान, जैसे-जैसे हमें और जानकारी मिलती गई, जावेद साहब ने विचित्र और बेतुके तथ्यों को पटकथा में पिरो दिया। मेरा अनुमान था कि हम भिंड-मोरेना में लगभग साठ दिनों तक शूटिंग करेंगे और विट्ठलभाई सर के सहयोग के बिना व्यवस्था करना लगभग असंभव होता। उन्होंने अभिनेताओं और तकनीशियनों की सुरक्षा, 150 लोगों की एक यूनिट के लिए आवास की व्यवस्था की, एक सीक्वेंस में तीन दिनों तक 2,000 पुलिसकर्मियों को शामिल किया और हमें बंदूकें, गोला-बारूद, विस्फोटक और घोड़े उपलब्ध कराने में मदद की।
खड्डों में शूटिंग करना वाकई एक चुनौती थी। चंबल नदी अपना रास्ता लगातार बदलती रहती है और खड्डों की स्थिति भी अपने आप बदलती रहती है। ये खड्ड ढीली मिट्टी की छोटी-छोटी पहाड़ियों के बीच बने जाल की तरह होते हैं, जो कभी-कभी रातोंरात किसी खास इलाके की स्थलाकृति को बदल देते हैं। हमें उस रास्ते के दृश्य चिह्न बनाने की ज़रूरत थी जो हमें शूटिंग स्थल से उस आधार तक ले जाता था जहाँ गाड़ियाँ खड़ी थीं।

डाकू सिर्फ पैदल ही चलते थे क्योंकि घोड़ों पर सवार होने से वे सुरक्षा बलों के लिए आसान निशाना बन जाते, जो लगभग हर दिन उनका पीछा कर रहे थे। हमने घोड़ों का इस्तेमाल सिर्फ एक दृश्य में किया, जिसमें चावली को पुलिस के हाथों से डकैतों द्वारा छीन लिया जाता है। यह दृश्य घोड़ों पर सवार डकैतों द्वारा पुलिस जीप का पीछा करने के कारण अधिक नाटकीय लगा। इसके अलावा, अधिकांश दृश्यों में घोड़ों का उपयोग नहीं किया गया। पुलिस उप महानिरीक्षक ने हमें बताया कि कई बार ऐसा होता था कि डकैतों का पीछा करते हुए वे घाटियों में पैदल चल रहे होते थे और दुश्मन भी उन्हीं रास्तों और दिशाओं में पहाड़ियों के बीच से गुजर रहे होते थे।

लगभग छह दिनों की शूटिंग के बाद, मुझे एहसास हुआ कि कुछ कमी है, एक ऐसा विचार जो शूटिंग के दूसरे दिन से ही मुझे परेशान कर रहा था। समस्या का एहसास मुझे तब हुआ जब मैं रास्ता भटक गया और यूनिट को ढूंढने के लिए एक छोटी पहाड़ी पर चढ़ गया। पहाड़ी की चोटी पर खड़े होकर, आस-पास कोई भी नज़र नहीं आ रहा था, तब मुझे एहसास हुआ कि घाटियों द्वारा निर्मित भूलभुलैया का रोमांच मेरे दृश्य वर्णन में गायब था। राज साहब हमेशा कहते थे, 'अगर कोई स्थान कहानी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, तो उस स्थान को अपनी फिल्म के मुख्य किरदार की तरह मानें और दर्शकों को कभी भी किसी महत्वपूर्ण किरदार की कमी महसूस न होने दें, क्योंकि इससे फिल्म से जुड़ाव टूट जाएगा।'

मैंने छह दिनों की शूटिंग रद्द कर दी और पुलिस सुरक्षा बल की संख्या 100 से बढ़ाकर 400 कर दी ताकि भीड़ को काफी दूर रखा जा सके, जिससे मुझे खाइयों का विशाल और अबाधित दृश्य देखने को मिला। इस्तेमाल किए गए लेंस, कैमरे की गति और अभिनेताओं की स्थिति ने दर्शकों को हमेशा खाइयों के घेरे में रखा, जो एक डाकू के जीवन का एक प्रमुख पहलू है।

लगभग 40 दिनों की शूटिंग के बाद, हमें भिंड-मोरेना क्षेत्र छोड़ना पड़ा क्योंकि तापमान 45 डिग्री से ऊपर पहुँचने लगा था, जिससे काम करना असंभव हो गया था। हम मुंबई लौट आए और तुरंत गाँव, पुलिस स्टेशन और हवेली के सेट बनाने का काम शुरू कर दिया। उन्हें वास्तविक दिखाने के लिए, हमने सेट बनाने में लकड़ी का इस्तेमाल नहीं किया, बल्कि ईंट और सीमेंट से खुले में ही सेट तैयार किए।

सेट तैयार होने के दौरान मुझे जो समय मिला, उसका उपयोग मैंने समुंदर को पूरा करने के लिए किया। (जब तक यह फिल्म रिलीज़ हुई, डकैत की शूटिंग ने काफी चर्चा बटोर ली थी और समुंदर की रिलीज़ फीकी पड़ गई थी, लेकिन फिल्म के परिणाम के लिए मैं अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला नहीं झाड़ सकता।)

डकैत का सबसे निर्णायक क्षण वह दृश्य था जिसमें ठाकुर और उसके गुर्गे सनी के गांव पर हमला करते हैं, जबकि सनी की बहन की शादी का जश्न चल रहा होता है। यह हमला एक नरसंहार में तब्दील हो जाता है और 30 से 35 लोग बेरहमी से मारे जाते हैं। सनी और उसके बड़े भाई को एक पेड़ से बांध दिया जाता है। ठाकुर सनी की मां को बुलवाता है और उसके बच्चों और गांव वालों के सामने उसे अपमानित करने का फैसला करता है। वह उसकी चोटी ऊपर उठाता है, उसके बाल काटने और उसकी बेइज्जती को ठेस पहुंचाने के इरादे से। इस दृश्य के लिए ठाकुर का क्रूर आनंद, चोटी और मां का अपमान देखकर सदमा, ये तीन तत्व बेहद ज़रूरी थे। इस क्षण ने मुझे राज साहब की पैन-फोकस शॉट तकनीक का इस्तेमाल करने का मौका दिया, क्योंकि इससे नाटक का सार सबसे अच्छे से व्यक्त होता है।

75 मिमी फोकल लेंथ वाला लेंस, जिसका उपयोग आमतौर पर (लेकिन हमेशा नहीं) क्लोज-अप शॉट्स के लिए किया जाता है, यहाँ तीन शॉट के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था और इसके लिए तीनों तत्वों का शार्प फोकस में होना ज़रूरी था। यह एक रात का दृश्य था और शॉट के लिए एक्सपोज़र को f4 से f16 तक बढ़ाना पड़ा, जिससे रोशनी पाँच गुना बढ़ गई। लाइटिंग में लगभग पाँच घंटे लगे और जब उन्हें चालू किया गया तो उनसे निकलने वाली गर्मी असहनीय हो गई, लेकिन अभिनेताओं, राखी और रज़ा मुराद की तारीफ़ करनी होगी कि उन्होंने जलती हुई गर्मी को सीधे अपने चेहरे पर सहन किया क्योंकि उनके लिए शॉट का प्रभाव अत्यंत महत्वपूर्ण था। इस नाटकीय शॉट के बाद, कटे बालों वाली माँ ढोल की थाप पर नाचने लगी।

इस दिल दहला देने वाले पल ने न सिर्फ आंसू बहाए, बल्कि दर्शकों को भी फूट-फूटकर रोने पर मजबूर कर दिया। प्रीव्यू देखते समय कमल हासन भी फूट-फूटकर रो रहे थे और एक महिला तो बेहोश ही हो गई। फिल्म के अंत में दो तरह की प्रतिक्रियाएं देखने को मिलीं। एक

तरफ फिल्म को स्टैंडिंग ओवेशन मिला, वहीं दूसरी तरफ लोग प्रीव्यू से बाहर निकलते समय भी फूट-फूटकर रो रहे थे।

On seeing the film, Anand Bakshi ji told me, 'Rahul yaar, Raza Murad ke marne ka tarika accha nahin tha. Sunny ko usko haveli se nikal ke, uske baal mundne chahiye the, usse dance karana chahiye tha aur phir bolna tha, "Dance karo! Naccho haramzade jaise meri maa ko nachaya tha." Aur phir usko goliyon se chhalni kar deta! Aise mujhe bahut satisfaction milta, jo abhi mujhe nahin mil raha hai.'

इस बयान पर मेरी पहली प्रतिक्रिया थी, 'बख्शी जी का दिमाग खराब हो गया है और उन्होंने यह घिनौना सुझाव दिया है। एक तरफ मुझे इस बात पर गर्व है कि मैंने एक ऐसी फिल्म बनाई है जिसका दर्शकों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे सांस रोककर उसकी प्रशंसा करते रहे, और दूसरी तरफ वे चाहते हैं कि मैं फिल्म का अंत एक ठेठ "फिल्मी" क्लाइमेक्स के साथ करूँ!'

राज साहब ने फिल्म देखी और इंटरवल में उन्होंने कहा, 'राखी के बाल काटे जाने वाला यह दृश्य मुझ पर गहरा असर छोड़ रहा है, मेरी सांसें फूल रही हैं और दिल ज़ोर से धड़क रहा है। मुझे थोड़ा आराम चाहिए, फिर हम फिल्म का दूसरा भाग देखेंगे।'

फिल्म खत्म होने पर उन्होंने कहा, 'बहुत बढ़िया, बेहतरीन ढंग से फिल्माई गई, दृश्यों का माहौल और प्रस्तुति शानदार है। मेरी बस यही इच्छा है कि अंत और भी दमदार होता, न कि जैसा अभी है वैसा नीरस। मैं जमींदार का बेरहमी से कत्ल देखना चाहता था। यह फिल्म भारतीय सिनेमा में एक मील का पत्थर मानी जाएगी, मेरी एकमात्र चिंता यह है कि व्यावसायिक सफलता संतोषजनक न हो।'

मुझे याद आया कि बख्शी जी ने भी मुझे ऐसी ही सलाह दी थी जिसे मैंने नज़रअंदाज़ कर दिया था, जबकि राज साहब की बात सुनकर मेरे मन में एक तरह का मानसिक संघर्ष शुरू हो गया था। हालांकि, मेरे 'अति आत्मविश्वास' ने मेरे दिमाग पर पर्दा डाल दिया था; तीन बेहद सफल फिल्में निर्देशित करने के बाद मेरा झूठा अहंकार हावी हो गया था। भला कोई मुझे कैसे कह सकता था कि मैं गलत था?!

लेकिन मैं गलत था और पहली बार मैंने अपने गुरु के सुझाव पर ध्यान नहीं दिया।
मैं आज भी 'डकैत' को अपने करियर की सबसे बड़ी उपलब्धि मानता हूँ, लेकिन बॉक्स ऑफिस पर इसकी असफलता ने मुझे तब भी प्रभावित किया था और आज भी करती है। अगर मुझे शोहरत और भौतिक सुख-सुविधाओं में से किसी एक को चुनने का मौका मिले, तो शायद मैंने सही चुनाव किया, लेकिन साथ ही मुझे इस बात का भी अफसोस है कि मैंने राज साहब की प्रतिक्रिया के बारे में उनसे और बात नहीं की, जिससे मुझे यकीन है कि मुझे एक बेदाग 'मध्य मार्ग' मिल जाता।
मैं खुलकर और ईमानदारी से कहना चाहता हूं कि अहंकार ने उस सबक को ढक दिया जो मेरे लिए आसानी से उपलब्ध था और मुझे इस बात का हमेशा अफसोस रहेगा कि मैंने इसका लाभ नहीं उठाया।

अमरता

2 मई 1988 को, राज कपूर को भारतीय सिनेमा में उनकी सिनेमाई उपलब्धियों के लिए सबसे प्रतिष्ठित पुरस्कार - दादासाहेब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित किया जाना था।
पुरस्कार वितरण समारोह विज्ञान भवन में आयोजित किया गया और इसकी अध्यक्षता भारत के माननीय राष्ट्रपति श्री आर. वेंकटरमन ने की। इसमें भारतीय सिनेमा की कई हस्तियां शामिल हुईं।
गंभीर अस्थमा से पीड़ित राज साहब अपनी पत्नी कृष्णा आंटी के साथ सभागार में दाखिल हुए, जहां उनका खड़े होकर तालियों से स्वागत किया गया। प्रेस रिपोर्टों के अनुसार, वे दृष्टिहीन लग रहे थे, हालांकि उनमें अस्वस्थता के कोई लक्षण नहीं थे।
राष्ट्रपति मंच पर आए और अपना पारंपरिक भाषण दिया, जिसके बाद पुरस्कार वितरण समारोह शुरू हुआ। विभिन्न पुरस्कार दिए जा रहे थे तभी राज साहब को अस्थमा का दौरा पड़ गया। थोड़ी अफरा-तफरी मच गई और तुरंत राष्ट्रपति के चिकित्सक को बुलाया गया। उन्होंने राज साहब को ऑक्सीजन दी, जिससे उनकी हालत में कुछ देर के लिए स्थिरता आ गई। समारोह जारी रहा और जब राज साहब का नाम पुरस्कार लेने के लिए मंच पर आने का ऐलान किया गया, तो उनके चेहरे से ऑक्सीजन का मास्क हटा दिया गया। वे खड़े होने के लिए संघर्ष करते रहे और तनाव सहन न कर पाने के कारण वापस अपनी सीट पर बैठ गए।
माननीय राष्ट्रपति ने एक अभूतपूर्व भाव प्रदर्शित किया। वे राज साहब की ओर बढ़े। दर्शकों ने खड़े होकर उनका जोरदार स्वागत किया और कृष्णा आंटी ने उन्हें खड़े होने में मदद की। राष्ट्रपति ने उन्हें प्रशस्ति पत्र सौंपा और उनके गले में पदक पहनाया। ठीक उसी क्षण, उन्होंने हाथ जोड़कर आभार व्यक्त किया और कोमा में चले गए। सिनेमा के लिए समर्पित इस शख्स के लिए यह एक अत्यंत नाटकीय क्षण था।
उन्हें तुरंत स्ट्रेचर पर लिटाकर राष्ट्रपति की एम्बुलेंस में ले जाया गया और अखिल भारतीय आयुर्वेद विज्ञान संस्थान (AIIMS) में भर्ती कराया गया, जहां एक उच्चस्तरीय चिकित्सा दल ने स्ट्रेचर को गहन चिकित्सा इकाई में पहुंचाया। उस समय किसी को भी यह एहसास नहीं था कि यह अंत की शुरुआत थी।

दूसरे दिन तक, उनके बच्चे और भाई समेत उनका पूरा परिवार उनके पास रहने के लिए दिल्ली पहुँच चुका था। काठमांडू में शूटिंग कर रहे चिंटू तुरंत दिल्ली आ गए। मैं भी उनके इस दुख से उबरने की प्रार्थना करते हुए दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

देश भर से और दुनिया के अन्य हिस्सों से लोग उनके स्वास्थ्य को लेकर बहुत चिंतित थे, लेकिन उनकी सेहत में कोई सुधार नहीं हो रहा था। उनके स्वास्थ्य से जुड़ी खबरें राष्ट्रीय चिंता का विषय बन गईं और नियमित रूप से अपडेट जारी किए जाते रहे। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी और अन्य मंत्रिमंडल मंत्री नियमित रूप से अस्पताल का दौरा करते थे, साथ ही विभिन्न देशों के राजनयिक मिशनों के सदस्य भी आते थे।

फिल्म जगत के कुछ सदस्यों ने भी परिवार से मिलने और अपनी संवेदना व्यक्त करने के लिए यात्रा की। राज साहब के पुराने मित्र दिलीप साहब उनसे मिलने गए और परिवार के सदस्यों के अलावा, आईसीयू में जाने वाले एकमात्र व्यक्ति थे। चिंटू उनके साथ गए थे और उनके अनुसार, उन्होंने दोनों मित्रों के बीच एक गहन और भावुक बातचीत देखी। राज साहब कोमा में थे और दिलीप साहब उनसे पंजाबी में अपनी दोस्ती की शुरुआत और वर्षों में उसके विकास के बारे में बात कर रहे थे। धीरे-धीरे दिलीप साहब की आँखों से आंसू बहने लगे और उनकी भाषा धीरे-धीरे पश्तू में बदल गई, जो पठानों की भाषा है और राज साहब भी बोलते थे। भाषा को न समझते हुए भी, चिंटू दिलीप साहब के चेहरे और बोलने के लहजे में दिख रही भावनाओं से अभिभूत हो गए, जो हंसी और उदासी के बीच बदलती रहती थी। यह दिलीप साहब का एक हताश प्रयास था; उन्हें लगा कि उनकी आवाज सुनकर शायद उनका मित्र कोमा से बाहर आ जाए। दुर्भाग्य से, ऐसा नहीं हुआ।

लगभग हर दूसरे या तीसरे दिन, राज साहब को कोई न कोई स्वास्थ्य समस्या हो जाती थी और स्थिति दिन-ब-दिन गंभीर होती जा रही थी। एक शाम, ऑल इंडिया रेडियो ने घोषणा की कि राज कपूर का निधन हो गया है। यह खबर जंगल की आग की तरह फैल गई, लेकिन जाहिर तौर पर यह एक त्रुटि थी क्योंकि वे अभी भी जीवित थे। इस घोषणा के बाद प्रधानमंत्री बिना किसी सुरक्षा के अपनी कार से अस्पताल पहुंचे। बताया जाता है कि वे चीनी राजदूत के आवास पर भोजन कर रहे थे, जहां उन्हें यह खबर मिली और वे तुरंत अपनी कार में बैठकर निकल गए। उनका स्वागत करने के लिए कोई प्रोटोकॉल अधिकारी मौजूद नहीं था क्योंकि

किसी को भी इस अचानक यात्रा की सूचना नहीं थी। वे तुरंत आईसीयू पहुंचे और कृष्णा आंटी से मिले, जिन्होंने उन्हें झूठी खबर के बारे में बताया। तब तक, अस्पताल का गलियारा उनके सुरक्षाकर्मियों और सहायकों से भरा हुआ था और बेहद नाराज प्रधानमंत्री ने सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री एच.के.एल. भगत को बुलाया और सबके सामने अपनी नाराजगी जाहिर की।
मैं परिवार से मिलने के लिए दिल्ली की पाँच यात्राएँ कर चुका था और हर यात्रा में एक दिन से ज़्यादा नहीं रुकता था, क्योंकि मुझे लगता था कि संकट की इस घड़ी में परिवार को परेशान न करना ज़रूरी है। 2 जून को मैं बॉम्बे में एक डिनर पर था, तभी दूरदर्शन पर यह खबर आई कि राज कपूर का लंबी बीमारी के कारण निधन हो गया है। मैं सदमे में था, मैंने उस एक इंसान को खो दिया था जिसने मुझे सब कुछ सिखाया था और जो हमेशा मेरे लिए मौजूद था जब भी मुझे उनकी ज़रूरत पड़ी।
मैं गाड़ी चलाकर घर वापस आया और चिंटू को फोन किया। उसने मुझे बताया कि प्रधानमंत्री अभी-अभी अस्पताल गए थे और उन्होंने परिवार को सांत्वना दी थी। उन्होंने कृष्णा आंटी से अनुरोध किया, 'मैडम, मैं चाहता हूं कि उनके पार्थिव शरीर को एक दिन के लिए दिल्ली में ही रखा जाए ताकि आम आदमी गुरु को अंतिम श्रद्धांजलि दे सके।'
कृष्णा आंटी ने माफी मांगी क्योंकि वह उन्हें जल्द से जल्द अपने साथ घर ले जाना चाहती थीं। प्रधानमंत्री ने उनकी इच्छा का सम्मान किया और अपने निजी सचिव को निर्देश दिया कि पालम हवाई अड्डे पर एक विमान तैयार रखा जाए ताकि परिवार और पार्थिव शरीर को उनके तय समय पर बॉम्बे वापस लाया जा सके।
मैंने बॉम्बे के पूर्व पुलिस आयुक्त श्री राकेश मारिया को फोन पर सूचना दी, जो उस समय बॉम्बे के जोन IV के डीसीपी थे और उनके अधिकार क्षेत्र में ट्रॉम्बे, आरसीएफ और चेंबूर पुलिस स्टेशन आते थे, जहाँ राज साहब रहते थे। उन्हें पहले ही खबर मिल चुकी थी और पुलिस को सतर्क कर दिया गया था। उन्होंने केवल एक अनुरोध किया कि पार्थिव शरीर को लेकर विमान सुबह 6 बजे तक बॉम्बे में उतर जाए ताकि खबर फैलने और भीड़ जमा होने से पहले परिवार को वापस घर ले जाया जा सके।
दिल्ली में उन्होंने सुबह 3:45 बजे उड़ान भरने का फैसला किया। चिंटू ने मुझे बताया कि जब वे पालम हवाई अड्डे के वीआईपी प्रस्थान परिसर में पहुँचे, तो प्रधानमंत्री को अपने पूरे

मंत्रिमंडल के साथ अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करते देख वे सभी स्तब्ध रह गए। उन्होंने श्री एच.के.एल. भगत को भारत सरकार के आधिकारिक प्रतिनिधि के रूप में शोक व्यक्त करने वालों के साथ जाने का निर्देश भी दिया।

सुबह 5:45 बजे जब विमान मुंबई में उतरा, तो परिवार के सदस्य उतरने लगे। राज साहब से मिलने दिल्ली गए राजेश खन्ना भी उसी विमान में थे। हवाई अड्डे पर मौजूद डीसीपी श्री एच.के.एल. भगत को विमान से उतरते देख दंग रह गए, क्योंकि वे विशेष सुरक्षा प्राप्त वीआईपी थे और उनके लिए उचित व्यवस्था नहीं की गई थी। कुशल डीसीपी ने तुरंत कार्रवाई की और काफिले के रवाना होने से पहले ही सभी सुरक्षा व्यवस्थाएं कर ली गईं।

राज साहब अंतिम संस्कार से पहले अपने घर में अंतिम बार दाखिल हुए। खबर फैलने लगी थी और भीड़ जमा होने लगी थी। फिल्म जगत के लोग उमड़ रहे थे और चारों ओर शोक का माहौल था। उनके सहयोगी और मित्र उन्हें अंतिम श्रद्धांजलि देने के लिए मुंबई पहुंचे। अमिताभ बच्चन और मनमोहन देसाई सर श्रीनगर से शोक व्यक्त करने के लिए आए। बाद में, उनके पार्थिव शरीर को घर से एक खुले ट्रक में रखा गया और आरके अस्पताल ले जाया गया, जहां दो घंटे तक लोगों को उनके दर्शन करने और अंतिम श्रद्धांजलि देने की अनुमति दी गई।

बॉम्बे पुलिस ने सुरक्षा और यातायात व्यवस्था को बखूबी संभाला। चेंबूर लोगों से खचाखच भरा हुआ था और राज कपूर को न केवल भारतीय फिल्म जगत ने श्रद्धांजलि दी, जिसने पूरे दिन के लिए सिनेमाघर बंद कर दिए, बल्कि पाकिस्तान ने भी अपने सिनेमाघर और फिल्म उद्योग को बंद कर दिया। वीडियो पायरेट्स ने भी राज कपूर के निधन पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक दिन के लिए अपना अवैध धंधा बंद कर दिया!

अंतिम यात्रा आरके से निकली और श्मशान घाट तक 2 किलोमीटर की दूरी तय की। परिवार के सदस्य पार्थिव शरीर को चिता तक ले गए। नम आँखों वाले अधिकांश शोक संतप्त लोग राज कपूर की मृत्यु को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे।

मैं सदमे में अकेला खड़ा था और समझ नहीं पा रहा था कि मेरे गुरु, दार्शनिक और मार्गदर्शक ने मुझे अनाथ छोड़ दिया है। मैं सोच रहा था कि आगे के सफर में इसका मेरे जीवन पर क्या असर पड़ेगा। मैं सलाह के लिए किसके पास जाऊँगा और मेरी रचनात्मक यात्रा का सबसे

कठोर आलोचक कौन होगा? क्या मैं रचनात्मक रूप से प्रगति करूँगा या स्थिर हो जाऊँगा? मुझे यह स्वीकार करना होगा कि उनके चले जाने का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

सभी रस्में पूरी होने के बाद, तीनों बेटों ने चिता को अग्नि के हवाले कर दिया। अग्नि ने गुरु के पार्थिव शरीर को अपनी चपेट में ले लिया और जैसे-जैसे आग भड़की, उसने अमर राज कपूर के जन्म की घोषणा कर दी।

फोटो सम्मिलित करें

राज कपूर राम तेरी गंगा मैली के सेट पर मिशेल बीएनसी कैमरे के माध्यम से फ्रेम की जांच कर रहे हैं।

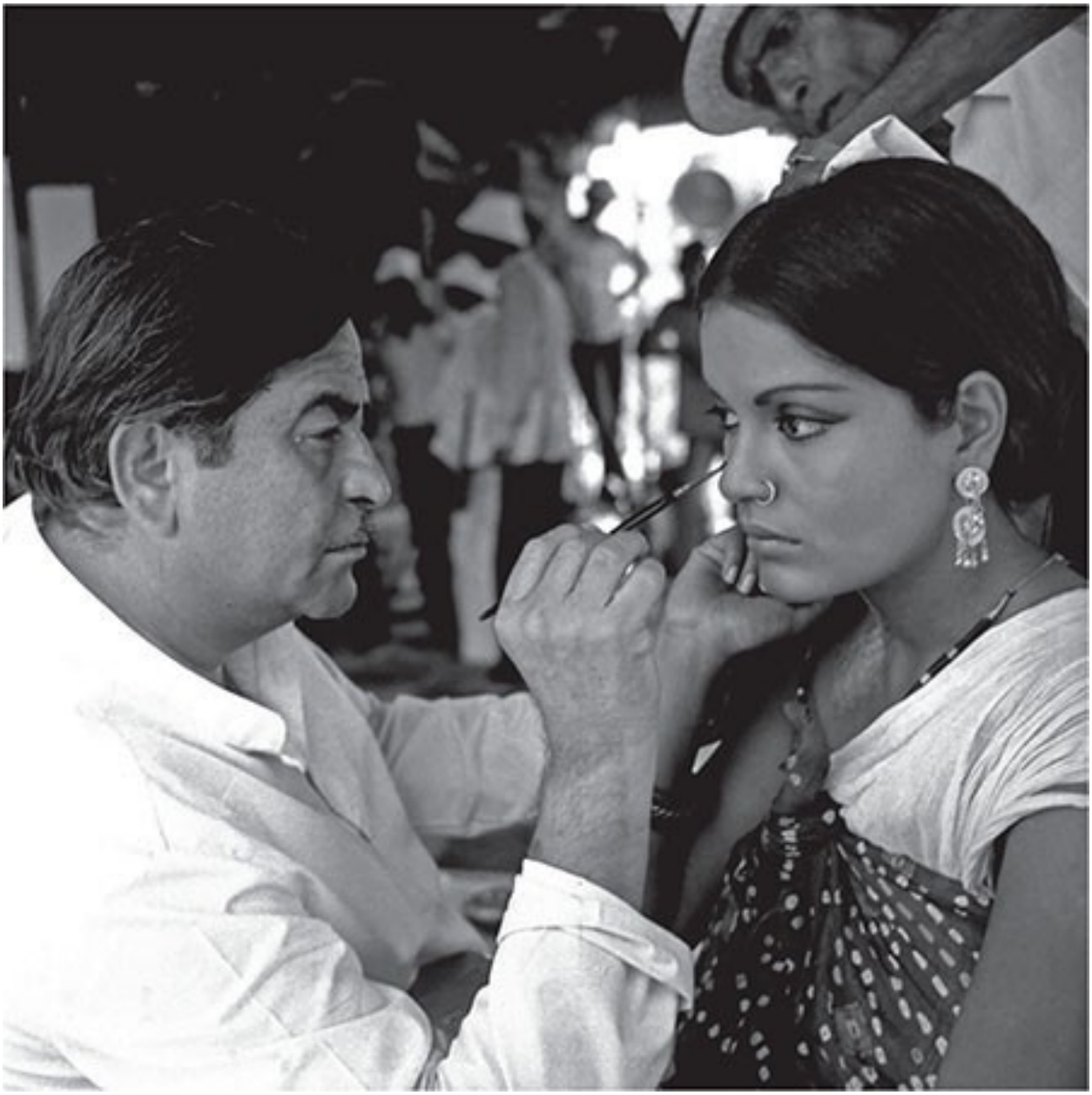

मास्टर ज़ीनत अमान के मेकअप को अंतिम रूप दे रहे हैं।

फिल्म बॉबी में राज कपूर लता मंगेशकर को गाने के अंतिम सुरों के बारे में निर्देश दे रहे हैं।

राज कपूर अभिनेताओं को एक शॉट के बारे में समझा रहे हैं, जबकि अलाउद्दीन खान देख रहे हैं।

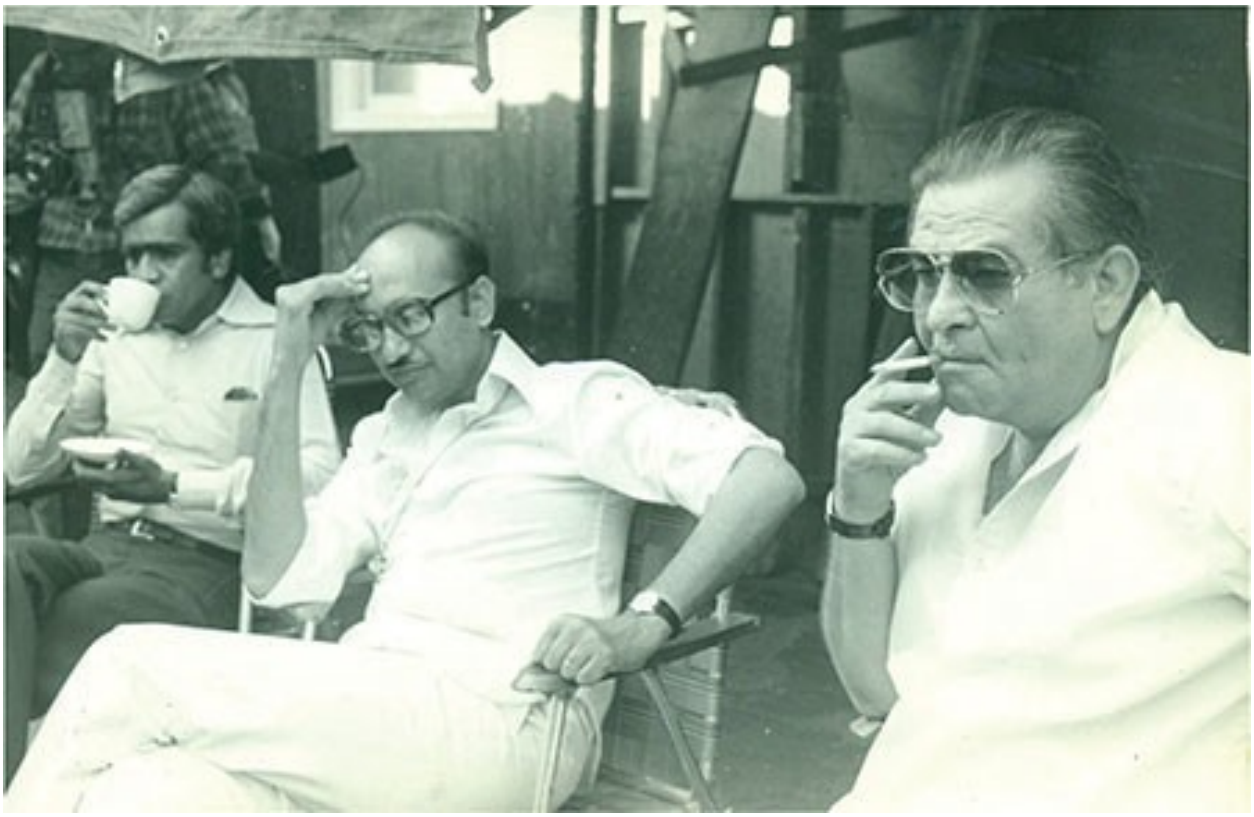

एक ही फ्रेम में दो महान फिल्मकार: राज कपूर और मनमोहन देसाई।

प्रेम रोग के सेट पर, राज कपूर ऋषि कपूर और कोरियोग्राफर सुरेश भट्ट को शॉट की बारीकियों के बारे में समझा रहे हैं।

Shankar-Jaikishan and his ‘music family’ at the recording of Jis Desh Mein Ganga Behti Hai.

जिस देश में गंगा बहती है की रिकॉर्डिंग में शंकर-जयकिशन और उनका 'संगीत परिवार'।

राज कपूर ने राधु करमाकर और शशि कपूर को अपने लिए आवश्यक दृश्य प्रभाव के बारे में बताया।

राज कपूर बड़े उत्साह से ढोलक बजा रहे हैं, जो उन विभिन्न वाद्ययंत्रों में से एक था जिनके लिए उनमें जन्मजात प्रतिभा थी।

राज कपूर और शंकर एक गाने की रिकॉर्डिंग के दौरान मिनू कात्रक को बड़े ध्यान से सुन रहे हैं।

आवारा फिल्म के कलाकार (बाएं से दाएं): पृथ्वीराज कपूर, लाला बशेश्वर नाथ कपूर और राज कपूर।

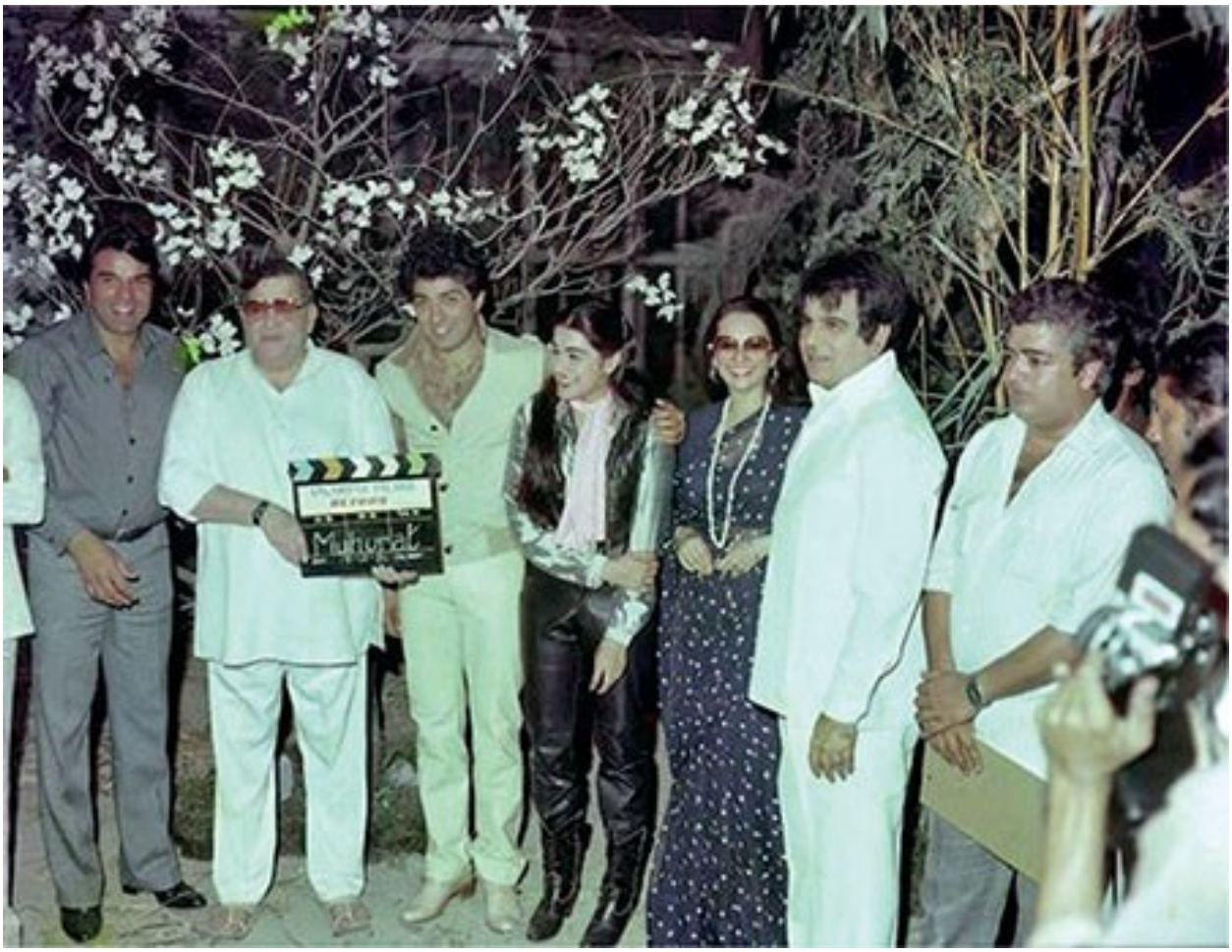

At the premiere of Betaab (from left to right): Dharmendra, Raj Kapoor, Sunny Deol, Amrita Singh, Saira Banu, Dilip Kumar and Rahul Rawail.

बेताब के प्रीमियर पर (बाएं से दाएं): धर्मेंद्र, राज कपूर, सनी देओल, अमृता सिंह, सायरा बानो, दिलीप कुमार और राहुल रवैल।

लव स्टोरी गाने की रिकॉर्डिंग के दौरान (बाएं से दाएं): राहुल रवैल, राजेंद्र कुमार, विजयता पंडित और राज कपूर।

बॉबी के सेट पर, राहुल रवैल राज कपूर की सहायता कर रहे हैं, जो डिंपल कपाडिया को आवश्यक हावभाव दिखा रहे हैं। --राज

*****समाप्त *****

sjeet

आभार

यह पुस्तक उन विभिन्न लोगों के अथक परिश्रम का परिणाम है, जिनके प्रति मैं आभार व्यक्त करना चाहूंगा:
अपूर्वा असरानी, जिन्होंने मेरे मन में इस पुस्तक को लिखने का विचार डाला, उनका धन्यवाद।
सचिन चट्टे को उनके बहुमूल्य सुझावों के लिए धन्यवाद।
मामा जी, विश्व मेहरा, राज साहब के सबसे उम्रदराज जीवित और सबसे करीबी सहयोगी थे, जिन्होंने 94 वर्ष की आयु में भी अपने सभी अद्भुत अनुभव साझा किए जो पुस्तक लिखते समय मेरे लिए अमूल्य साबित हुए।
बंटी और सादिका पीरभॉय, जिन्होंने हमेशा मेरे सभी प्रयासों में मेरा साथ दिया है।
फिल्म समारोह निदेशालय के निदेशक श्री चैतन्य प्रसाद को उनके निरंतर समर्थन के लिए धन्यवाद।
शिवाली कालरा को उनके प्रोत्साहन के लिए धन्यवाद।
आशा और सुमंत बत्रा को उनके बहुमूल्य सुझावों के लिए धन्यवाद।
सिनेमाज़ी, भारतीय सिनेमा को समर्पित वेबसाइट।
राजीव मसंद को उनके बहुमूल्य योगदान के लिए धन्यवाद।
फिल्मिस्तान स्टूडियो के संजीव गोयनका को उनके सहयोग के लिए धन्यवाद।
मायापुरी पब्लिकेशंस के पी.के. बजाज को तस्वीरों के योगदान के लिए धन्यवाद।
रूस की ज़रीन जैन्डेसोवा को तस्वीरें उपलब्ध कराने के लिए धन्यवाद।
राजन बेडके, तस्वीरें जुटाने में मेरी मदद करने के लिए धन्यवाद।
कलश पांडिया, मेरे कथन को लिखने के लिए।
मैं उन सभी अद्भुत कलाकारों और तकनीशियनों को भी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं जो अब हमारे बीच नहीं हैं और जिन्होंने आर.के. फिल्म्स एंड स्टूडियोज को अपना निरंतर समर्थन दिया।